करुणा और क्रान्ति

भगवान श्री रजनीश

करुणा और क्रान्ति

प्रवचन

भगवान श्री रजनीश

सम्पादन

स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

संकलन

मा योग प्रज्ञा

सागरदीप रजनीश ध्यान केन्द्र, प्रकाशन
बम्बई

प्रकाशक :
दिलीप मेहता
सागरदीप रजनीश ध्यान केन्द्र प्रकाशन,
५२, रीज रोड,
मलबार हील, ४०००६
बम्बई

—साधारण संस्करण :

प्रति ५०००

मुद्रक :
ऊषा प्रिंटिंग वर्क्स,
जे. २५/३३ उसमानपुरा
पो० जैतपुरा—वाराणसी

अगर करुणा आ जाय तो क्रान्ति अनिवार्य है। क्रन्ति सिर्फ करुणा
की परिधि, छाया से ज्यादा नहीं है। और जो क्रान्ति करुणा
के बिना आयेगी, बहुत खतरनाक होगी। ऐसी
बहुत क्रान्तियाँ हो चुकी हैं और वे जिन
बीमारियों को दूर करती हैं, उनसे
बड़ी बीमारियों को अपने
पीछे छोड़ जाती हैं।

—भगवान श्री रजनीश

अन्तर्वस्तु

१ : करुणा के फूल

मेरे प्रिय आत्मन्,

एक पहाड़ी रास्ते पर सुबह से ही बड़ी भीड़ है। सूरज बाद में निकला है। उस रास्ते पर लोग पहले से निकल पड़े हैं। भीड़ बहुत है—सारा गाँव, आसपास के छोटे गाँव, पहाड़ी की तरफ भागे चले जाते हैं। लेकिन भीड़ बड़ी उदास है। कोई खुशी का त्यौहार नहीं मालूम पड़ रहा है। लोग आँखें नीचे झुकाये हुए हैं और लोगों के प्राणों पर बड़े पत्थर रखे हुए मालूम पड़ रहे हैं। उस भीड़ में तीन लोग और थे, जो अपने कन्धों पर सूलियाँ लिये हुए थे। वह भीड़ ऊपर पहुँच गयी है। यह बड़े व्यंग की बात है कि किसी को अपनी सूली खुद ही ढोनी पड़े। वे सूलियाँ, खुद ही उन्हें ही गाड़नी पड़ी हैं! उन तीन लोगों ने अपनी-अपनी सूलियाँ गाड़ ली हैं। और उस उदास भीड़ में उन तीनों लोगों को सूली पर लटका दिया गया है। उनमें एक आदमी परचित है, वह मरियम का बेटा है जीसस। लेकिन दो आदमी बिलकुल अनाम हैं, उनका कोई नाम पता नहीं है कि वे आदमी कौन हैं? कहते हैं कि वे दोनों चोर थे। दो चोरों और बीच में जीसस को तीनों को सूली पर लटका दिया गया है। उनके हाथों में कील ठोक दिये गये हैं। जीसस के सिर पर काँटों का ताज पहनाया हुआ है। और जीसस के आँखों में जब भी कोई झाँकेगा तो उसे पता चलेगा कि जैसे दुःख पीड़ा और उदासी साकार हो गयी हो।

यह घटना घटे बहुत दिन हो गये हैं। लेकिन ऐसा लगता है कि यह घटना बड़ी सम-सामयिक है। बड़ी कन्टम्प्रेरी है। कृष्ण को बाँसुरी बजाते हुए, नाचते हुए; सोचने में भी कठिनाई होती है। ऐसा लगता है कि ऐसा आदमी शायद कभी न हुआ हो। तो यह भी हो सकता है कि भविष्य में भी कभी न हो, क्योंकि आदमी के होंठ गीत गाने भूल चुके हैं

और बाँसुरी बजाने की तो बात ही नहीं है। तो कृष्ण बहुत काल्पनिक और स्वप्निल मालूम होते हैं। बुद्ध की शांत प्रतिमा भी ऐसी लगती है, जैसे हमारी आकांक्षा हो। लेकिन जीसस बहुत सम-सामयिक मालूम पड़ते हैं। ऐसा नहीं लगता कि दो हजार साल पहले एक आदमी को सूली लगी हो, ऐसा लगता है कि हमारे पड़ोस में यह आदमी अभी भी सूली पर लटका हुआ है।

कुछ कारण है। जीसस की निकटता के पीछे कुछ कारण है। और वह यह है कि उस दिन एक आदमी सूली पर लटका था, आज पूरी मनुष्यता करीब-करीब धीरे-धीरे सूली पर लटक गयी है। कुछ सूलियाँ दिखाई पड़तीं हैं, कुछ दिखायी नहीं पड़तीं, अदृश्य हैं। दिखाई पड़ने वाली सूलियों से बचा भी जा सकता है, न दिखायी पड़ने वाली सूलियों से बचना भी बहुत मुश्किल है।

और उस दिन सुबह जो हुआ था, उससे कुछ और भी बाते मेरे ख्याल में आती हैं। पहली बात तो मेरे ख्याल में वह आती है कि जीसस खुद अपनी सूली को लेकर उस पहाड़ी पर चढ़े, हममें से हर आदमी अपनी सूली को खुद ही लेकर चढ़ रहा है। हम सब अपनी सूलियों का खुद ही निर्माण करते हैं। फिर उन्हें खुद ढोते हैं जीवन भर, और अन्त में अपनी-अपनी सूलियों पर लटक कर मर भी जाते हैं। ऐसा एकाध आदमी के साथ हो, तो बात समझ में भी आ सकती है, लेकिन ऐसा अगर पूरी मनुष्यता के साथ हो जाय तो बड़ा सवाल है।

आदमी इतना उदास और दु:खी कभी भी नहीं था, जितना उदास और दु:खी आज है। पक्षी भी हमें देख कर विचार करते होंगे कि आदमी मालूम होता है, भटक गया है। पक्षी भी आकाश में उड़कर हम पर दया करते होंगे, करुणा करते होंगे। निश्चित, पौधों में चर्चा होती होगी आदमी के बिगड़ जाने की, विकृत हो जाने की। इस सारी पृथ्वी पर चाँद-तारों से लेकर छोटे-छोटे नदी के पड़े हुए कंकड़-पत्थरों तक में भी एक आनन्द की धारा का प्रवाह मालूम होता है, सिर्फ आदमी के हृदय में मरुस्थल हो गया है। वहाँ कोई धारा आती नहीं कि सूख जाती है।

आदमी अकेला विक्षिप्त प्राणी है। हम अकेले पागल हैं! और ऐसा नहीं है कि कुछ लोग पागल हैं। नहीं, हम सभी पागल हैं।

अपने पागलपन के हमने दो रूप बना रखे हैं—एक ऐसा पागलपन, जिसके रहते हुए भी हम जिन्दगी के साथ किसी तरह का एडजेस्टमेंट, समायोजन कर लेते हैं। और एक ऐसा पागलपन कि जिसके रहते फिर जिन्दगी के साथ समायोजन करना मुश्किल हो जाता है।

दो तरह के पागल हैं—एक जो समाज के पागलपन में किसी तरह अपने को बिठा लेते हैं और चल जाते हैं। और एक वे, जो समाज के पागलपन में अपने को नहीं बिठा पाते और उनके लिए हमें अलग पागलखाने बनाने पड़ते हैं।

जमीन दो तरह के पागलखानों में बँट गयी है। एक दीवालों के भीतर है पागलखाना, छोटा। एक दीवालों के बाहर है पागलखाना, बड़ा। वह सारी पृथ्वी पर फैल गया है।

एक-एक आदमी के भीतर अगर हम झाँक कर देखें तो ख्याल में आयेगा कि कैसी कठिन और कैसी चिन्ता से भरी हुई जिन्दगी हम जी रहे हैं! ऐसा नहीं है कि हम मुस्कराते नहीं हैं। सुबह से साँझ तक बहुत बार मुस्कराते हैं। लेकिन हमारी मुस्कराहटें अधिकतर हमारे आँसुओं को छिपाने के प्रयास के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होती हैं। और ऐसा भी नहीं है कि हम गीत नहीं गाते, लेकिन हमारे हर गीत के भीतर हमारे रोने की प्रतिध्वनि के दबाने का उपाय होता है। और ऐसा भी नहीं है कि हम बाहर प्रसन्न न दिखाई पड़ते हों। लेकिन हमारी सारी प्रसन्नता ऊपरी सतह पर है और भीतर गहरे में बहुत उदास आत्मा बैठी हुई है।

एक-एक आदमी अपने भीतर झाँक कर देखेगा तो अपने ही प्रति करुणा से भर जायेगा। और जब तक हम अपने प्रति करुणा से न भर जायें, तब तक पड़ोसी के प्रति हम कभी भी करुणा से नहीं भर सकते हैं। जब तक हमें अपनी सूली न दिखाई पड़ने लगे, तब तक चारों तरफ सारे लोग सूलियों पर लटके हुए हैं, यह भी हमें दिखाई नहीं पड़ सकता

है। जिसे अपनी सूली दिखाई पड़ती है, उसे पड़ोसी भी सूली पर लटका हुआ ही दिखाई पड़ता है।

लेकिन हम सब अपनी सूली की तरफ देखते ही नहीं, इसलिए पड़ोसी की सूली को देखने का कोई उपाय नहीं है। हम दूसरों के प्रति कठोर हो जाते हैं, क्योंकि हम अपने प्रति ही अभी करुण नहीं हो पाये हैं। हम दूसरे के प्रति करुणा से नहीं भर पाते हैं, क्योंकि अभी हम अपने प्रति ही करुणा से नहीं भर पाये हैं। अभी हमने अपनी ही स्थिति की ओर जैसे हम हैं, जो हम हैं, झाँकने की हिम्मत नहीं जुटायी। शायद हम डरते हैं, शायद हमें भय है कि अपने को देखें तो शायद जीना और भी मुश्किल हो जाय। इसलिए अपने को भुलाने की कोशिश में रहते हैं। और बहुत लोगों ने अपनी सूलियों पर सोने-चाँदी के जेवर पहना रखे हैं, और बहुत लोगों ने अपनी सूलियों पर रंग-बिरंगे फूल चिपका लिये हैं, और बहुत लोगों ने अपनी सूलियों पर इत्र छिड़क दिया है कि सूलियाँ भी ऐसी मालूम पड़ें कि बड़ी प्यारी हैं! हम सूलियों की, सूलियाँ हैं यह भुलाने की कोशिश में लगे रहते हैं! जंजीरों को आभूषण समझ लेते हैं और सूलियों को जिन्दगी समझ रखा है, और आँसुओं को धीरे-धीरे हमने अपने को ही धोखा देकर ऐसा बना लिया है कि लगता है कि वे भी मुस्कराते हैं। अपनी सूली को भूलने के लिए हमने बहुत से आयोजन किये हैं। और जितनी सूली मजबूत होती जाती है, भारी होती जाती है और आदमी के हाथों में कीलें ठुकते जाते हैं, उतने सूली को भुलाने के हमारे उपाय भी तीव्र होते चले जाते हैं।

मनुष्य जैसे-जैसे सभ्य होता है, वैसे-वैसे मनोरंजन के साधन खोजता है। जैसे-जैसे सभ्य होता है, वैसे-वैसे नशे के नये उपाय खोजता है। जैसे-जैसे सभ्य होता है, वैसे-वैसे भूलने की नयी व्यवस्थायें, अपने आपको भुला लेने के नये मार्ग तलाश करता है। रोज मनोरंजन के, भूलने के, शराबों के नये-नये उपाय बढ़ते चले जाते हैं, ताकि हमें अपनी सूली का पता न चले। लेकिन सूली का पता लगे या न लगे, चाहे हम भूल जायें, चाहे कोई सूली पर लटका हुआ आदमी शराब पीकर लटका हो,

तो भी सूली के होने में कोई फर्क नहीं पड़ता है। सूली है और हम उस पर लटके हुए हैं।

जैसे-जैसे हम सभ्य होते हैं, वैसे-वैसे ऐसा लगता है कि हमारा पागलपन ब्वायलिंग प्वाइंट के करीब, उबलने के बिन्दु के करीब पहुँचता चला जाता है। और बहुत आश्चर्य न होगा कि पूरी मनुष्य-जाति ऐसा अनुभव करे कि अपने को समाप्त ही कर ले। अनेक लोगों ने अनेक बार ऐसा अनुभव किया है। कुछ लोगों ने आत्महत्याएँ की हैं। धीरे-धीरे आत्महत्याएँ करने वाले लोगों की संख्या भी फैलती चली गयी है, बढ़ती चली गयी है। ऐसा भी हो सकता है कि एक दिन पूरी मनुष्य-जाति सामूहिक निर्णय करे कि हम अपने को समाप्त कर लें। वैसे हमारे पास....इन्तजाम हमने कर लिया है, कभी भी हम निर्णय करें तो उसे व्यावहारिक रूप में बदला जा सकता है। पूरी मनुष्यता को समाप्त करने की व्यवस्था हमारे पास है।

यह आदमी आत्मघात की तरफ इतनी आतुरता से उत्सुक हो रहा है—क्या कभी आप सोचते हैं कि जरूर कहीं जीवन से हमारा सम्बन्ध टूट गया होगा? जीवन से कहीं हमारे नाते-रिश्ते, सम्बन्ध विदा हो गये हैं? हम कहीं जीवन से टूट गये हैं। जीवन के स्रोत से हमारा सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया है। और सिर्फ हम मरे हुए जो रहे हैं—उदास, सूखे हुए, जैसे किसी पौधे की जड़ों का सम्बन्ध जमीन से टूट जाय तो पौधा रहे, उसकी पत्तियाँ कुम्हला जायँ, उसके फूल कुम्हला जायँ, उसकी कलियाँ फूल होना बन्द हो जायँ। ऐसी ही मनुष्य की हालत हो गयी है। हमारी जड़ें कहीं से हिल गयी हैं। किसी ने ये जड़ें हिला दी हैं।

कौन है जिम्मेवार?

और अगर हम उसके कारणों को न खोज पायें तो शायद ऐसा न हो कि बहुत देर हो जाय और आदमी को बचाना मुश्किल हो जाय। इन तीन चार दिनों में उन जड़ों के सम्बन्ध में, उन मूल कारणों के सम्बन्ध में आपसे बात करना चाहता हूँ, जिसने मनुष्य की ऐसी दशा बना दी

है—विपन्न, हारी हुई, पराजित, अर्थहीन। इसीलिए मित्रों ने कहा कि मैं करुणा और क्रान्ति पर बात करूँ।

करुणा और क्रान्ति ऐसा शब्दों का समूह मुझे अच्छा नहीं मालूम पड़ता है। मुझे तो लगता है, करुणा यानी क्रांति। करुणा अर्थात् क्रांति। कम्पैशन एण्ड रिव्योल्यूशन नहीं, कम्पैशन मीन्स रिव्योल्यूशन। ऐसा समझें कि करुणा होगी तो क्रांति होगी। अगर करुणा आ जाय तो क्रान्ति अनिवार्य है। क्रांति सिर्फ करुणा की परिधि, छाया से ज्यादा नहीं है। और जो क्रांति करुणा के बिना आयेगी, बहुत खतरनाक होगी। ऐसी बहुत क्रांतियाँ हो चुकी हैं और वे जिन बीमारियों को दूर करती हैं, उनसे बड़ी बीमारियों को अपने पीछे छोड़ जाती हैं।

अब तक की सारी क्रांतियाँ असफल हो गयी हैं।

आदमी ने बड़े प्रयास किये हैं आनन्द के समाज को निर्मित करने के, बहुत प्रयास किये हैं कि मनुष्य खुश हो सके। बहुत प्रयास किये हैं कि जीवन में फूल खिल जायें। लेकिन अब तक वे सफल नहीं हो सके। क्योंकि क्रांतियाँ क्रोध से पैदा हुईं, करुणा से नहीं। और जो भी क्रांतियाँ क्रोध से पैदा होंगी, वे क्रांतियाँ तोड़ सकती हैं, लेकिन निर्मित नहीं कर सकतीं। और जो क्रातियाँ क्रोध से पैदा होती हैं, वे विध्वंश में तो ले जाती हैं, लेकिन सृजन में नहीं ले जा पाती हैं। और जो क्रांतियाँ क्रोध से पैदा होती हैं, वे बहुत गहरे प्रवेश नहीं कर पातीं, जहाँ मनुष्य की बीमारी की जड़ें हैं। वे ऊपर से पत्तों को काट डालती हैं, वृक्षों को हिला देती है, शाखाओं को तोड़ देती हैं, लेकिन जड़ों तक उनकी पहुँच नहीं हो पाती। और वे क्रांतियाँ समाप्त भी नहीं हो पाती हैं कि नये पत्ते निकल आते हैं, नयी शाखायें निकल आती हैं—बल्कि हर क्रांति कलम साबित हुई है, पुराना वृक्ष और सघन होकर बड़ा हो गया है, क्योंकि जड़ें जमीन के नीचे, जमीन के भीतर बरकरार हैं, वे नहीं मिटतीं।

हम धन बाँट सकते हैं क्रोध में आकर। धन बँट भी सकता है, लेकिन लोगों ने धन इकट्ठा करने का पागलपन क्यों पैदा कर लिया, अगर इसकी गहरी जड़ों में न जा सकें, तो शायद धन तो बँट जायेगा, लेकिन

आदमी वही होगा, जो धन को इकट्ठा करने वाला था। और वह धन से जो इकट्ठा कर रहा था, दूसरी चीजों से वही इकट्ठा करने लगेगा। रूस में वैसा हो गया, चीन में वैसा होगा। सारी दुनिया में, जहाँ भी क्रांति के नाम से घटनाएँ घटी हैं, वहाँ वैसा हो रहा है।

जो आदमी धन इकट्ठा करके अहंकार अर्जित करता था, उसकी मूल बीमारी धन में न थी। उसकी मूल बीमारी अहंकार में थी। धन होता तो वह कह पाता था कि मैं कुछ हूँ। उस आदमी ने नये रास्ते खोज लिये। अब वह धन इकट्ठा नहीं करता, अब वह राज्य पर अधिकार कर लेता है। और अब भी उसकी पुरानी बीमारी अपनी जगह खड़ी है। अब भी वही अकड़ है, वही बात है, वही अहंकार है, 'मैं कुछ हूँ'। अब वह धन नहीं छीनता, लेकिन सत्ता छीन लेता है। अब वह दूसरे आदमी को गरीब नहीं बनाता, लेकिन निर्बल बना देता है। और मामला वही है—गरीब अमीर के बीच का फासला, निर्बल और सबल के बीच का फासला बन जाता है। और कोई भी फर्क नहीं हो पाता है।

पिछले पाँच हजार वर्षों में बहुत क्रांतियाँ हुई हैं, लेकिन सारी क्रांतियाँ क्रोध से निकली हैं, इसलिए असफल हो गई हैं। असल में क्रोध बहुत गहरे नहीं जा सकता क्योंकि क्रोध की स्थिति में गहरे जाना सम्भव ही नहीं है। करुणा ही गहरे जा सकती है। क्रोध बहुत ऊपर देखता है। ऊपर के कारणों को तोड़ देता है, लेकिन भीतर के कारण न उसे दिखाई पड़ते हैं, न उसकी सामर्थ्य होती है उतने गहरे उतरने की।

मेरी दृष्टि में करुणा ही क्रांति है—करुणा पैदा हो सके तो क्रांति आयेगी अपने आप।

और बड़े आश्चर्य की बात है, वह यह है कि अगर करुणा हो तो गरीब पर ही करुणा नहीं होगी, अमीर पर भी उतनी ही करुणा होगी। क्योंकि गरीब और अमीर एक ही बीमारी के दो हिस्से हैं। और अगर करुणा होगी तो बुरे आदमी पर ही करुणा नहीं होगी, अच्छे आदमी पर

भी करुणा होगी, क्योंकि अच्छे और बुरे एक ही बीमारी के दो रूप हैं। और यदि करुणा होगी तो करुणा जायेगी गहरे पूरे मनुष्य के इतिहास में, मनुष्य की पूरी संस्कृति में, मनुष्य के पूरे अचेतन मन में और खोजेगी कि सारी बीमारियों की मूल जड़े कहाँ से निकल आयी हैं। और उनकी बदलाहट उसकी दृष्टि होगी। करुणा ऊपर से काटेगी नहीं, नीचे से जड़ों को बदलने की कोशिश करेगी। 'करुणा और क्रांति' इस भाषा में इसलिए मैं सोचना पसन्द नहीं करता।

करुणा ही क्रांति है। एक बार कम्पैशन पैदा हो तो हम वही नहीं हो सकते, जो हम कल थे। और न हम जिन्दगी को वही रहने दे सकते हैं, जो वह कल थी। अगर मुझे दिखाई पड़ना शुरू हो जाय कि आपके पैर गड्ढे में जा रहे हैं तो मैं सब कोशिश करूँगा कि आपके पैर उस गड्ढे में जाने से बच जायँ। और अगर मुझे यह भी पता चल जाय कि आप जब गड्ढे में गिरेंगे तो आप ही नहीं गिरेंगे, मैं भी आपके साथ ही गिरता हूँ, क्योंकि यह जिन्दगी संग और साथ है। यहाँ कोई अकेला नहीं है। यहाँ जब एक आदमी गड्ढे में गिरता है तो हम सब भी उसके साथ किसी न किसी अर्थों में गड्ढे में गिरते हैं। और जब एक आदमी अन्धा होता है तो हम सब किसी न किसी अर्थों में अन्धे हो जाते हैं। और जब एक आदमी कुरूप होता है तो हम सभी कुरूप हो जाते हैं। जब एक आदमी निर्धन होता है तो सारी मनुष्यता निर्धन हो जाती है। यह सारी जिन्दगी इस पृथ्वी पर एक सहयोग है। यहाँ हम एक-दूसरे के हाथ में हाथ डाले हुए हैं। यहाँ हम अकेले-अकेले नहीं खड़े हुए हैं। यहाँ हम चाहें तो भी अकेले-अकेले खड़े नहीं हो सकते हैं। यहाँ जिन्दगी एक सहयोग है और यहाँ जो भी घटित होता है, वह सबके लिये घटित होता है।

तो अगर मैं समझ पाऊँ कि जिन्दगी के रोग कहाँ से पैदा होते हैं, जिन्दगी महारोग कैसे बन गई है, और आदमी खुद एक महारोग कैसे बन गया है, तो यह बोध, यह समझ एक गहरी करुणा ले आयेगी। और उस

करुणा के पीछे क्रांति वैसे ही आती है, जैसे आदमी के पीछे छाया आती है। छाया को लाना नहीं पड़ता है।

और जिस क्रांति को लाना पड़े, वह गलत होगी, क्योंकि लाई हुई क्रांति जबर्दस्ती होती है, और लाई हुई क्रांति थोपनी पड़ेगी, और लाई हुई क्रांति के पीछे अनिवार्य रूप से हिंसा होगी। और लाई हुई क्रांति कौन लायेगा, और किस प्रकार लायेगा? क्रांति आनी चाहिए। लायी हुई क्रांतियाँ काफी लाई जा चुकी हैं। उनसे कुछ भी नहीं होता है। क्रांति आनी चाहिए। क्रांति एक हैपनिंग होनी चाहिए। क्रांति जिन्दगी में विकसित होनी चाहिए। कैसे होगी? वह करुणा से विकसित हो सकती है। करुणा आये, तो क्रान्ति अपने आप आ जाती है। इसलिये करुणा पर पहले विचार कर लेना जरूरी है, फिर हम क्रांति पर भी सोच सकें।

मनुष्य एक रोग क्यों हो गया है?

जरूर कहीं कोई भूल हो गयी है। आदमी के संगठन में ही भूल हो गयी है। समाज के संगठन में नहीं, आदमी के, मनुष्य के संगठन में ही भूल हो गयी है। हमने मनुष्य को जिन आधारों पर खड़ा किया है, वे ही गलत हो गये हैं। एक-एक आदमी गलत हो गया है, इसलिये सारा जोड़ भी गलत हो गया है। और एक-एक आदमी जब तक गलत है, तब तक सारे जोड़ को ठीक करना असम्भव है। आदमी ही गलत हो गया है। समाज और संस्कृति गलत हुए आदमी के परिणाम हैं।

आदमी कहाँ गलत हो गया है...आज पहले इस सूत्र पर मैं बात करना चाहूँगा कि आदमी कहाँ गलत हो गया है?

पहला सूत्र मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आदमी ने स्वाभाविक और प्राकृतिक होने की हिम्मत नहीं की है, वह उसकी बुनियादी गलती हो गयी है। आदमी ने कुछ और होने की कोशिश की है जो यह है, पशु पशु है, पक्षी पक्षी है, पौधे पौधे हैं। अगर एक गुलाब में काँटे हैं तो वह इस परेशानी में नहीं पड़ा रहता कि मैं बिना काँटे के कैसे हो जाऊँ। वह अपने काँटों को भी स्वीकार करता है, अपने फूल को भी स्वीकार

करता है। उसकी स्वीकृति में काँटों से विरोध और फूल से प्रेम नहीं है। उसकी स्वीकृति में काँटे और फूल दोनों समाविष्ट हैं। इसलिए गुलाब प्रसन्न है, क्योंकि उसे कोई अंग काटने नहीं हैं। कोई पक्षी अपने एक पंख को इन्कार नहीं करता है, एक पंख को स्वीकार नहीं करता है। और कोई पशु अपनी जिन्दगी को आधा-आधा तोड़कर स्वीकार नहीं करता है, पूरी ही स्वीकार कर लेता है।

आदमी ने जिन्दगी को पूरा स्वीकार नहीं किया है, जैसी जिन्दगी उसे मिली है। वह उस पर अरोपण करता है और कहता है, जिन्दगी ऐसी होनी चाहिए तो स्वीकार करूँगा। आदमी कुछ और होने की पागल वासना से पीड़ित है। आदमी जो हो सकता है, वह होने को राजी नहीं है, कुछ और होना चाहता है। आदमी कहता है कि ये काँटे नहीं होने चाहिए मेरे भीतर। आदमी कहता कि बुराई नहीं होनी चाहिए मेरे भीतर। आदमी कहता है, क्रोध नहीं होना चाहिए। आदमी कहता है, काम नहीं होना चाहिए। आदमी कहता है सेक्स नहीं होना चाहिए। आदमी कहता है, यह सब इतने हिस्से नहीं होने चाहिए। प्रेम होना चाहिए, क्षमा होनी चाहिए, श्रद्धा होनी चाहिए। बाकी गलत, जिसे हमने गलत ठहराया हुआ है, वह नहीं होना चाहिए।

लेकिन आदमी एक जोड़ है, इकठ्ठा एक टोटलिटी। उसमें काँटे भी हैं और फूल भी। और अगर हमने यह तय किया कि काँटे नहीं होना चाहिए तो हमारा सारा श्रम काँटों को तोड़ने में लग जायगा। और काँटों का तोड़ने में लगा हुआ व्यक्ति काँटों को मिटा नहीं सकता, क्योंकि काँटे नये पैदा होते रहेंगें, वह उसके बीइङ्ग से आते होंगे, अस्तित्व से आते होंगे। ऊपर से तोड़ेगा, भीतर से आ जायेंगे। और काँटों में उलझ गये व्यक्ति की जो चेतना है, वह फूल पैदा करने में भी हो सकती है, हो सकता कि असमर्थ हो जाय।

आदमी ने अस्वाभाविक, अननेचुरल होने की कोशिश की है। हम स्वाभाविक होने को राजी नहीं हैं। हमारी पूरी संस्कृति और सभ्यता अस्वाभाविक होने का प्रयास है। हम जैसे हैं, वैसे नहीं—हमें कुछ और

होना है! इस कुछ और होने की दौड़ ने हमारे सारे स्वभाव को, सारी सहजता को नष्ट कर दिया है। हम सब रुग्ण हो गये हैं, हम सब बीमार हो गये हैं। इस रुग्णता को पहचानने की पहली तो जरूरत यह है कि क्या हम स्वाभाविक हुए बिना कभी भी शांत और आनंदित हो सकते हैं? क्या कोई भी आदमी कभी आनंदित हो सकता है, जब तक वह स्वाभाविक न हो जाय? जैसा सारे जीवन ने चाहा कि वह हो, तब तक वह वैसा न हो जाय, तो क्या वह शांत हो सकता है, आनंदित हो सकता है?

एक युवती मेरे पास आयी। अब तो युवती कहना मुश्किल है। प्रौढ़ है, चालीस वर्ष उसकी उम्र होगी। उसने विवाह नहीं किया है। नहीं किया है विवाह, क्योंकि उसकी धारणा है कि प्रेम सिर्फ आत्मा का आत्मा से होना चाहिए, शरीर बीच में नहीं आना चाहिए। शरीर पाप है। चालीस साल से उसने अपने को रोका है, शरीर को बीच में नहीं आने दिया। शरीर को बीच में नहीं आने दिया तो प्रेम भी उसके द्वार पर नहीं आया। क्योंकि अगर प्रेम आयेगा तो शरीर के द्वार को ही कहीं से खट-खटायेगा।

अगर कोई मेहमान आपके घर में आयेगा तो आप उससे कहें कि सीढ़ियाँ मत चढ़ना और मकान की दीवालों को पार मत करना। सीधे घर में आमंत्रित हैं, भीतर आमंत्रित हैं, लेकिन बाहर की दीवालों को स्पर्श मत करना और द्वार से प्रवेश मत करना। तो मेहमान कैसे आयेगा? मेहमान नहीं आयेगा।

चालीस वर्षं तक मेहमान नहीं आया, लेकिन अभी दुर्भाग्य से, या सौभाग्य से किसी व्यक्ति से उसका प्रेम हो गया है। तो वह बहुत कठिनाई में पड़ गयी है। वह मेरे पास आयी और मुझसे कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में हूँ। मैं आत्महत्या कर लूँगी। क्योंकि मैं तो मानती हूँ कि प्रेम आत्मिक होना चाहिए, शरीर बीच में आना नहीं चाहिए। अब प्रेम आया है और शरीर बीच में आता है। मैं प्रेमी को स्पर्श भी करना चाहती हूँ। और यह तो इतना पाप है, जिसका कोई हिसाब नहीं।

मैंने उस स्त्री से पूछा कि तू भोजन आत्मिक रूप से करती है कि

शारीरिक रूप से ? उसने कहा, भोजन तो शारीरिक रूप से ही करना होता है। तो मैंने कहा, आत्मिक भोजन शुरू करो, शारीरिक भोजन बन्द कर दो, क्योंकि शरीर पाप है। और वस्त्र तुम शरीर पर पहनती हो कि आत्मा पर ? उसने कहा, वस्त्र तो शरीर पर पहनने पड़ते हैं। मैंने कहा, व्यर्थ तू शरीर को बीच में लाती है, वस्त्र आत्मा पर ही पहनने चाहिए। उसने कहा, लेकिन, वस्त्र तो शरीर पर ही पहनने होंगे। खाना शरीर खायेगा, श्वाँस शरीर लेगा, खून शरीर बनायेगा। जिन्दगी शरीर के आधार पर खड़ी होगी, लेकिन नासमझी से भरे हुए सिद्धान्त कहते हैं कि शरीर को प्रेम में स्वीकार मत करना।

अब उसकी, उस स्त्री की जिन्दगी बहुत मुसीबत में पड़ गयी, क्योंकि उसने अपने दो हिस्से कर लिये—एक हिस्सा जिसे इनकार करना है और, एक हिस्सा जिसे स्वीकार करना है। जिसको वह दो हिस्से कर रही है, वह एक ही व्यक्तित्व के दो हिस्से हैं। शरीर और आत्मा कोई दो चीजें ऐसी नहीं हैं कि एक-दूसरे की दुश्मन हों।

सच तो यह है कि आत्मा का जो हिस्सा हमारी इंद्रियों की पकड़ में आ जाता है, वह शरीर है। और आत्मा का जो हिस्सा हमारी इंद्रियों की पकड़ में नहीं आता है, वह आत्मा है। इसे यों भी कह सकते हैं कि आत्मा का जो हिस्सा दिखाई पड़ जाता है, वह शरीर है। और शरीर का जो हिस्सा अदृश्य है और दिखाई नहीं पड़ता है, वह आत्मा है। लेकिन वे एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं।

लेकिन उस स्त्री की बड़ी परेशानी है। उसने कहा, यह तो मैं स्वीकार ही नहीं कर सकती। शरीर को मैं बीच में नहीं ले सकती, शरीर पाप है। तो मैंने उससे कहा, फिर जीना भी पाप है, क्योंकि बिना शरीर के जिया नहीं जा सकता है। एक क्षण भी नहीं जिया जा सकता बिना शरीर के। उसे बहुत देर तक समझाया, उसे मैंने कहा कि दोनों जुड़े हैं, दोनों इकट्ठे हैं। और जब कोई प्रेम से किसी के शरीर को स्पर्श करता है तो शरीर को ही स्पर्श नहीं करता—जब कोई प्रेम से किसी के शरीर को निकट कर लेता है तो शरीर का पता ही नहीं चलता है। और अगर

शरीर का पता चलता हो तो उस व्यक्ति के मन में रोग है और उसने दो हिस्सों में तोड़ रखा है अपने को।

उसे मेरी बात समझ में आनी शुरू हुई। उसने मुझसे कहा, यह भी मैं समझ सकती हूँ कि शरीर और आत्मा एक है। लेकिन, शरीर के ऊपर का हिस्सा शुद्ध है और शरीर के नीचे का हिस्सा अशुद्ध है। तो मैंने उससे कहा, वह सीमा-रेखा कहाँ है, जहाँ से शरीर का ऊपर का हिस्सा शुरू होता है और नीचे का। वह सीमा-रेखा कहाँ है ? वह किस जगह शरीर से अलग होता है—शुद्ध शरीर अलग और अशुद्ध शरीर अलग ? शरीर तो इकट्ठा है, कोई फिक्र नहीं करता। वह पूरे शरीर में दौड़ रहा है। श्वाँस फिक्र नहीं करती, वह पूरे शरीर में दौड़ रही है। हाथ पैर और सिर शरीर के लिये सब बराबर हैं। वहाँ कोई शुचि और कोई अशुचि नहीं, कोई शुद्ध अशुद्ध नहीं।

लेकिन उस स्त्री ने एक नया विभाजन किया। उसने कहा, कि नीचे का हिस्सा अपवित्र है। अगर ज्यादा से ज्यादा मैं स्वीकार भी कर सकती हूँ तो ऊपर के हिस्से को शरीर के स्वीकार कर सकती हूँ। उसने एक नया विभाजन किया। एक विभाजन था, शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं। इसमें आत्मा को स्वीकार करना है, शरीर को अस्वीकार करना है। यह रुग्ण होने के लक्षण हैं शीजोफ्रेनिक होने के लक्षण हैं। ऐसा व्यक्ति धीरे-धीरे पागल हो जायेगा और दो हिस्सों में टूट जायेगा। अब वह बमुश्किल किसी तरह राजी हुई शरीर आत्मा को स्वीकार करने को, तो वह शरीर को भी दो हिस्सों में तोड़ लेती है—नीचे का शरीर अलग है, ऊपर का शरीर अलग है ! अब यह स्त्री अगर पागल न हो जाय तो क्या होगा ?

लेकिन हमने भी अपने पूरे व्यक्तित्व के साथ ऐसा ही किया हुआ है। हमने पूरे मनुष्य को स्वीकार नहीं किया है। जैसा नैसर्गिक मनुष्य है, वैसा हमने स्वीकार नहीं किया है। इसका मतलब यह नहीं है कि अस्वीकार करने से हम कुछ बदल गये हैं। अस्वीकार करने से सिर्फ इतना हुआ है कि वह जो नैसर्गिक मनुष्य है, भीतर छिप गया है और वह जो झूठा मनुष्य है, जिसे हमने स्वीकार किया है, वह ऊपर आ गया है। हम सब

पाखण्डी हो गये हैं। हमारे चेहरे पर वह बात आ गयी है जो हमने थोप ली है। और हमारे अचेतन मन के कोने में, अन्धेरे में वह आदमी चला गया है, जो हम हैं। वह आदमी भीतर से धक्के दे रहा है—पूरे क्षण भीतर से वह कह रहा है, पूरे क्षण वह भीतर से संलग्न है काम में। पूरे समय, भीतर जिसको हमने दबा लिया है, वह काम कर रहा है, उससे छुटकारा मुश्किल है। वह नये-नये उपाय खोजता है, अपने काम जारी रखता है। क्योंकि नैसर्गिक को कभी तोड़कर अलग नहीं किया जा सकता है। जो स्वाभाविक है, उसे कभी नष्ट नहीं किया जा सकता है। वह रहेगा। उसका रहना अनिवार्यता है। सिर्फ छिपकर रहेगा, और छिपकर रहेगा तो आप दो हिस्सों में टूट जायेंगे। एक आपका चेतन, कान्शस दुनिया हो जायेगी। एक आपकी अनकान्सश दुनिया हो जायगी। बीच में एक बड़ी दीवाल खड़ी हो जायेगी। उस दीवाल के आर-पार हमारा जाना ही बन्द हो जायेगा। हम पीछे कभी लौटकर देखेंगे नहीं कि हमने अपने ही कितने हिस्से पीछे दबा रखे हैं। और अगर मैंने अपना एक हाथ भीतर दबा रखा है और दूसरा हाथ बाहर रखा है, तो क्या आप समझते हैं कि मैं दबे हुए हाथ से कभी मुक्त हो सकता हूँ ? दबे हुए हाथ के साथ मेरा खुला हुआ हाथ भी बँधा रहेगा। मैं एक कारा-गृह में बन्द हो जाऊँगा, जहाँ से निकलना बहुत मुश्किल हो जायेगा। और जिन्दगी की इसीलिए सारी स्फुरणा, सारा आनन्द, सारा ब्लशफुल जो कुछ भी है, वह सब खो गया है। क्योंकि आदमी अपने को ही टुकड़ों में तोड़ लिया है।

आदमी पूरा हो तो आनन्दित हो सकता है। आदमी टुकड़ों में हो तो उदास हो जायेगा। आदमी टुकड़ों में हो तो चिन्तित हो जायेगा।

चिन्ता का मतलब क्या है ? इंग्जाइटी का मतलब क्या है ?

चिन्ता का एक ही मतलब है कि आपके भीतर ही आपने ऐसे टुकड़े बाँट लिये हैं, जो आपस में लड़ रहे हैं। चिन्ता का और कोई मतलब नहीं है। चिन्तित आदमी का मतलब है, खुद के भीतर विरोधी टुकड़ों में बँधा हुआ आदमी, जो अपने से ही लड़ रहा है। अब कोई आदमी अगर अपने

से ही लड़ने लगेगा; अपने को ही खण्डों में बाँटकर अपने ही साथ शत्रुता करने लगेगा—मैं अपने ही दोनों हाथ लड़ाने लगूँ तो कौन जीतेगा, कौन हारेगा ? सिर्फ मैं टूटता जाऊँगा और नष्ट होता जाऊँगा।

हम सब चिन्तित हो गये हैं, तनाव से भर गये हैं, क्योंकि पूरा मनुष्य हमने स्वीकार नहीं किया है। जैसा प्रकृति ने आदमी को बनाया है, जैसा परमात्मा ने आदमी को जन्म दिया है, हमने उसे स्वीकार नहीं किया है। हमने कुछ हिस्सों को इन्कार कर दिया है, कुछ का विरोध किया है, कुछ को दबा दिया है, कुछ को रिप्लेस कर दिया है, कुछ को ऊपर कर लिया है। और हम अपने भीतर ही एक बड़ी बेचैनी की स्थिति में खड़े हो गये हैं। इससे हम उदास, इससे हम विक्षिप्त, इससे हम पागल हुए जा रहे हैं। इससे हमारे भीतर की दुनिया हमारे खिलाफ खड़ी है और हम पूरे वक्त अपने ही भीतर की दुनिया के खिलाफ खड़े हैं ! हम पूरे समय अपने से ही लड़ रहे हैं—उठने से लेकर सोने तक हम अपने से ही लड़ते चले जा रहे हैं !

एक आदमी अच्छी बातें बोल रहा है, उसे शराब पिला दें, वह आदमी गाली बकने लगता है। कोई पूछे कि शराब में ऐसी कौन सी केमिकल्स हैं, जो आदमी के भीतर गालियाँ पैदा कर देती हैं। शराब में ऐसी कोई ताकत नहीं है कि किसी आदमी में गालियाँ पैदा कर दे। लेकिन आदमी ऊपर से अच्छी बातें कर रहा था, भजन गा रहा था, और शराब पिला दी तो गाली बकने लगा है। भीतर उसके गालियाँ भरी हैं। भजनों से गालियों को दबा रहा है। शराब ने भजन के मन को शिथिल कर दिया है, सुला दिया है। भीतर का गाली वाला मन बाहर आ गया है और उसने बकवास शुरू कर दिया है।

इसलिए सज्जन आदमी शराब पीने में बहुत डरता है। उसके डरने का एक कारण यह भी है। उसके भीतर जो दुर्जन छिपा बैठा है, वह प्रगट हो सकता है। सज्जन आदमी बहुत भयभीत है। सज्जन आदमी कभी रिलेक्स नहीं करता, क्योंकि वह जरा भी रिलेक्स करे तो भीतर जो आदमी है, वह बाहर आ जावे। इसलिए सज्जन आदमी हमेशा तना

हुआ रहता है। हमेशा डरा हुआ रहता है। हमेशा अपने को बचाये रखता है कि कोई ऐसा क्षण न आ जाय कि जहाँ मेरे भीतर का दबा हुआ कुछ निकल आये।

इसलिए सज्जन आदमी को फिर दूसरी तरकीबें निकालनी पड़ती हैं। अगर उसको गालियाँ देनी हैं, तो वह होली की ईजाद करता है। उसको अगर गालियाँ बकनी है तो वह होली की ईजाद करता है, होली को धार्मिक त्यौहार बनाता है फिर वह गालियाँ बक सकता है, क्योंकि गालियों को उसने अब सेंकटिटी दे दी, अब गालियाँ भी पवित्र हो गयीं! अब वह मजे से जाकर आप के दरवाजे पर गालियाँ बक रहा है। और आप कहते हैं, होली का त्योहार है, कोई बुरा मानने की जरूरत नहीं है। सज्जन आदमी ने होली का त्योहार ईजाद किया है। दुर्जन को उसकी कोई जरूरत नहीं है।

फिर सज्जन आदमी और-और नयी तरकीबें ईजाद करता है, जहाँ कि वह अपने भीतर छिपे हुए रोगों को प्रगट करने के रास्ते खोजता है। वह मजाक करेगा, वह व्यंग करेगा। अगर दुनिया भर के सारे मजाकों का साहित्य उठाकर देखा जाय तो सौ में से निन्यानवे मजाक सेक्स से संबंधित होंगे। और सज्जन आदमी मजाक करेगा, और सिवाय सेक्स के मजाक की कोई और बात न होगी। लेकिन वह मजाक है, इसलिए उसे कोई गम्भीरता से न लेगा।

लेकिन सेक्स की बात को मजाक में उठाकर चर्चा करनी भीतर की किसी बीमारी की खबर है। फिर सज्जन आदमी सेक्स से भरी हुई फिल्में देखेगा, मर्डर से भरी हुई, हत्याओं से भरी हुई फिल्में देखेगा, उपन्यास पढ़ेगा, डिटेक्टिव कहानियाँ पढ़ेगा। तब इसमें कोई कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि इसमें कोई अड़चन नहीं मालूम पड़ती। लेकिन फिल्म में वह क्या देख रहा है? वह देख रहा है, जो वह करना चाहता है। वह उसे पर्दे पर दिखाई पड़ रहा है। उसके भीतर उसे बड़ी राहत मिल रही है। वह यह जो राहत उसको भीतर से मिल रही है—वह नये रास्ते खोज रहा है। इसलिए सज्जन आदमी का सारा साहित्य कामुकता से भरा हुआ होगा।

सारी कविताएँ घूम फिर के वहाँ लौट आयेंगी, जिनसे सज्जन आदमी भागा है। सारे गीत वहाँ आ जायेंगे जिनसे आदमी ने इन्कार किया है।

और सज्जन आदमी लड़ने के नये-नये उपाय खोजेगा—हिन्दू-मुस्लिम को लड़ायेगा, क्योंकि सज्जन आदमी को सीधा लड़ना बड़ा बुरा मालूम पड़ता है। वह सीधा नहीं लड़ सकता है कि वह आपसे कहे कि आओ, मेरा लड़ने का मन होता है, निपट लें। ऐसा वह नहीं कहेगा। वह कोई उपाय खोज लेगा कि गऊ माता का अपमान हो गया है—सज्जन आदमी अब लड़ने आ सकता है कि कुरान को किसी ने चोट पहुँचा दी है, तो रामायण को किसी का पैर लग गया है, कि मन्दिर की कोई मूर्ति टूट गयी है। सज्जन आदमी को लड़ने के लिए भी श्रेष्ठ और सज्जनोचित कारण चाहिए, तब वह लड़ने के लिए बाहर आयेगा। फिर वह लड़ सकता है मजे से, क्योंकि अब उसने एक धार्मिक वजह ले ली, एक धार्मिक आड़ ले ली। सज्जन आदमी फिर अच्छी आड़ें खोजेगा अपने भीतर के व्यक्तित्व को प्रगट करने के लिए, और अगर न प्रगट कर पाया तो पागल हो जायेगा।

पागल होने का मतलब यह कि जो प्रगट नहीं हो सका, और जिसने प्रगट होने की इतनी माँग की कि उस आदमी को सिवाय पागल होने के कोई रास्ता नहीं रह गया। फिर एक आदमी पागल हो जाता है तो हम उस पर दया करते हैं। फिर हम यह नहीं कहते कि यह बुरा आदमी है। अगर एक आदमी पागल होकर सड़कों पर गालियाँ बकता है तो हम कहते हैं, बेचारा पागल है। लेकिन यह आदमी पागल कैसे हो गया है? क्या हम सब भी उसी रास्ते से नहीं गुजर रहे हैं, जहाँ इसकी ही जगह पहुँच जायँ? क्या हम सबके भीतर भी यही सब रोग नहीं पाले जा रहे हैं?

और पाँच हजार साल से ज्ञात इतिहास से शिक्षा दी जा रही है आदमी को अच्छा बनाने की। क्या आदमी अच्छा बन गया है? कौन सी अच्छाई आदमी में आ गयी है? कारागृह कैदियों से भरे हुए हैं। पागलखाने पागलों से भरे हुए हैं। बीमार रोगियों से अस्पताल भरे हुए हैं। और एक-एक घर कलह और उपद्रव से भरा हुआ है। और अगर

हम आदमी की पूरी जिन्दगी को खोलकर देख सकें, जो कि बहुत मुश्किल हो गया है, क्योंकि हमने जिन्दगी को बहुत-बहुत पर्दों में छिपाया हुआ है। अगर हम एक दिन के लिए भी तय कर लें कि सारे आदमी वैसा ही व्यवहार करेंगे, जैसा करना चाहते हैं, तो हमें दिखायी पड़ेगा कि यह तो जिन्दगी बहुत और है, जो दिखायी पड़ती थी, वह बात कुछ और है। हम सबने अपने को छिपा रखा है।

लेकिन यह छिपा हुआ आदमी भीतर से अपने काम जारी रखे हुए है, इसलिए हर दस पन्द्रह साल में एक युद्ध की जरूरत पड़ जाती है। और दो चार साल में दंगा-फसाद चाहिए। रोज कोई छोटा-मोटा उपद्रव होता रहना चाहिए, ताकि हमारे भीतर वह जो छिपा आदमी है, उसकी तृप्ति भी होती रहे—उसकी तृप्ति भी होती रहनी चाहिए। अगर हम मनुष्य का पूरा इतिहास देखें तो ऐसा लगता है कि हम कह सकते हैं कि आदमी एक लड़ने वाला जानवर है। कोई जानवर इतना नहीं लड़ता। जानवर भी लड़ते हैं, लेकिन जानवर इस भाँति नहीं लड़ते हैं, और लड़ते ही रहते हैं, ऐसा नहीं है। और कम से कम लड़ने की कोई पूरी तैयारी तो नहीं करते हैं। आदमी या तो लड़ता है या लड़ने की तैयारी करता है।

दो ही तरह के काल खण्ड हैं इतिहास में—युद्ध और युद्ध की तैयारी। शांति का कोई काल खण्ड नहीं है। पूरे मनुष्य के इतिहास में शांति का कोई समय ही नहीं है। या तो युद्ध चल रहा है, या युद्ध की तैयारी चल रही है। यह जब युद्ध की तैयारी चलती है, उसको हम कहते हैं, अभी शांति का दिन चल रहा है। वह शांति का दिन नहीं है। क्योंकि पिछला युद्ध हमारी शक्ति को तोड़ जाता है, उसकी तैयारी करनी पड़ती है। तो जब हम शांति का समय बिता रहे हैं, उस वक्त युद्ध की तैयारी चल रही है, फिर नये युद्ध की तैयारी हो रही है।

सुबह पति नाराज होकर गया है, दोपहर बड़ा शान्त है। सावधान रहना, शान्त वगैरह कुछ भी नहीं है। क्योंकि फिर वह तैयारी कर रहा है क्रोध की, साँझ फिर वह क्रोध करेगा। सुबह माँ बेटे को डाँटी है, दोपहर बड़ा प्रेम प्रगट कर रही है! यह सुबह का पश्चाताप हो रहा है, लेकिन

वह फिर वापस लौट रही है अपनी जगह पर। सब पश्चाताप—हमने जो भूल की है, उसे पोंछने के उपाय होते हैं कि हम फिर पुरानी जगह खड़े हो जायें और फिर से वही कर सकें जो पश्चाताप के पहले करना संभव था। अगर मैं आपको गाली दे आया हूँ तो क्षमा माँगने आऊँगा। इसका यह मतलब है कि दोस्ती जारी रखिये, ताकि कल फिर गाली दे सकूँ। क्योंकि दोस्ती टूट जाय तो गाली देने का भी कोई उपाय नहीं है। तब, इसलिए क्षमा भी माँगूँगा, कल फिर वही करूँगा। पश्चाताप करूँगा, कल फिर वही क्रोध होगा, कल फिर वही घृणा होगी, कल फिर सब वही होगा!

यह आदमी की क्या स्थिति है, इसे सोचना और समझना जरूरी है। इसके पीछे क्या कारण है? यह आदमी इतना रुग्ण, इतना 'डिसीज्ड' क्यों है? इसके प्रेम के पीछे घृणा खड़ी रहती है। यह जिसे प्रेम करता है, उसे ही घृणा भी करता है। यह जिसे प्रेम करता है, उसकी भी हत्या का विचार करता है, उसके भी मर जाने का विचार करता है!

एक स्त्री के पति की कुछ वर्ष हुए मृत्यु हुई। वह मेरे पास आयी थी, बहुत रोने लगी। मैंने उन्हें कहा, रोओ मत, क्योंकि तुम्हारे पति को मैं पहले से भी जानता हूँ और तुम्हें भी जानता हूँ। और मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ, जो बहुत कठोर मालूम पड़ेगी, लेकिन फिर भी मुझे पूछना जरूरी है। मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूँ कि जब तुम्हारा पति जिन्दा था, तब तुम उसके जिन्दा होने से खुश थीं? और अगर उसके जिन्दा होने से खुश नहीं थीं तो उसके मरने से रोने का क्या कारण? उस पत्नी के आँसू एकदम सूख गये, जैसे बहुत 'शाक' लगा, लगने की बात थी, क्योंकि उसका पति मर गया है और उससे मैं यह कहूँगा—कि तुम सोचके नहीं आयी। वह सोचके आयी थी कि मैं सांत्वना दूँगा। समझाऊँगा, बुझाऊँगा, उसके मन को राहत दूँगा। कहूँगा बहुत बुरा हो गया। उसने यह सोचा भी नहीं था कि मैं उससे यह पूछूँगा कि तेरा पति जिन्दा था तो तू उसके जिन्दा होने से खुश थी? और अगर उसके जिन्दा होने से खुश न थी तो उसके मरने से रोने का क्या सम्बन्ध है?

उसके आँसू सूख गये थे। उसने मुझे पहले बहुत क्रोध से देखा है,

फिर वह विनम्र हो गयी और फिर दुबारा रोने लग गयी। अब उसका रोना बहुत दूसरा है। और उसने मुझसे कहा रोते हुए कि आप यह क्या पूछते हैं, यह तो मुझे ख्याल भी नहीं था। लेकिन आप ठीक ही मेरे घाव को छू दिये। जब तक मेरे पति जिन्दा थे, मैं जरा भी खुश न थी। और आप ठीक कहते हैं, ऐसे कई मौके रहे होंगे, तब मैंने सोचा होगा कि यह आदमी मर ही जाय तो बेहतर है, या मैं मर जाऊँ तो बेहतर है। लेकिन अब मैं क्यों रो रही हूँ। मैं आपसे पूछती हूँ कि मैं क्यों रो रही हूँ? अगर मैं जिन्दा रहने में खुश न थी, तो मैं मरने से रो क्यों रही हूँ?

यह स्त्री क्यों रो रही है पति के मर जाने से? यह पति के मरने का दुःख है? यह तभी हो सकता था जब पति के जीने का कोई आनन्द रहा हो। लेकिन वह नहीं था। तब क्या है? तब कौन सी कठिनाई इसे रुला रही है?

इसके भीतर कोई जगह खाली हो गयी है। दुश्मन भी हमारे भीतर जगह भरे रहते हैं, और अगर एक दुश्मन भी मर जाता है तो आपके भीतर थोड़ी जगह खाली हो जाती है। मित्र के मरने से तो होती ही है, दुश्मन के मरने से भी आपकी दुनिया वही नहीं रह जाती है जो कल तक थी। सब रद्दोबदल हो जाता है। पति के मरने से सब बदल गया है। कल तक की जो जिन्दगी थी, अब आगे नहीं होगी। न, कल के दुःख भी अब नहीं होंगे। सुख तो थे ही नहीं, कल के दुख भी अब नहीं होंगे। कल की चिन्ताएँ भी अब नहीं होंगी। कल की परेशानियाँ भी अब नहीं होंगी। कल का सब टूट गया। पति के साथ कल की एक दुनिया गिर गयी, और नयी दुनिया बनाने की हमारी हिम्मत इतनी कम है कि हम रो रहे हैं। लेकिन यह किसी आनन्द के खो जाने के आँसू नहीं हैं। आनन्द तो था ही नहीं।

क्या आपको पता है कि आपको पहली दफा ही पता चलता है कि किसी आदमी की जिन्दगी से हमें आनन्द था—तभी पता चलता है, जब वह आदमी मर जाय। उसके पहले आपको कभी पता नहीं चलता है। जब तक वह आदमी जिन्दा है, आपके साथ है, आपको पता नहीं चलता

है। मित्र जब छूट जाता है, तब याद आती है। जब तक साथ होता है, तब तक आप कहीं और देखते रहते हैं। पत्नी जब तक साथ है, तब तक प्रीतिकर नहीं है। कल मर जायेगी, तो हो सकता है जिन्दगी भर रोते रहें। पति जब तक साथ है, तब तक उसमें कोई अर्थ नहीं है। हो सकता है कल जिन्दगी भर उसकी मूर्ति रखकर पूजा करें।

यह आदमी को हो क्या गया है?

आदमी जिसे प्रेम करता है, उसे ही घृणा भी कर रहा है। और आदमी जिसे बचाना चाहता है, उसे मार भी डालता है। लेकिन मारने की भी तरकीबें हैं और बचाने की भी तरकीबें हैं। एक माँ अपने बेटे को बचाना चाहती है, एक माँ अपने बेटे के लिए इतना काम कर रही है, इतना श्रम कर रही है, लेकिन साथ ही बेटे को मार भी रही है। बेटे की स्वतन्त्रता बरदाश्त नहीं है। बेटे को बचाना चाहती है—उसको भोजन दे रही है, उसकी सेवा कर रही है। लेकिन उसकी स्वतंत्रता को बिल्कुल मार डालना चाहती है। और जिन्दगी भर चाहेगी कि बेटा उस पर निर्भर रहे, 'डिपेंडेंट' रहे, और जब भी तकलीफ में आये तो उसकी गोद में सिर रख ले। कभी भी बेटा इतना बड़ा न हो जाय कि उसकी गोद बेकार मालूम पड़ने लगे। यह भी आकांक्षा साथ चल रही है।

अब ये दोनों आकांक्षाएँ बड़ी विरोधी हैं। वह बेटे को बड़ा करना चाहती है, और बड़ा करने का अनिवार्य हिस्सा यह है कि बेटा उससे स्वतंत्र हो जाय। लेकिन साथ ही वह बेटे को छोटा भी बनाये रखना चाहती है, ताकि वह निर्भर भी रहे। और वह बेटे को मार भी रही है और बेटे को जिला भी रही है। वह बेटे को मिटा भी रही है और बेटे को बना भी रही है। और उसे ख्याल भी नहीं है। और बेटा इसका बदला भी लेगा, क्योंकि बेटे को वह जो मिटाने की कोशिश चल रही है, वह भी उसे पता है। इसलिए बेटे में भी दोहरे भाव अपनी माँ के प्रति पैदा हो रहे हैं एक साथ—वह उसको प्रेम भी करता है और घृणा भी करता है। वह उसे प्रेम भी करता है, क्योंकि वह उसे जिन्दगी दे रही है, दूध दे रही है, उसे बड़ा कर रही है। और उसे घृणा भी करता है, क्योंकि

उसकी सारी स्वतन्त्रता छीन रही है। उसका व्यक्तित्व वह पीछे डाल रही है। उसको वह अलग से खड़े नहीं होने देना चाहती। वह दोनों काम एक साथ उसके भीतर पैदा हो रहे हैं। वह उसे घृणा भी करेगा, वह उसे प्रेम भी करेगा। और बाद में उसकी घृणा भी प्रगट हो सकती है। आज उसका प्रेम है, कल बुढ़ापे में उसकी घृणा वापस प्रगट हो सकती है।

एक बाप अपने बेटे को बड़ा भी कर रहा है, और डर भी रहा है, क्योंकि बाप अपने बेटे में अपना 'पोटेंशियल एनेमी' को भी देखता है, अपने बुनियादी दुश्मन को भी देखता है। क्योंकि आज नहीं कल, यही बेटा उसकी सब तिजोड़ियों और सब चाबियों का मालिक हो जायगा। इसलिये बहुत गहरे में वह इससे डरा भी हुआ है। इसलिए वह पूरा निश्चित कर लेना चाहता है कि बेटा ठीक मेरी इच्छा के अनुसार चले। ताकि चाबियाँ भला इसके हाथ में हो लेकिन इच्छाएँ मेरी हों भीतर। तब चाबियों की तिजोड़ियाँ मेरी इच्छाओं से ही खु ें और तिजोड़ियाँ मेरी इच्छाओं से ही बंद हों। इसलिए बेटे को वह ओबेडिएंट और आज्ञाकारी बनाने की चेष्टा में लगा हुआ है। इसके पहले कि बेटे के हाथ में चाबी आ जाय, वह पूरा आज्ञाकारी हो जाना चाहिए। तब चाबी उसके हाथ में होगी, लेकिन हाथ हमारी आज्ञा से चलते होंगे। इसलिए वह पूरा इन्तजाम भी कर लेना चाह रहा है। वह डरा भी हुआ है कि बेटा अगर बग़ावती हो जाय, तो कल सारी ताकत उसके हाथ में चली जायेगी ! तो बाप बेटे से डरा भी हुआ है, प्रेम भी कर रहा है—एक ही साथ भयभीत भी है और प्रेम भी कर रहा है ! और प्रेम और भय दोनों एक साथ कैसे हो सकते हैं ? बेटे को भी दोनों बातें पता चल रही हैं कि बाप प्रेम भी कर रहा है—इसलिए बेटा भी बाप को प्रेम करता है और वह यह भी देख रहा है कि बाप भयभीत भी है। और भयभीत होने की वजह से बेटे को डरा रहा है ताकि बेटे को भयभीत कर दे। इसके पहले कि बाप भयभीत किया जा सके, बाप बेटे को भयभीत कर देना चाहता है। ताकि बेटा डरा रहे जिन्दगी भर और कभी ऐसा न हो कि बाप को डराने लगे। वह बेटे को डरा दे रहा है

तो बेटा घृणा भी कर रहा है। जो डराता है, उससे घृणा भी पैदा हो जाती है।

हमने सारी जिन्दगी एक जाल बना रखी है। हम जिसे प्रेम कर रहे हैं, उसे मुट्ठी में बाँध लेना चाहते हैं, उसे बिल्कुल पजेस कर लेना चाहते हैं, उसके मालिक बन जाना चाहते हैं। पति का मतलब ही होता है मालिक ! इसलिए पत्नी उसको स्वामी कहती भी है और जब उसको स्वामी लिखती है तो वह बहुत प्रसन्न होता है। वह उसको दस्तखत में नीचे लिखती भी है आपकी दासी।

हम जिसे प्रेम करते हैं, उसे गुलाम बना लेना चाहते हैं। और गुलामी में कभी प्रेम संभव है ? जो हमारा गुलाम हो जायेगा, वह हमें प्रेम कर सकेगा ? और जिसकी गर्दन मैं पकड़ लूँगा वह मुझे प्रेम कर सकेगा ? प्रेम एक स्वतंत्रता का दान है। सिर्फ उन लोगों से मिल सकता है, जो स्वतन्त्र हैं। अगर मेरी गर्दन कोई दबाये और कहे कि मुझे प्रेम दो, तो मैं वह सब दे सकता हूँ, प्राण दे सकता हूँ, लेकिन प्रेम देना असंभव हो जायेगा। क्योंकि प्रेम छीना नहीं जा सकता। लेकिन पति, पत्नियों से छीन रहे हैं। पत्नियाँ पतियों से छीन रही हैं। बाप बेटों से छीन रहे हैं, बेटे माँ से छीन रहे हैं। मित्र मित्रों से छीन रहे हैं।

हम सब प्रेम छीन रहे हैं और इसलिए हर आदमी एक दूसरे पर कब्जा किये हुए है, कि कोई और न छीन ले, इसलिए मैं पूरा का पूरा निचोड़ लूँ। जब हम एक दूसरे को इस बुरी तरह दबाये हुए हों, पजेस करते हों, मालिक बन गये हों, तो क्या आपको पता है कि जिसके हम मालिक बनने की कोशिश करते हैं, वह आदमी नहीं रह जाता है, वस्तु हो जाता है। वस्तुएं पजेस की जा सकती हैं। मैं इस कुर्सी का मालिक हो सकता हूँ, एक आदमी का मालिक नहीं हो सकता। मैं एक मकान का मालिक हो सकता हूँ, लेकिन एक स्त्री का मालिक नहीं हो सकता। लेकिन अगर मैंने स्त्री का मालिक होने की कोशिश की, तो ध्यान रहे, स्त्री संपत्ति हो जायेगी। स्त्री फिर आदमी नहीं रह जायेगी। और इसलिए स्त्रियाँ

संपत्ति हो गयी हैं। हम तो अपने मुल्क में कहते भी हैं कि स्त्री संपत्ति है। हमने उसे संपत्ति का हिस्सा बना दिया है। हमने उसे संपत्ति मान रखा है। हम जिसको भी दबाकर कब्जा कर लेगें वह संपत्ति हो जायेगी, उसकी आत्मा खो जायेगी, क्योंकि जहाँ आत्मा है, वहाँ स्वतन्त्रता है। हम कैसा पागलपन कर रहे हैं! अगर हम प्रेम चाहते हैं तो पजेशन की बात छोड़ देनी चाहिए। अगर प्रेम चाहते हैं तो कभी किसी के मालिक मत बनना। अगर प्रेम चाहते हैं तो कभी किसी को वस्तु और सामग्री मत बना देना, चीजें मत बना देना। व्यक्ति को आत्मा देना है।

लेकिन हम जिसको प्रेम करते हैं, उसी को कस के पकड़ लेते हैं। बल्कि हम प्रेम पीछे करते हैं, कसके पकड़ लेने का इन्तजाम पहले करते हैं। इसलिए प्रेम पीछे आता है, विवाह पहले आ जाता है। विवाह है कस के पकड़ लेने का पहले इन्तजाम—पीछे प्रेम, पहले विवाह। विवाह इस बात की खबर है कि अब भाग नहीं सकते हो। अब कब्जा पूरा है और कानूनन। और अगर कोई भागेगा तो कानून और समाज गवाह होगा। इसलिए इतना शोर गुल मचाना पड़ रहा है, इतने बैण्ड-बाजे बजाने पड़ते हैं, ताकि पूरे गाँव को पता चल जाय। इतने इनव्हीटेशन छापने पड़ते हैं। यह खबर है इस बात की कि हम बँध गये हैं, पूरे गाँव को पता है। भाग नहीं सकते हो। पूरी दुनिया को पता है। भाग नहीं सकते हो—रजिस्टर पर लिखवाना पड़ता है दफ्तर में, या पण्डित पुजारी शोरगुल मचाकर सारे गाँव में खबर कर देते हैं। सारे समाज को इकट्ठा कर लेना पड़ता है। सारे मित्र, प्रियजन इकट्ठे हो जाते हैं, ताकि सब जान ले कि ये दो व्यक्ति बँध गये हैं, अब ये भाग नहीं सकते। दुनिया अच्छी होगी तो यह शोरगुल बहुत पागलपन मालूम पड़ेगा। दुनिया अच्छी होगी तो प्रेम दो आदमियों के बीच की बात है, इसमें समाज को शोरगुल मचाने की जरूरत नहीं है। इसमें बैण्ड बाजे बहुत बेहूदा हैं। इनका कोई मतलब नहीं है, इनकी क्या जरूरत है? लेकिन इनकी जरूरत अब तक रही है, क्योंकि बन्धन को सोशल कांट्रेक्ट बनाना है, उसको समाजिक इकरारनामा बनाना है कि समाज उसकी गवाही दे दे कि हाँ यह बात पूरी हो गयी

है, अब भाग नहीं सकोगे, अब दोनों बँध गये हो—कसम खिलवा ले समाज अपने सामने।

हम प्रेम के लिए उतने उत्सुक नहीं हैं, जितने विवाह के लिए उत्सुक हैं, क्योंकि विवाह में हम एक दूसरे के मालिक बन जाते हैं। और प्रेम में कोई किसी का मालिक नहीं बनता है।

प्रेम में दो व्यक्ति स्वतन्त्र होते हैं।

स्वतन्त्रता में ही प्रेम के फूल खिल सकते हैं।

आदमी का समाज प्रेम से क्षीण और हीन हो गया है, क्योंकि हमने प्रेम को जबरदस्ती छीन कर पैदा करना चाहा है, वह पैदा नहीं हो सका है। और जब तक आदमी की जिन्दगी में प्रेम का फूल न खिले तब तक आदमी स्वस्थ नहीं हो सकता है, और न आनन्दित हो सकता है और न प्रसन्न हो सकता है। इसलिए छोटे बच्चों में थोड़ी बहुत प्रसन्नता दिखाई पड़ती है। लेकिन धीरे-धीरे जिन्दगी जैसे आगे बढ़ती है, प्रसन्नता खोती चली जाती है। धीरे-धीरे बूढ़ा होता आदमी करीब-करीब बहुत पहले मर चुका होता है। हमारा बहुत सा अस्तित्व पोस्टमार्टम के बाद का है। मर चुके हैं, उसके बाद लाश चलती चली जाती है।

ऐसी यह जो रुग्ण चित्त दशा है आदमी की, इसके पीछे एक कारण जो मैं आज आप को कहना चाहता हूँ, वह यह है कि हमने जीवन की सहजता को, वह जो नेचुरल, वह जो स्वाभाविक प्रकृतिगत मनुष्य है, उसको अस्वीकार किया है, उसे हमने स्वीकृति नहीं दी है। और मैं आस्तिक आदमी का पहला लक्षण मानता हूँ कि जो प्रकृति ने दिया है, उसे पूरी तरह स्वीकार करता है। स्वीकृति उसका पहला लक्षण है। टोटल स्क्सेप्टिबिलिटी, वह जो मेरे भीतर है, उसका पूर्ण स्वीकार! इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कह रहा हूँ कि आपको हत्या करनी है तो आप हत्या करें। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं यह कह रहा हूँ कि मकान में आग लगाना है तो आप आग लगायें। सच तो यह है कि आपने चूँकि अपने भीतर के हिस्सों को अस्वीकार किया है, इसलिए आप हत्या भी करते हैं और आग भी लगाते हैं। अगर आपने अपने भीतर के कोई हिस्से अस्वीकार नहीं किये होते तो आप उस लयबद्धता को

उपलब्ध हो जाते, जिसके लिए आग लगाना और हत्या करना असंभव है। उस शर्मनी को, उस संगीत को आप उपलब्ध हो सकते थे, जिसको आप उपलब्ध नहीं हो पाये हैं।

कोई आदमी आग लगा रहा है—यह इस बात की खबर है, कि यह आदमी विक्षिप्त है। और कोई आदमी किसी की हत्या कर रहा है, यह इस बात की खबर है कि यह आदमी होश में नहीं है। इसके कोई ऐसे हिस्से काम कर रहे हैं, जिनका इसे खुद ही नहीं पता है, जिनकी इसकी मालकियत नहीं है। इसने अपने ही कुछ हिस्सों को इतने भीतर दबा दिया है कि वे ही किसी दिन इसके ऊपर हाबी हो जायेगें और आग लगवा देगें, हत्या करवा देगें।

अदालतों में न मालूम कितने हत्यारे यह कहते हैं कि हमें यह पता नहीं कि हमने यह कैसे किया। हमें यह याद ही नहीं आता है कि हमने यह किया। पहले तो मजिस्ट्रेट सोचते थे कि ये झूठी बातें हैं, लेकिन अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं, यह झूठ नहीं है, कुछ हत्यारे हत्या करने के बाद भूल ही जाते हैं कि उन्होंने यह हत्या की है। क्योंकि उनका वह हिस्सा हत्या करता है, जिससे उन्होंने अपने संबन्ध ही बहुत पहले तोड़ लिये। उनके आइडेन्टिटी ही टूट गयी है. उनके भीतर के उस हत्यारे से उन्होंने बहुत पहले संबंध ही तोड़ लिया है, इसलिए उन्हें याद भी नहीं आता है कि यह हत्या उनने की है। यह हत्या न मालूम कैसे हो गयी है। यह हत्या हमने नहीं की है। जब वे होश में आते हैं, जब आप रात सपने में किसी की हत्या कर देते हैं तो सुबह आप यह थोड़े ही कहेंगे कि मैंने हत्या की है। आप कहते हैं कि सपना था। सपने में हो गयी है यह बात।

अगर आपने भीतर ऐसे हिस्से दबाये रखे हैं तो वे हिस्से कभी प्रगट हो सकते हैं—अभी अहमदाबाद में वे हिस्से प्रगट हुए हैं। नाम और बहाने कुछ भी हो सकते हैं। मेरे एक मित्र ने कहा कि उन्होंने अपनी आंख के सामने पाँच-छः लोगों को इकट्ठे जलाये जाते देखा। उनमें एक छोटा बच्चा भी है। वह बच्चा आधा जल गया है और भाग रहा है और भीड़

ने उस बच्चे को वापस धक्के देकर उस आग में डाल दिया है। वे पाँच छः लोग जिन्दा जलाये गये हैं। भीड़ यह देखती रही कि कोई भाग न जाय, कोई अधूरा जला हुआ बाहर न निकल आये। फिर भीड़ भाग गयी, वे अधजली लाशें तड़फती, चिल्लाती, हाथ-पैर पटकती वहीं पड़ी रह गयीं। उनको कोई देखने को भी वहाँ नहीं रह गया!

यह जो लोग कर रहें हैं—आप ऐसा मत सोचना कि आपसे अलग कोई और हैं या मुझसे अलग कोई और हैं। जब तक हम इस भाषा में सोचेंगे कि यह कोई और लोग हैं—गुण्डे और बदमाश हैं, तब तक हम गलत नतीजे पर पहुँचते रहेंगे। यह हम ही हैं और हमारे भीतर का कोई हिस्सा यह कर सकता है। जरा अपने भीतर सोचना कि कभी ऐसा करने का मन अपने भीतर भी आ सकता है। किसी मौके पर भीतर से यह बात उभर सकती है। हो सकता है, आपको पता भी न चले और आप कहें, मैं ऐसा कभी भी नहीं कर सकता हूँ। जिन लोगों ने यह किया है—करने के पहले वे भी यही कहते थे और करने के बाद भी अगर आज कोई उनसे पूछेगा तो वे कहेंगे, हमारी समझ में नहीं आता, भीड़-भड़क्के में हम कैसे साथ हो गये, यह हमारी समझ में नहीं आता। लेकिन हम सिर्फ साथ थे, हमने खुद कुछ भी नहीं किया है।

मैं भी साथ हो सकता हूँ, आप भी साथ हो सकते हैं। हम भी यह कर सकते हैं। हमारे भीतर अधूरा, कटा हुआ आदमी पड़ा है—बिल्कुल अपरिष्कृत, बिल्कुल ही आदिम, बिल्कुल ही जंगली आदमी हमारे भीतर पड़ा है और उसको हमने अंधी दीवालें बनाकर पीछे छोड़ दिया है। और उसको बदलने का उपाय भी नहीं आया, उसको बनाने का उपाय भी नहीं आया, उसको सँवारने का उपाय भी नहीं आया, क्योंकि हमने इन्कार ही कर दिया है कि वह हमारा हिस्सा है।

जब आप किसी से कहते हैं कि मुझे क्रोध आ गया, माफ कर दें, भूल हो गयी। तब ऐसे कहते हैं, जैसे क्रोध कोई बाहर से चीज थी, जो आ गयी। आप कहते हैं, मुझे क्रोध आ गया। लेकिन कभी आपने ख्याल किया है कि क्रोध बाहर से कभी भी नहीं आया है। कोई ऐसी चीज नहीं

है, जो आसमान से आपके पास आ गयी है और आप भूल से उसके चक्कर में पड़ गये हैं। लेकिन कहते हम ऐसे ही हैं कि मुझे क्रोध आ गया, माफ कर दें।

नहीं, जब क्रोध आता है तो बाहर से नहीं, भीतर से ही आता है। और अगर और गहरे उतर कर देखेंगे तो यह वाक्य ही गलत है कि मुझे क्रोध आता है—चाहे भीतर से चाहे बाहर से। जब आप क्रोध में होते हैं, तब सचाई यह है कि आप क्रोध ही होते हैं। ऐसा नहीं कि आप क्रोध करते हैं। हम क्रोध ही हो जाते हैं। तो हमारा भीतर कोई पड़ा हुआ हिस्सा पूरी तरह फैलकर हमें घेर लेता है और हम क्रोध ही हो जाते हैं। जब घृणा पकड़ती है तो हम घृणा ही हो जाते हैं। जब हत्या पकड़ती है तो हम हत्या ही हो जाते हैं। यह हम हो सकते हैं, हममें से कोई भी हो सकता है।

सारी मनुष्यता इस खण्ड-खण्ड बँटे हुए आदमी से पीड़ित है। इसलिए पहला सूत्र, इस पर हम बात करेंगे कि कैसे मनुष्य अखण्ड हो सके।

खण्ड-खण्ड मनुष्य रुग्ण मनुष्य है। अखण्ड मनुष्य स्वस्थ हो सकता है। टुकड़े-टुकड़े में टूटा हुआ मनुष्य चिन्तित रहेगा। सब टुकड़े इकट्ठे हो जायँ, समग्र हो जायँ तो आदमी चिन्ता के बाहर हो सकता है। बँटा हुआ आदमी उदास, बीमार, परेशान रहेगा। अनबँटा आदमी, इंटीग्रेटेड, समग्र आदमी, आनंदित प्रफुल्लित, प्रसन्न हो सकता है। और ध्यान रहे, अखण्ड आदमी ही प्रभु के द्वार पर दस्तक भी दे सकता है, क्योंकि जो पूरा है, वही उस पूरे से मिलजुल भी सकता है। जो अधूरा है वह उस पूरे से मिलने की यात्रा पर भी नहीं जा सकता है। यह पहला सूत्र है।

इस सम्बन्ध में जो भी प्रश्न हों, वह आप लिखकर दे देगें। और कल सुबह के सम्बन्ध में दो तीन सूचनाएँ हैं, क्योंकि कल सुबह ८ से ९ बिड़ला क्रीड़ा केन्द्र में ध्यान के लिये मित्र इकट्ठे हो रहे हैं। वहाँ ध्यान का कुछ प्रयोग करेंगे कि ध्यान घटित हो जाय। तो वहाँ वे ही लोग आयेंगे जो सुनने में उत्सुक नहीं हैं, कहीं जाने में उत्सुक हैं। वहाँ कोई बात नहीं होगी ज्यादा। कुछ प्रयोग ही होगा। सुनने के लिए उत्सुक लोग वहाँ

नहीं आयेंगे। वहाँ कहीं जाने की आतुरता जिनकी हो, केवल वे ही लोग आयें। बिना स्नान किये न आयें, स्नान करके ही आयें ताकि शुद्ध, ताजे हो जायँ। ताजे कपड़े पहनकर आयें और घर से निकलते ही करीब-करीब मौन साध लें। थोड़ा बहुत बोलना पड़े तो बोलें, अन्यथा चुप ही आयें ताकि वहाँ आते-आते मौन का एक भाव बन जाय। आँखों का भी बहुत उपयोग न करें। घर से आते वक्त बन सके उतनी देर आँखें बन्द करते हुए आयें, लेकिन थोड़ी आँख खोले आयें, पूरी आँख न खोलें। और रास्ते के किनारे लगे हुए सब तरह के पोस्टर पढ़ते हुए मत आयें। आँख धीमी कर लें, आँख बन्द ही रखें तो बहुत अच्छा, थोड़ा बहुत खोलें तो अच्छा। आँख बन्द किये हुए, ओंठ बन्द किये हुए न बोले तो अच्छा है। चुप-चाप आयें। वहाँ आकर कोई बात न करें, चुपचाप बैठ जाँय जो सूचनाएँ मैं दूँगा, उसके अनुसार सुबह हम प्रयोग करेंगे।

आपके जो भी प्रश्न होंगे, लिख कर दे देंगे। ध्यान के सम्बन्ध में जो प्रश्न होंगे, वह सुबह लिख कर देगें। साँझ की चर्चाओं के सम्बन्ध में जो प्रश्न होंगे, वह साँझ लिख कर देंगे।

मेरी वार्ता को इतनी प्रेम और शान्ति से सुना, उससे अनुग्रहीत हूँ। अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

———

ग्वालिया टैंक, बम्बई, २४ नवम्बर, १९६९.

२ : आनन्द का झरना

मेरे प्रिय आत्मन्,

एक छोटे से गाँव में कुछ दिनों के लिए ठहरा हुआ था। पहाड़ों की तलहटी में बसा हुआ वह गाँव है। रोज सुबह उस पहाड़ के पास घूमने जाता था। रास्ते के किनारे एक झरने से दोस्ती हो गई। कुछ देर वहाँ बैठता, फिर लौट आता। छोटा ही झरना था, लेकिन बड़ा जीवन्त था। गति थी, प्रवाह था, जिन्दगी थी।

फिर दो वर्ष बाद मैं उस गाँव में गया, उस झरने की खोज में गया, लेकिन अब वह झरना नहीं रहा। एक बड़ी चट्टान उस झरने के ऊपर गिर गई है। अब भी पानी बहता था, लेकिन झरना अब नहीं था। झरना खण्ड-खण्ड में टूट गया था। बहुत टुकड़े हो गये थे। छोटी-छोटी बहुत धाराएँ हो गई थीं। न अब गर्जन था, न अब तेजी थी, न अब बहाव था। पानी रिसता था। पहाड़ अब भी उस पानी से गीला हो जाता था, लेकिन झरना अब नहीं था। उस चट्टान के पास बैठकर मैं सोचने में लगा था, आदमी की जीवन्त धारा पर क्या कोई चट्टान नहीं गिर गयी है? आदमी की चेतना की धारा पर, उसके झरने पर भी तो कोई चट्टान नहीं गिर गई है?

मैं कल कह रहा था कि हमने मनुष्य के प्राकृतिक रूप को स्वीकार नहीं किया। दूसरा सूत्र आप से कहना चाहता हूँ कि चूँकि हमने प्राकृतिक रूप को स्वीकार नहीं किया, झरने पर चट्टान रख करके हमने अप्राकृतिक स्वरूप का निर्माण किया है। गति चली गई, आवाज चली गई, झरना खो गया। अब पानी की छोटी-छोटी धाराएँ रह गई हैं—खण्ड-खण्ड। मनुष्य के ऊपर दमन की चट्टान रखकर हमने उसे अप्राकृतिक बनाने की

कोशिश की है। मनुष्य को अप्राकृतिक बनाने की जो प्रक्रिया है, वह रिप्रेशन है, वह दमन है। और मनुष्य का रूप जो दमित हो गया है, वह हजार-हजार छोटी-छोटी धाराओं में टूट कर नये-नये रास्तों को तोड़ कर अब भी पहाड़ को गीला करता है। झरने की शान नहीं रह गई है, लेकिन पानी बहुत तरफ से बहता है। अब झरने की जगह घाव मालूम पड़ता है। धारा की जगह सब बँध गया है। और जो झरना एक जिन्दगी देता था, वह झरना अब छोटे-छोटे डबरों में बँध कर गन्दगी दे रहा है।

आज दूसरा सूत्र मैं आप से बात करना चाहता हूँ, क्योंकि मनुष्य के ऊपर जो बड़ी करुणा की जरूत है, यह करुणा उसे दमन से मुक्त की ही हो सकती है। क्योंकि दमन ने ही मनुष्य को क्रूर, कठोर, दुःखी और पीड़ित कर दिया है। दमन ने ही मनुष्य को हिंसा से, प्रतिहिंसा से और न मालूम कितने रोगों से भर दिया है।

इसे थोड़ा समझना जरूरी होगा। क्योंकि एकदम से यह बात दिखाई नहीं पड़ती। क्योंकि हमने वह झरना ही नहीं देखा। मैं तो उस गाँव में दो बार गया था—एक बार जब वह झरना था और दूसरी बार चट्टान गिर गई थी। हम जिन्दगी के जिस गाँव में आये हैं, वहाँ चट्टान गिरी हुई ही हमें मिली है। हमें झरने का कोई पता ही नहीं है। इसलिए हम तय भी नहीं कर पाते कि हम क्या हो सकते थे? हजारों साल, लाखों साल की लम्बी कहानी है, उस चट्टान के गिर जाने की, इसलिए अब हमें पता नहीं है कि कोई चट्टान गिर गयी है। उसने झरने को खण्ड-खण्ड कर दिया है, संगीत छीन लिया है, सौंदर्य छीन लिया है। शान छीन ली है, गरिमा छीन ली है, सब नष्ट कर दिया है। सिर्फ घाव और डबरे रह गये हैं, जिन पर गन्दगी के सिवाय अब कुछ भी पैदा नहीं होता है। तो हम, इस दमन की चट्टान ने कैसे खण्ड पैदा किए, इसे थोड़ा समझें।

बहुत कठिन है समझना, लेकिन थोड़ी खोज बीन करें तो समझ में बात आ सकती है। मैं कल कह रहा था कि सारी दुनिया में धन को इकट्ठा करने का पागलपन है, लेकिन क्या कभी आपने सोचा कि धन को इकट्ठा करने का पागलपन किस मूल झरने के टूटने और खण्डों से पैदा

हुआ है ? तो मैं आप से कहना चाहता हूँ कि जो आदमी जीवन में प्रेम देने और लेने में असमर्थ रह जाते हैं, जिनके प्रेम की धारा पर चट्टान गिर जाती है, वह आदमी धन इकट्ठा करने में लग जाता है। जब प्रेम की धारा पर दमन की चट्टान गिरती है तो धन इकट्ठा करने का पागलपन पैदा हो जाता है। इसके पीछे गहरे कारण हैं।

कभी देखा होगा अनाथ बच्चों को तो उनके पेट बहुत बढ़े हुए मालूम पड़ेंगे। अनाथ बच्चों का पेट बड़ा हो जायेगा, क्योंकि अनाथ बच्चों को माँ के प्रेम का कोई भरोसा नहीं है। जब वह रोयेगा, तभी दूध मिलेगा, इसका कोई पक्का भरोसा नहीं है। तो जब उसे दूध मिलता है, तो वह ज्यादा से ज्यादा दूध इकट्ठा कर लेना चाहता है। खाना मिलता है तो ज्यादा से ज्यादा खान इकट्ठा कर लेना चाहता है। अनाथ बच्चे के मन में संग्रह की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है, क्योंकि प्रेम का कोई भरोसा नहीं है। लेकिन माँ के पास बड़ा हो रहा बच्चा है, वह कभी ज्यादा दूध नहीं पी लेता है, बल्कि माँ कोशिश भी करे ज्यादा दूध पिलाने की, तो इन्कार करता है। उसे पक्का भरोसा है, जब रोयेगा, तब प्रेम मैजूद है। वह उसके लिए भोजन बन जायेगा। लेकिन अनाथ बच्चे का मन ऐसा नहीं रह जाता। जब भोजन मिलता है, तब जितना ले सकते हो, ले लो इकट्ठा कर लो, क्योंकि प्रेम का कोई भरोसा नहीं है। भूख लगे, और प्रेम न हो तो कठिनाई हो जायेगी।

जिन बच्चों को जीवन में प्रेम नहीं मिल पाया है, वे भोजन को इकट्ठा करने की प्रवृत्ति से भर जाते हैं ! धन तो बहुत बाद में आया, पहले तो भोजन था, लोग भोजन इकट्ठा कर रहे थे। फिर पीछे धन आया और धन ने और इकट्ठा करने के हजार रास्ते खोज लिये, क्योंकि गेहूँ कितना इकट्ठा करियेगा, दूध कितना इकट्ठा करियेगा, फल कितने इकट्ठे करियेगा ? वे सड़ जायेंगे, खराब हो जायेंगे। लेकिन रुपया न सड़ता है, न खराब होता है, रुपया इकट्ठा किया जा सकता है। रुपया बदली हुई शक्ल है भोजन की, और धन की आकांक्षा बदला हुआ प्रेम है, जो तृप्त नहीं हो पाया है।

इसीलिए जहाँ धन इकट्ठा करने का पागलपन होगा, उस आदमी में कभी प्रेम के दर्शन नहीं होंगे। और जिस आदमी की जिन्दगी में प्रेम का जन्म होगा, धीरे-धीरे आप पायेंगे कि धन संग्रह करने की दौड़ वहाँ से विदा हो गयी है। प्रेम और धन को इकट्ठा करने की दौड़ एक साथ अस्तित्व में नहीं होती, उनका कोई कोएक्जिस्टेंस, कोई सह-अस्तित्व नहीं है। धन इकट्ठा हुआ है, यह हमें दिखायी पड़ता है। लोग धन इकट्ठा कर रहे हैं, यह हमें दिखायी पड़ता है। कुछ लोग हैं, जो इस धन को बाँटने के लिए आतुर हैं कि यह धन बाँट दिया जाय, वह भी हमें दिखायी पड़ता है। लेकिन शायद हमें यह ख्याल नहीं है कि हम कितना धन बाँटें, वह जो प्रेम की धारा टूट गयी है, अगर फिर से अखण्ड और जुड़ नहीं जाती तो हम धन की जगह फिर दूसरी चीज कोई इकट्ठा करनी शुरू कर देंगे। लेकिन इकट्ठा करना जारी रहेगा। असल में जो प्रेम में जीता है, उसे इकट्ठा करने की फिक्र ही छूट जाती है। वह इकट्ठा नहीं करता है। मोहम्मद ने जिन्दगी भर कुछ इकट्ठा नहीं किया। कोई दिन में भेंट कर जाता था, साँझ वे बाँट देते थे। साँझ वे बिल्कुल ही नंगे फकीर होकर सो जाते थे। एक पैसा उनके पास नहीं होता था, एक दाना चावल का उनके पास नहीं होता था। उनकी पत्नी ने बहुत बार उन्हें कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं ? कल फिर जरूरत पड़ सकती है। तो मुहम्मद कहते हैं कि मुझे प्रेम का इतना भरोसा है कि जिसने आज पहुँचाया है, वह कल भी पहुँचा दे सकता है। कल के लिए वे इकट्ठा करते हैं, जिन्हें प्रेम का भरोसा नहीं है। कल पता नहीं, आये न आये तो कल के लिए इकट्ठा करते हैं। कल की असुरक्षा उन्हें मालूम पड़ती है।

फिर मुहम्मद बीमार पड़े, और आखिरी रात, जिस दिन उनकी मृत्यु हुई, उनकी पत्नी ने सोचा कि आधी रात है, हो सकता है, दवा की जरूरत पड़ जाय, चिकित्सक बुलाने पड़े—तो उसने सोचा कि आज तो पाँच रुपये बचा लो। तो उसने पाँच रुपये बिस्तर के नीचे छिपा कर रख दिये हैं। मुहम्मद कोई बारह बजे रात बड़ा तड़फ रहे हैं और उन्होंने कहा, मुझे ऐसा लगता है, अपनी पत्नी को, आज तेरी आँखों में मुझे प्रेम का

भरोसा नहीं दिखायी पड़ता है। मुझे ऐसा लगता है कि जरूर तूने कुछ पैसे रोक लिये हैं। उसने कहा, आपको कैसे पता चला? मुहम्मद ने कहा, जितनी स्वतन्त्र तू रोज मालूम पड़ती थी, आज उतनी स्वतन्त्र नहीं मालूम पड़ती है। आज कहीं कुछ है, जहाँ से बँध गयी है। तूने कुछ रोका तो नहीं है? वह पत्नी घबड़ा गयी। उसने कहा, मैंने पाँच रुपये रोके हैं इस डर से कि हो सकता है रात बीमारी बढ़ जाय तो चिकित्सक बुलाने पड़ें। दवा लाने पड़े तो हम कहाँ से लायेंगे। मुहम्मद ने कहा, पागल, जिन्दगी भर जहाँ से आता था, फिर भी तुझे उस प्रेम का कोई पता नहीं चल सका। फिर भी तूने रुपये रोक लिये। वह निकाल, रुपये कहाँ हैं? क्योंकि अगर मैं मर गया और भगवान मुझसे पूछेगा तो वह कहेगा कि आखिरी वक्त तूने प्रेम खो दिया और रुपये पकड़ लिये। वह रुपये निकाल! उसने वह रुपये निकाल लिये, मुहम्मद ने कहा, यह बाँट दे। मैं प्रेम को लेकर जिया हूँ और प्रेम को लेकर ही जाना चाहता हूँ। वे रुपये बाँट दिये गये। उन्होंने चादर ओढ़ ली और, वह उनका आखिरी काम था। चादर ओढ़ी और वे समाप्त हो गये। बहुत सम्भावना इसी बात की है कि वे पाँच रुपयों के लिए वे बड़ी देर तक रुके रहे और तड़फते रहे। शायद वे खोजबीन करते रहे कि बात क्या है, अड़चन क्या है?

लेकिन पाँच रुपये इतना रोक लेते हों तो हमारी क्या हालत होगी? अगर पाँच रुपये घर में बचा लेने से मनुष्य ऐसा बँध जाता हो कि मुहम्मद ने कहा कि मैं परमात्मा के सामने प्रेम लेकर हाजिर होना चाहता हूँ, धन लेकर नहीं। तो हमारी क्या हालत होगी? और परमात्मा तो बहुत दूर है, जब हम आदमी को भी प्रेम करते हैं तो हम धन लेकर ही हाजिर होते हैं। प्रेम लेकर हम हाजिर नहीं होते। हम आदमी को भी धन से ही प्रेम करते हैं। हमने धन को ही प्रेम का सब्स्टीटयूट बनाया हुआ है। हम धन दे पाते हैं तो प्रेम है! हम धन नहीं दे पाते हैं तो मुश्किल हो जाता है। कहीं न कहीं धन प्रेम की जगह सब्स्टीटयूट, परिपूरक बन गया है। लेकिन प्रेम का परिपूरक धन कैसे बन सकता है? प्रेम तो एक आनन्द है

और धन तो सिर्फ एक बोझ है। और प्रेम तो एक मुक्ति है और धन तो सिर्फ एक भाव है। धन एक उपयोगिता हो सकती है, लेकिन प्रेम उपयोगिता नहीं, प्रेम तो एक खेल है। प्रेम की कोई युटिलिटी नहीं है। प्रेम का कोई उपयोग नहीं है, प्रेम तो एक निपट सहज आनन्द है। और धन? धन एक उपयोगिता है। चाहे कितना ही धन इकट्ठा करलें, वह जो प्रेम की कमी रह गया है भीतर, वह पूरी नहीं हो गयी है। एक बच्चा कितना ही पेट भर ले, उसका पेट फूल जाय, शरीर छोटा हो जाय, और पेट बड़ा हो जाय, तो भी जो प्रेम छूट गया, नहीं मिल पाया, वह इस बड़े पेट से नहीं मिल जाने वाला है। धनी आदमी लोहे के बड़े पेट बनाकर बड़ा हो गया है, क्योंकि चमड़े पेट में कितना भरा जा सकता है। इसलिए वे तिजोड़ियाँ बनाये हैं। वे लोहे के पेट हैं, जिनको मजबूती से भरा जा सकता है और जिनको तोड़ा भी नहीं जा सकता है। हमारी तिजोड़ियाँ हमारे पेट की शक्लों में ही बनी हैं। उनमें हम भोजन को इकट्ठा कर रहे हैं। इकट्ठा कर रहे हैं और रोज हम उसका हिसाब लगाये चले जा रहे हैं।

प्रेम का झरना था। टूट गयी धार तो धन संग्रह बन गया है। हजार-हजार तरकीब से हम आदमी को जहाँ-जहाँ सप्रेश किये हैं, जहाँ-जहाँ दमन किये हैं, वहाँ-वहाँ आदमी कुछ गलत रास्ते चला गया, कुछ और हो गया, जो होने की उसकी नियति, उसकी डेस्टिनि नहीं थी। लेकिन वह हमें ख्याल में नहीं है। हमने अब तक मनुष्य की पूरी जिन्दगी सप्रेशन और दमन के आधार पर ही खड़ी करने की कोशिश की है। हमने जो आदमी बनाया है, वह हमने आदमी बनाया है, दबा दबाके बनाया है। वह ऐसा ही है जैसे किसी बीज के चारों तरफ हमने लोहे की जाली बिठा दी हो, या किसी पौधे को सब तरफ से बाँध दिया हो। ऐसा हमने आदमी को खड़ा कर दिया है। तो आदमी जैसा हमें दिखायी पड़ता है, यह आदमी की नियति नहीं है, यह रुग्ण आदमी है, यह बीमार आदमी है। यह हजारों साल की संस्कृति का व्हिकटिम, शिकार, आदमी है। इस आदमी को

आदमी मत समझ लेना, सिर्फ आदमी की शक्ल है,। फैंटम है, प्रेत है आदमी का, यह आदमी नहीं है। आदमी कुछ और ही हो सकता था।

और इस पृथ्वी पर जहाँ साधारण सी झाड़ियों में फूल खिलते हैं, और जहाँ साधारण से पक्षी गीत गाते हैं आनन्द के, और जहाँ साधारण से पशु भी एक सहज जीवन जीते हैं, वहाँ आदमी कितने आनन्द के फूलों को और कितनी आनन्द की सुगन्धों को जन्म दे सकता था और कितना संगीत पैदा हो सकता था, उसकी तो कल्पना करनी कठिन है। लेकिन आदमी कुछ भी नहीं कर पाया, आदमी खो गया है। और रोग ही पैदा कर रहा है। सिर्फ रुग्णता ही हमने पैदा की है। और उस रोग का नाम हमने रखा है सभ्यता, और उस रोग का नाम हमने रखा है संस्कृति ! तब फिर रोग से मुक्त होना भी मुश्किल हो जाता है।

मैं कुछ और दो चार बातें करना चाहूँगा, ताकि दिखायी पड़ सके कि चट्टान ने हमारे झरने को कहाँ कैसा रूप दे दिया है। जब तक हम चट्टान नहीं हटा देते, तब तक किसी भी आदमी की जिन्दगी में क्रांति नहीं हो सकती। ऐसा मालूम पड़ता है कि कोई भी आदमी अपने सुख में उतना उत्सुक नहीं है, जितना दूसरे को सुखी न होने देने में उत्सुक है। अगर हम आदमी के भीतर झांक कर देखें तो आदमी के भीतर ऐसा नहीं मिलेगा कि वह अपने सुख की तलाश में है। वह इस तलाश में है कि कोई और सुखी न हो जाय।

मैं एक मकान में ठहरा था। उस मकान के मालिक बड़ी तारीफ करते थे उस मकान की। उन्होंने बनाया था, तबसे उसके ही गीत गाते रहते थे, सुबह से शाम तक उसकी ही बातें करते थे। जब मैं वहाँ गया तो कभी वह स्वीमिंग पूल दिखाते थे; कभी यह दिखाते थे, कभी वह दिखाते थे। दो साल बाद जब मैं वहाँ गया तो उन्होंने मकान को कोई भी बात न की, मकान वही था। मैंने पूछा कि क्या हो गया ? आप मकान की बात नहीं करते हैं ? उन्होंने कहा, आपने देखा नहीं ? रात में आये इसलिए देखा नहीं, सुबह देखिएगा। बड़ी गड़बड़ हो गयी। मैंने कहा, फिर भी क्या हो गया ? मकान को नुकसान पहुँचा है ? मकान वैसा ही

दिखता है, बल्कि पौधे अब बड़े हो गये हैं, जो आपने लगाये थे। और पौधों में फूल आने लगे हैं, बगीचा हरा हो गया है, घास हरी हो गयी है, लान तैयार हो गया है। तो उन्होंने कहा, वह सब ठीक है, उससे कोई ज्यादा मतलब नहीं। सुबह आप देखना। सुबह मैंने देखा तो पता चला, बगल में एक बड़ा मकान खड़ा हो गया है। उन्होंने कहा, यह मकान जब से बना है, मेरे मकान की सारी खुशी खो गयी है। मैंने उनसे पूछा, तब फिर आपको अपने मकान की खुशी न थी। बगल में जो छोटे-छोटे झोपड़े थे, उनको देखकर खुशी आती रही होगी। क्योंकि बगल में बड़े मकान को देखकर दुःख आ गया।

ध्यान रहे, धनी आदमी अपने धन में उतना खुश नहीं है, जितना पड़ोसी की गरीबी में खुश है। और ध्यान रहे, आदमी अपने बड़े मकान में प्रसन्न नहीं है, पड़ोस की झोपड़ियों के कारण प्रसन्न है। और बड़े मकान खड़े हो जायँ, तो उसका मकान वही कर रहा है, लेकिन एकदम छोटा हो गया है, एकदम कहीं कोई बात खो गयी है, वह कहीं कुछ नष्ट हो गया है। हम सारे के सारे लोग अपने सुख में उतने उत्सुक नहीं हैं, जितने दूसरा सुखी न हो जाय इसमें हैं ! यहाँ तक भी कि चाहे हमें दुःखी होना पड़े, लेकिन हम दूसरे को सुखी न होने देंगे। जरूर कहीं कोई भूल हो गयी है। यह बड़ी रुग्ण चित दशा है, यह तो बहुत डिसीज्ड माइंड है। जो दूसरे को सुखी न देख ले, इसमें उत्सुक है ! सहज आदमी अगर होगा तो अपने सुख में उत्सुक होगा।

और ध्यान रहे, जो आदमी अपने सुख में उत्सुक होगा, वह कभी भी दूसरे के दुख की चेष्टा नहीं कर सकता। जो आदमी अपने सुख में सुखी होगा, वह सबके सुख में सुखी होगा, क्योंकि सुख के बीच ही मेरे सुख का फूल खिल सकता है। अगर सभी सुखी हों तो मेरे सुख के फूल खिलने की कोई संभावना नहीं है। जो आदमी अपना सुख चाहेगा, वह सबका सुख चाहेगा। और जो आदमी दूसरे को दुःखी देखना चाहता है, किसी न किसी अर्थों में वह अपने को भी दुःखी देखना चाहता है, अन्यथा वह दूसरे को दुःखी न देखना चाहेगा। यह असंभव है कि पूरा गाँव बीमार हो जाय और

मैं स्वस्थ रह सकूँ। यह कि पूरे गाँव में रोग के कीटाणु फैल जायं और मैं अकेला स्वस्थ रह सकूँ—यह कैसे संभव है ? हवाएँ वे कीटाणु मुझ तक भी ले आयेगी और मैं भी दुःखी हो सकूँगा। चाहे मैं कितना ही बड़ा परकोटा उठाऊँ और लोहे की दीवालें बनाऊँ, या तो मैं कब्र में बन्द हो जाऊँगा, जिन्दा ही मर जाऊँगा, बाहर न निकल सकूँगा। तब स्वस्थ रह सकता हूँ, मर जाऊँ तो, और या अगर मैं जिन्दा रहा और बाहर निकला और दरवाजे खोले तो उन दरवाजों से रोग के कीटाणु भीतर आ जायेंगे, क्योंकि पूरा गाँव बीमार है। अगर मुझे स्वस्थ रहना है और मैं अपने स्वास्थ्य में उत्सुक हूँ, तो जाने अनजाने मुझे सबके स्वास्थ्य में उत्सुकता दिखानी चाहिए।

यह जितना शरीर के तल पर सही है, मन के तल पर और भी ज्यादा सही है। अगर पूरा गाँव उदास है तो आप मुस्कुरा नहीं सकते, और अगर मुस्कुरायेंगे तो आपकी मुस्कुराहट व्यंग मालूम होगी, मजाक मालूम होगी, कठोरता मालूम होगी, क्रूरता मालूम होगी। अगर पूरा गाँव उदास है तो आप कैसे मुस्कुरा सकते हैं ? उदासी के भी कीटाणु हैं, जो और गहरे भीतर प्रवेश कर जाते हैं। और अगर पूरा गाँव दुःखी है तो आप कैसे सुखी रह सकते हैं। लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं। हम दूसरे को सुखी नहीं देखना चाहते हैं। इसका अन्तिम मतलब यही हो सकता है कि हम स्वीसाइडल हैं। हम अपने को ही सुखी देखने को तैयार नहीं हैं। और हमने यह तरकीब खोजी है कि सारे लोग दुःखी हो जायँ, तभी हम सुखी हो सकेंगे ! सारे लोगों के दुःखी होने पर मैं कैसे सुखी हो सकता हूँ ? सारे लोग के दुःखी होने पर मैं सिर्फ और गहरे दुःख में गिर जाऊँगा। लेकिन, तब एक सांत्वना रहेगी कि मैं अकेला ही दुःखी नहीं हूँ, सारे लोग दुःखी हैं। मैं कोई अकेला ही परेशान नहीं हूँ, सारे लोग भी परेशान हैं। बस इतना एक कन्शोलेशन हो सकता है, इतनी सांत्वना हो सकती है।

स्वस्थ मनुष्य अपने सुख की आकांक्षा करेगा। मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि स्वस्थ मनुष्य बड़ा स्वार्थी होगा। लेकिन स्वार्थ ही परार्थ की बुनियाद है। और यह ध्यान में रखना कि स्वार्थ और परार्थ विरोधी

चीजें नहीं हैं, जैसा कि धर्म गुरु समझाते हैं। असल में जो अभी स्वार्थी भी नहीं हो पाया है, उसके परार्थी होने का तो कोई सवाल ही नहीं है। और जिस आदमी ने अभी स्वयं का हित भी समझा नहीं है, वह दूसरे के हित की तरफ तो एक कदम भी नहीं उठा सकता है। लेकिन यहाँ दो तरह के बीमार लोग हैं जमीन पर—एक वे हैं, जो दूसरे को हानि पहुँचाने में अपना स्वार्थ समझ रहे हैं। और एक वे हैं, जो दूसरे को लाभ पहुँचाने की चेष्टा में लगे हैं और उन्होंने अभी अपने को भी लाभ पहुँचाया नहीं है। जिसने अभी अपने को भी लाभ नहीं पहुँचाया है, वह किसी को लाभ नहीं पहुँचा सकता है। अगर दूसरे का दुःख दूर करना हो तो पहली शर्त है कि अपने दुःख से मुक्त हो जाना। क्योंकि जिसके पास आनन्द है, वह आनन्द बांट सकता है, जिसके पास दुःख है, वह दुःख ही बाँटता है। वह चाहे बातें कुछ भी करे, वह चाहे अपने दुःख के पैकेट के ऊपर सुख के नाम लिखें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है, लेकिन वह दुःख ही बाँटता है। हो सकता है, वह आपके पास सुख देने ही आये, लेकिन घड़ी भर बाद आप पायेंगे कि अब यह जाय तो बहुत अच्छा है। उसने दुःख देना शुरू कर दिया है। वह चाहे जाने भी न, लेकिन वह दुःख ही पहुँचायेगा।

स्वस्थ व्यक्ति स्वार्थी होगा, यह बात बड़ी अजीब सी लगेगी, क्योंकि हमें तो निरन्तर सिखाया गया है स्वार्थी कभी मत होना। स्वार्थ बड़ी बुरी चीज है। और मैं आपसे कहना चाहता हूँ, कि स्वस्थ आदमी स्वार्थी होगा ही, यह बिल्कुल सहज बात है।

लेकिन स्वार्थ का अर्थ समझा है कभी ?

उसमें दो शब्द हैं, स्व और अर्थ—स्वयं के लिए जो अर्थपूर्ण है। और जो व्यक्ति अभी स्वयं के लिए भी अर्थपूर्ण जीवन नहीं बना सका है, वह किसी के लिए अर्थपूर्ण हो सकता है, यह असंभव है। यह दिया यहाँ जल जाय मेरे भीतर प्रकाश का, तो मेरे मकान की खिड़कियों से रोशनी दूसरे के घरों तक भी जा सकती है। लेकिन मेरे घर का ही दिया बुझा हो तो यह रोशनी किसी के घर तक नहीं जा सकती है। और जिनके अपने

घर का दिया बुझा है, वे दूसरों के घरों में दिया जलाने पहुँच गये हैं। बहुत संभावना यह है कि उनके शोरगुल में, उपद्रव में दूसरों के घर के थोड़े बहुत जले हुए दिये भी बुझ जायँ। जिनके अभी अपने घर अन्धेरे हैं, वे किसके घर के दिये जला सकते हैं ?।

लेकिन यह आदमी को कौन सी बीमारी पकड़ गयी है कि वह दूसरे को दुःखी देखने में बड़ा उत्सुक है ? इसको उसने बड़े अच्छे-अच्छे नाम दिये हैं और उन नामों में बात को छिपा दिया है। अगर एक आदमी अपने कपड़े छोड़कर सड़क पर नंगा खड़ा हो जाय तो कई लोग उसके पैर पकड़ने पहुँच जायेंगे। यह दुःख की पूजा हो रही है। इसको हम कहेंगे, त्याग, तपश्चर्या, यह आदमी बड़ा तपस्वी है, इसलिए हम इसकी पूजा कर रहे हैं। एक आदमी अगर अपने को अपने हाथ से दुःख में डाले तो उसकी इज्जत बढ़ती चली जायेगी। अगर एक आदमी अपने हाथ से अपने को परेशानी में डाल ले—अभी मैं एक गाँव से गुजरता था तो एक आदमी काशी की तरफ जा रहा है, वह जमीन पर लेटकर यात्रा कर रहा है। वह जमीन पर सरक-सरक कर काशी जा रहा है। उसके सब घुटने छिल गये हैं, उसके हाथ छिल गये हैं, लहू बह रहा है और सैकड़ों लोग उसकी पूजा करते हुए उसके साथ जा रहे हैं। मैंने उनसे कहा कि तुम सब अपराधी हो, इस आदमी को तुम्हीं इस जमीन में घसिटवा रहे हो। क्योंकि तुम जो आदर दे रहे हो, उस आदर से उसको खून अब बेमानी मालूम पड़ रहा है, बल्कि खून बड़ा सार्थक मालूम पड़ रहा है। उसके हाथ पैर छिल गये हैं, कट गये हैं, लेकिन वह सरकता जा रहा है। यह तुम आदर दे रहे हो। तुम जो आदर दे रहे हो, इसमें बड़ी हिंसा है। तुम इस आदमी को दुःखी देखकर इतने प्रसन्न क्यों हो गये हो ? नहीं उन्होंने कहा, यह आदमी दुःखी नहीं है। यह आदमी तपश्चर्या कर रहा है। तप का मतलब है, स्वयं वरण किया हुआ दुःख।

ऐसे ही दुःख काफी है। बिना वरण किये दुनिया में दुःख काफी है। अब और किसी को वरण करने की जरूरत नहीं है। दुनिया वैसे ही तप में जी रही है। एक आदमी तपश्चर्या में पड़ा हुआ है। वह जो दूकान पर

बैठता है, वह भी तपश्चर्या में है। वह जो दफ्तर में बैठा है, वह भी तपश्चर्या में है। और वे जो लोग दिल्ली में इकट्ठे हो गये हैं, उनकी तपश्चर्या का कोई अन्त है ? उनके दुःख की कोई सीमा है ? अब अलग से किसी को तपश्चर्या करने की जरूरत नहीं है। आदमी वैसे ही बहुत दुःखी है।

लेकिन हम कहते हैं, और स्वेच्छा से दुःख वरण करो ! अगर जमीन ठीक हो तो उस पर मत बैठो, दो चार कांटे और रखो, तब बैठो ! तब फिर दस पच्चीस लोग आदर करने आ जायेंगे। जब तक दुनिया में दुःख का आदर करनेवाले लोग हैं, तब तक आदमी सुखी नहीं हो सकता है। सुख का आदर सीखना पड़ेगा, लेकिन सुख का हमारे मन में कहीं कोई विरोध हो गया है ! कहीं धारा बदल गयी है। सारे जगत में सारा जीवन सुख की तलाश में है, सिर्फ आदमी दूसरे को दुःखी करने की तलाश में है। यह हमारे झरने की धारा कहाँ टूट गयी है, कहाँ क्या बात आ गयी है ?

बचपन से ही हम किसी को सुखी नहीं देखना चाहते हैं। एक छोटा बच्चा है, उसे भी हम सब तरह से दुःखी देखना चाहते हैं। अगर एक छोटा बच्चा चंचल है, तो दौड़ता है, भागता है, उछल-कूद करता है। तो घर भर परेशान हो जायेगा, माँ-बाप परेशान हो जायेंगे। असल में जिन्दगी तो सदा उछल-कूद करती है, चंचल होती है, भागती है, दौड़ती है। लेकिन माँ-बाप एक छोटे बच्चे के साथ यह अपेक्षा करते हैं कि वह बूढ़े की तरह शिथिल होकर एक कोने में बैठ जाय। और कभी गोबर-गणेश बच्चा घर में पैदा हो जाय तो माँ-बाप कहते हैं, बड़ा आज्ञाकारी है ! अगर बिल्कुल गोबर की मूर्ति पैदा हो जाय तो फिर कहना ही क्या है। वह परम आज्ञाकारी है, माँ-बाप उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। उनके चित्त को बड़ी राहत मिलती है—अगर मुर्दा बच्चा पैदा हो जाय, मरा हुआ बच्चा पैदा हो जाय। अगर जिन्दा बच्चा पैदा हो तो माँ-बाप उसके हाथ पैर काटने में लग जाते हैं, समाज उसके हाथ-पैर काटने में लग जाता है। असहाय बच्चे को सब तरफ से काट दिया जाता है ! उसकी जिन्दगी में जो प्रफुल्लता है, वह सब तरफ से छीन ली जाती है।

हमने तरकीबें बहुत अच्छी निकाली हैं। हमारी तरकीबें ऐसी हैं कि बच्चे उनके खिलाफ बात भी नहीं कर सकते। हम कहते हैं, हम पच्चीस साल शिक्षा देंगे। पच्चीस साल तक बच्चा शिक्षित हो रहा है। पच्चीस साल की शिक्षा में उसे कुछ भी मूल्यवान सिखाया नहीं जा रहा है—कुछ भी मूल्यवान, जिससे जीवन की दिशा में गति हो। पच्चीस साल की शिक्षा में उसे ज्यादा से ज्यादा रोटी पैदा करना सिखाया जा रहा है। और रोटी? रोटी अशिक्षित भी सदा पैदा करते रहे हैं। और रोटी पशु भी अपनी खोज लेते हैं और पक्षी भी अपनी खोज लेते हैं। अगर शिक्षा सिर्फ रोटी पैदा करना सिखा पाती है तो वैसी शिक्षा का बड़ा अर्थ नहीं मालूम होता है। लेकिन पच्चीस साल के कारागृह बनाये हुए हैं हमने। उनका नाम विश्वविद्यालय और विद्यालय और सब नाम हमने रखे हैं! बड़े अच्छे नाम रखे हैं, और उन कारागृहों में हम बच्चों को भर देते हैं।

कभी आपने किसी प्राइमरी स्कूल के पास जाकर खड़े होकर देखा है, जहाँ आपका बच्चा बन्द है? लेकिन आप कभी नहीं गये होंगे, क्योंकि आप बड़े प्रसन्न हैं कि उपद्रव स्कूल में चला गया। स्कूल जो है वह माँ-बाप के लिए छुटकारा है। रविवार का दिन उनके लिए परेशानी है, क्योंकि जिन्दगी घर में आ जाती है। स्कूल में जिन्दगी को उन्होंने भेज दिया है। घर उन्होंने सुविधापूर्ण कर लिया है। न कोई सोफे को बिगाड़ता है, न कोई फोटों को तोड़ता है, न कोई काँच फोड़ता है, न कोई आइना गिराता है। आइना बच जाय, चाहे बच्चे की आत्मा टूट जाय। आइना बहुत कीमती है। अच्छा हो घर में ऐसी चीजें मत रखें, जिनके टूटने का डर है। लेकिन बच्चों को चीजें पटकने दें उन्हें, खेलने दें उन्हें, तोड़ने दें। उनकी खुशी मत छीन लें। नहीं तो जिन्दगी भर वे दूसरों की खुशियाँ छीनते रहेंगे, फिर पता नहीं चलेगा कि ये दूसरों की खुशी छीनने में इतने उत्सुक क्यों हैं? जिनकी खुशी छीनी गयी है, वे सबकी खुशी छीनने में उत्सुक हो जाते हैं! कभी स्कूल के पास खड़े होकर जाकर देखें। बच्चे स्कूल से निकलते हैं तो ऐसा कूदते हुए निकलते हैं, जैसे कारागृह के बाहर निकल गये हैं। बस्ते उछाल रहे हैं, चिल्ला रहे हैं। छुट्टी हो गयी है तो

ऐसा मालूम पड़ता है कि जिन्दगी आ गयी है। पाँच-छः घण्टे छोटे-छोटे निरीह बच्चों को जेल की दीवालों में बन्द किये हुए हैं।

कुछ दिन पहले तो ... अब तो जरा कुछ फर्क पड़ा है। जेल की दीवालों में, रंग बदल गया है। पहले बिल्कुल एक ही रंग था—लाल दीवाल जेल की भी थी और लाल दीवाल स्कूल की भी थी। अभी थोड़ा फर्क पड़ा है। लेकिन कोई दीवाल का रंग बदल देने से दीवाल नहीं बदल जाती है और दीवाल लाल हो कि पीली हो कि सफेद हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दीवाल दीवाल है। और वहाँ हम जिन्दगी की सारी खुशी उससे छीन रहे हैं, उसको दबाकर ढाल रहे हैं एक ढाँचे में। उसके भीतर जो झरना है, उसे तोड़ रहे हैं और जगह-जगह पत्थर रख रहे हैं। छोटी छोटी बातों में हम उसकी खुशी छीन रहे हैं। अगर यह खुशी सारे बच्चों से छीन ली जाय—सबसे छीन ली गयी है, कल हमसे छीनी गयी थी, आज किसी और से छीन लें; और जिनसे हम छीन रहे हैं, कल वे अपने बच्चों से छीनेंगे। सैकड़ों वर्षों से यह हो रहा कि बचपन में हम खुशी छीन लेते हैं और फिर जिन्दगी भर वह आदमी दूसरों से खुशी छीनने में समय व्यय कर देता है। एक बड़ा भयंकर संक्रामक रोग है।

क्या सिखा रहे हैं हम? स्कूल में, विद्यालय में खुशी सिखा रहे हैं? वहाँ हम उदास चेहरे पैदा कर रहे हैं। गम्भीर चेहरे पैदा कर रहे हैं। वहाँ से हम आदमी निकाल रहे हैं, जो गंभीर हैं, उदास हैं, सीरियस हैं, जिनको जिन्दगी एक खेल नहीं है, जिन्दगी जिनके लिए एक बोझ हो गयी है। तो देखें, युनिवर्सिटी का कन्वोकेशन होता हो, दीक्षांता समारोह होता हो, तो वहाँ देखें, काले चोगे पहने हुए वाइसचांसलर और रेक्टर और डीन भूत-प्रेत बने हुए खड़े हैं। ये मरघट पर पहनने के कपड़े वहाँ किसलिए पहने हुए हैं? वहाँ बड़ी गम्भीरता का वातावरण पैदा किया जा रहा है। बहुत सीरियस, बहुत गम्भीर काम हो रहा है। वहाँ देखें, उप-कुलपतियों, वाइस-चांसलर, अध्यापकों के चेहरे देखें, वे पत्थर की मूर्तियाँ बने हुए हैं। वे कोई बहुत भारी काम कर रहे हैं। और वह काम कुल इतना कर रहे हैं कि वह जो जिन्दगी की चंचलता है, वह जो प्रफुल्लता है, वह

जिन्दगी का जो प्रवाह है, उसको सब तरफ से रोक रहे हैं। हाँ, उसको वे दिशाएँ दे रहे हैं। वे नदी को नहर बनाने की कोशिश में लगे हुए हैं। नहर में भी पानी तो बहता है, लेकिन, कभी नहर देखी, और नदी देखी? नदी और नहर में एक बुनियादी फर्क पड़ जाता है। नदी में तो एक जिन्दगी होती है अपनी, और नहर में अपनी कोई जिन्दगी नहीं होती है। एक बहाव होता है और इंजीनियर उसे जहाँ चाहता है, ले जाता है।

हम सब आदमियों को नदी नहीं बनने देना चाहते हैं, नहर बनाते हैं। हमारी सारी शिक्षा आदमी की नदी को नहर बनाने का उपाय है। नहर में वह खुशी नहीं हो सकती। हम सारी खुशी छीन लेते हैं। बचपन से सारी व्यवस्था ऐसी है कि बच्चा किसी चीज में आनंदित न हो पाये। और आप कहेंगे, बड़ी अजीब बात है, आप कहते हैं, क्योंकि माँ-बाप तो यही चाहते हैं कि बच्चा आनंदित हो। लेकिन माँ-बाप चाहते हैं कि बच्चा हमारे ढंग से आनंदित हो। माँ-बाप के ढंग से बच्चा कैसे आनंदित हो सकता है? यह दुःख थोपने की तरकीब है। यह बड़ी डिसेप्टिव बात है। माँ-बाप भी कहते हैं, हम चाहते हैं कि बच्चा आनंदित हो। हमारा बच्चा आनंदित हो, यह हम न चाहेंगे? लेकिन हमारे ढंग से आनंदिन हो। एक बूढ़े आदमी के ढंग से एक बच्चा आनंदित हो।

थोड़ा उल्टा करके देखें कि सारे बच्चों के हाथ में ताकत चली जाय और बूढ़े से कहे कि हमारे ढंग से आननंदित हों। तब आपको पता चलेगा कि बच्चों के ढंग से बूढ़ों को आनंदित होने में कितनी तकलीफ पड़ जाती है। तब बच्चे कहेंगे कूदो, छलांग लगाओ, उचको, चीजें फोड़ो, दौड़ो, झाड़ों पर चढ़ जाओ। तब बूढ़ों को पता चलेगा कि यह आनंदित होना हमें पसन्द नहीं है। यह कोई आनन्द हुआ, यह तो पागलपन है।

लेकिन अब तक बच्चों और बूढ़ों के बीच संवाद नहीं हो सका। अब तक बूढ़े और बच्चे एक दूसरे को समझ नहीं पाये। लेकिन इससे बूढ़ों को कोई खास नुकसान ऊपर से नहीं दिखायी पड़ता, भीतर से तो हो ही जाता है। क्योंकि जो आदमी आज बूढ़ा है, कल वह बच्चा था और अगर बचपन में ही वह रुग्ण हो गया है, तो बुढ़ापा उसका कभी भी सुन्दर और स्वस्थ

नहीं हो सकता है। वह रोग ले जायेगा बुढ़ापे तक। इसलिए कोई बूढ़ा आदमी भी शांत और आनंदित नहीं दिखायी पड़ता। बचपन में ही जड़ काट दी गयी है, आनंदित होने की जड़ तोड़ दी गयी है।

इसलिए हमारे साधु-सन्त हैं, उनके पास जायें, वहाँ बड़ी गंभीरता है, वहाँ जाने से ही आपको भी गंभीर हो जाना पड़ेगा। साधु-संतों के पास हँस नहीं सकते हैं। वहाँ हँसेंगे तो एक तरह की प्रोफेनिटी मालूम होगी, एक तरह की अपवित्रता मालूम होगी। वहाँ गंभीर होकर बैठ जाना पड़ता है। वहाँ भी हमने मरघट की हवा बना रखी है, वहाँ भी जिन्दगी की खबरें नहीं हैं।

तीन फकीर हुए हैं चीन में—उनका कोई नाम पता नहीं है। क्योंकि कभी उन्होंने अपना नाम नहीं बताया। बल्कि जब लोगों ने पूछा, तुम्हारा नाम क्या है? तो वे तीनों इतने जोर से हँसने लगते थे कि धीरे-धीरे लोग उनको थ्री लाफिंग सेन्ट कहने लगे, तीन हँसते हुए फकीर कहने लगे। यही उनका नाम हो गया। और जब भी कोई उनसे पूछता कि तुम्हारा नाम क्या है? तो वे कहते हैं, हमें खुद ही पता नहीं है।

और हमें बड़ी हँसी आती है कि तुम्हारा नाम है। इस पर हमें बड़ी हँसी आती है। क्योंकि नाम तो किसी का नहीं है। नाम तो दिया हुआ है, बचपन में हम सब बिना नाम के आते हैं और बिना नाम के विदा हो जाते हैं।

तो तीनों हँसते कि हम बड़े हैरान हैं, हमारा तो कोई नाम नहीं है, लेकिन सारी दुनिया में सबका नाम है, हम इससे हैरान हैं। वे तीनों हँसते, वे गाँवों में जाते, लोग उनसे कहते कि कुछ उपदेश दो तो वे कहते कि उपदेश में कहीं न कहीं कुछ मरा हुआ पन है। उपदेश कहीं न कहीं डैडनेस लिये हुए है। उपदेश में कहीं न कहीं भारी बोझिलता है। तो वे कहते, हम तो हँसना जानते हैं और कुछ भी नहीं जानते। वे गाँव के चौरस्ते पर खड़े हो जाते और हँसना शुरू कर देते। फिर हँसना संक्रामक होता, फिर गाँव के और लोग आ जाते, और वे भी उन तीन को हँसते देखकर, कोई उनमें से भी हँसने लगता, फिर हँसी फैलने लगती। फिर ऐसा होता, दो

चार दिन वे उस गाँव में रह जाते, तो सारे गाँव में हँसी के फूल ही फूल खिल जाते।

फिर एक गाँव में उनमें से एक मर गया। तो गाँव के लोगों ने कहा, अब तो दो जरूर उदास हो गये होंगे। वे गये वहाँ, लेकिन वे दोनों उस मरे हुए के हाथ और पैर पकड़कर उसे झुला रहे थे और हँस रहे थे। उन्होंने कहा, पागलों, यह क्या कर रहे हो? तुम यह क्या कर रहे हो? वह मर गया है और हमने सुना है, तुम हँस रहे हो? तो उन दोनों ने कहा, जो जिन्दगी भर हँसा हो, उसकी मृत्यु भी एक हँसी हो जाती है।

असल में जो जिन्दगी भर रोया हो, उसकी मृत्यु भी रुदन हो जाती है। मृत्यु तो अंतिम परिपूर्णता है। हम जो जिन्दगी भर रहे हैं, वही हो जाता है। अगर मृत्यु बहुत बुरी मालूम पड़ रही है, अन्धेरी, तो उसका कारण यह नहीं है कि मृत्यु अन्धेरी है। उसका कारण है कि हम बचपन से ही अन्धेरे में जी रहे हैं। हमारी सारी जिन्दगी अन्धेरी है। इसलिए अंतिम फल भी अन्धेरा मालूम पड़ रहा है।

उन दोनों ने कहा, हम बड़े खुश हैं और हम इसको हिला रहे हैं इसलिए, कि हम यह कह रहे हैं कि तू हमें धोखा दे गया है। और हमने यह तय किया था कि पहले हम जायेंगे और यह आदमी पहले चला गया। अगर यह रात हमको बता देता तो हम पहले चले गये होते। लेकिन इसने बताया नहीं, यह चुपचाप चला गया। लोगों ने कहा, फिर भी यह आदमी मर गया है, इतनी हँसी-खुशी मत मनाओ। यह बड़ी बुरी बात मालूम पड़ती है। चुप रहो, अगर रोओ मत तो कम से कम चुप तो रहो। तो उन दोनों ने कहा, ध्यान रहे, चुप होने जैसी कोई चीज नहीं है। या तो आदमी रोता है या हँसता है। दोनों के बीच कोई जगह ही नहीं है।

और सच में ही दोनों के बीच में कोई जगह नहीं है। या तो आप हँसते हैं या रोते हैं। बीच में कोई जगह रहती नहीं है। या तो आप आनंदित होते हैं या दुःखी होते हैं। दोनों के बीच में कोई जगह नहीं होती। और अगर आप आनंदित नहीं हैं तो जानना कि दुःखी हैं और अगर आप

नहीं हँस पाते हैं तो जानना कि भीतर आँसू बोझिल हो गये हैं, भारी हो गये हैं।

फिर उसकी लाश लेकर वे चले। सारा गाँव तो उदास है, लेकिन वे दोनों हँस रहे हैं। फिर वे मरघट पर पहुँचे। फिर उन्होंने चिता जलायी। तो जब गाँव के लोगों ने कहा कि कपड़े बदलने हैं तुम्हारे साथी के, क्योंकि हमारे गाँव का रिवाज है। उन्होंने कहा कि नहीं, वह हमसे कह गया है कि कपड़े मत बदलना। कपड़े बदलना ही मत, क्योंकि मैं ही कपड़े बदले ले रहा हूँ, तब और कपड़े क्या बदलना है। तो ऐसे ही मुझे चढ़ा देना। तो उसकी शर्त तो माननी पड़ेगी। तो उसे ऐसे ही चढ़ा दिया मरघट पर, आग लगा दी है। और फिर धीरे-धीरे हँसी फैलनी शुरू हुई, क्योंकि वह आदमी अपने कपड़ों के भीतर फुलझड़ी पटाके रखकर मर गया था। अब वे फुलझड़ियाँ छूटने लगी हैं और फटाके फूटने लगे हैं और धीरे-धीरे सारा गाँव हँसने लगा है। सारा गाँव कहता है कि अजीब आदमी है। मर गया, फिर भी हमें हँसा गया है, हालाँकि भीतर से रोने का मन होता है, लेकिन उसकी चिता से छूटती हुई फुलझड़ियाँ। कैसा आदमी था, मौत पर भी हँस गया है और मौत पर भी व्यंग कर गया है।

जो आदमी जिन्दगी भर हँसता है, उसके लिए मौत भी एक हँसी हो जाती है। क्योंकि हम तो जिन्दगी भर रोते हैं। हमारी तो रोने में दीक्षा है। हमारा तो इनीसिएशन किया जाता है रोने में, और बचपन से हम एक-एक बच्चे को रोने के लिए तैयार करते हैं, हँसने के लिए तैयार नहीं करते हैं। हम सब तरफ से उसकी हँसी के झरने को रोक देते हैं। हम सब तरफ से उसकी खुशी को रोक देते हैं। तब फिर अगर वह दूसरों को भी दुःखी करने में लग जाता हो तो आश्चर्य नहीं है। हमारा यह जो पूरी मनुष्यता सूली पर लटक गयी है, उसमें एक कारण यह भी है। लेकिन हमें ख्याल नहीं है कि हम क्या-क्या करते हैं। और कौन सी छोटी सी चीज आगे जाकर क्या परिणाम ले आयेगी।

अब एक माँ है, उसका बच्चा दूध पी रहा है, वह उसको जल्दी दूध से छुड़ा देती है, जल्दी चाहती है कि वह उसका दूध पीना बन्द कर दे।

वह बन्द करवा दे सकती है, क्योंकि माँ के हाथ में है। और पश्चिम की माताओं ने तो करीब-करीब बन्द कर दिया है। और शायद आने वाले सौ-पचास वर्षों में दुनिया की कोई माँ अपने बच्चे को दूध पिलाने को राजी नहीं होगी। लेकिन क्या आपको पता है, यह जो बच्चे को दूध पीने से राहत, जो शांति उसके होठों को, जो आनन्द, जो स्पर्श का सुख मिलता था, अगर यह छिन गया, अगर यह धारा रुक गयी तो यह नयी धाराएँ पकड़ेंगी। सारी दुनिया सिगरेट पी रही है। और मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि वह जो ओठों को सुख नहीं मिल पाया है, उसका सब्स्टीट्यूट खोजा जा रहा है। और जिस समाज में माँ बच्चों को दूध पिलाना बन्द कर देंगी, उस समाज में सिगरेट का पीना बढ़ता चला जायेगा। अगर सारी माताएँ बन्द कर देंगी तो हम ओंठ से कुछ और उपाय करेंगे। लेकिन सिगरेट वह सुख कभी भी नहीं दे सकती है, जो माँ के स्तन से बच्चे को मिल सकता था। इसलिए कितनी ही सिगरेट पियो, दिन में साठ पियो कि सौ पियो, कुछ फल नहीं होता है, सिर्फ ओंठ जलकर रह जाते हैं। जल जाते हैं, और कुछ भी नहीं होता है। कोई सब्स्टीट्यूट वह नहीं दे सकता जो मिल सकता था मूल से। अगर मूल की जगह कुछ और रख लिया जाय तो वह नहीं मिलने वाला है, जो मिल सकता था।

लेकिन, हम माता और पिता बच्चों को समझायेंगे कि सिगरेट मत पियो, लेकिन यह न देखेंगे कि सिगरेट पीने की धारा कहाँ से पैदा की जा रही है। बच्चे को ओंठों से कुछ मिल रहा है। बच्चे की जिन्दगी में ओंठ उसका पहला जीवन्त हिस्सा है। बच्चे को जिन्दगी पहली दफा ओंठ की तरफ से शुरू हुई है और बच्चे को प्रेम की धारा पहली दफा ओंठ की तरफ से आयी है। अगर बच्चे के ओंठ अतृप्त रह गये हैं तो वे अपनी तृप्ति की माँग करते रहेंगे। वे जिन्दगी भर माँग करते रहेंगे कि ओंठ कहीं कुछ खाली रह गये, उसे भरो। फिर क्या करे? तो जला डालेगा ओंठों को सिगरेट से। लेकिन उससे कोई माँ का स्तन, माँ का प्रेम मिल जाने वाला नहीं है। और वह कभी समझ भी नहीं पायेगा कि उसके चित्त में यह क्या हो गया है, यह क्या पागलपन हो गया है।

अब छोटे बच्चे हैं, अपने पूरे शरीर से खेलने में आनंदित होते हैं। सच तो यह है कि अगर हम भी पूरी तरह स्वस्थ होंगे, तो अपने पूरे शरीर से खेलने में आनंदित होंगे। लेकिन हम तो स्वस्थ नहीं हैं। हम कभी जाकर नदी की रेत पर न लेटेंगे, और कभी नदी की रेत पर न नाचेंगे, न कभी पानी में छलांग लगायेंगे, न कभी पानी के फव्वारे उछालेंगे। हम कभी अपने पूरे शरीर के साथ आनंदित न होंगे। हमने अपने पूरे शरीर को इन्कार कर दिया है! और शरीर में हमने कुछ हिस्से चुन लिए हैं, जिनसे हम सिर्फ आनंदित होंगे! लेकिन कभी आपने सोचा कि कोई हिस्से हमने कैसे चुन लिए हैं? क्योंकि शरीर तो इकट्ठा है। उसमें हमने कोई हिस्से कैसे चुन लिये हैं? वह हमें चुनवाये गये हैं। सप्रेशन में, रेप्रेशन में वह चट्टान जो हम पर गिर गयी है, उसने हमें चुनवा दिया है।

छोटा बच्चा अपने पूरे शरीर से खेलता है। वह अपनी जननेंद्रिय से भी खेलेगा। लेकिन माँ-बाप उसको रोकेंगे कि बन्द करो, यह क्या कर रहा है? पहली दफा उसे पता चलेगा कि जननेंद्रिय को छूना कुछ पाप है। बस, उसके शरीर में और जननेंद्रिय में एक फासला हो गया। अब जिन्दगी भर यह हिस्सा उसके शरीर का हिस्सा होने वाला नहीं है। और पहली दफा वह कान्शस हो गया है कि शरीर में कोई एक ऐसा हिस्सा भी है, जिसको छूना पाप है, देखना पाप है—जिसको छिपाना है, जिसको छूना नहीं है। और वह जिन्दगी भर इसी इन्द्रिय के आसपास भटकता रहेगा। वह जो छूने की तृप्ति अधूरी रह गयी है, और वह जो उसका चित्त चेतन हो गया है, तो सारी दुनिया कामुक हो गयी है।

सारी दुनिया सेक्स सेन्टर के पास भटक रही है। और भटकाने का कारण गन्दी फिल्में नहीं हैं, भटकाने का कारण गन्दे उपन्यास नहीं हैं, और भटकाने का कारण गन्दे गीत नहीं हैं, और भटकाने का कारण गन्दे पोस्टर नहीं हैं। भटकाने का कारण बच्चे के शरीर में दमन की शुरूआत है। बच्चे को हमने सिखा दिया है कि यह हिस्सा मत छूना। बच्चे को कुछ पता नहीं है, उसका पूरा शरीर उसका शरीर है। उसे पता ही नहीं है और पता होने का कोई कारण भी नहीं है।

दुनिया अगर स्वस्थ होती तो हमारा भी पूरा शरीर, हमारा पूरा शरीर होगा। उसका यह हिस्सा अलग और वह हिस्सा अलग नहीं हो जायेगा। लेकिन बच्चे को हम कान्शस किये दे रहें हैं, उसको बार-बार झिड़कें दे रहे हैं। उसके शरीर के एक हिस्से के प्रति कंडेम्नेशन और निन्दा भरे दे रहे हैं। उसका एक हिस्सा शरीर से अलग हो जायेगा। वह अलग हो गया। जब वह अलग हो जायेगा तो वह जीवन भर उस हिस्से से वापस जुड़ने को तलाश करता रहेगा। वह जिन्दगी भर उसी परेशानी में जियेगा! उसके सपने सब कामोत्तेजना से भर जायेंगे। उसकी कहानियाँ, उसके उपन्यास, उसके गीत, उसकी फिल्में सब उसको सब्स्टीटचूट देने की कोशिश करेंगी कि यह सब्स्टीटचूट है। इससे तुम अपने मन को तृप्त कर लो, लेकिन वह तृप्त न हो पायेगी। वह शिव-लिंग भी बनायेगा। और शिवलिंगों की कहानी तो पुरानी पड़ गयी, और नये-नये प्रतीक खोजेगा, जिनसे कि वह तृप्ति पाना चाह रहा है, जो उससे छीन ली गयी है। यह छीनी गयी तृप्ति, यह छीना गया भाव, यह दमन, यह निन्दा उसके झरने को तोड़ देगी और गलत रास्तों पर ले जायेगी।

यह बड़े आश्चर्य की बात है, यह बहुत हैरानी की बात है कि हम शरीर के कुछ हिस्सों के प्रति इतने पागल क्यों हो गये हैं? अगर एक मूर्ति बनायी जाती है स्त्री की तो उस मूर्ति में ऐसा नहीं लगता कि स्तन जा बनाये गये हैं, वे कोई मूर्ति के हिस्से हों। ऐसा लगता है कि स्तन बनाने के लिए मूर्ति बनायी गयी है। एक चित्र बनाया जाता है स्त्री का तो ऐसा नहीं लगता है कि पूरी स्त्री महत्वपूर्ण है, स्तन ही महत्वपूर्ण है! सारी मनुष्यता स्तन के प्रति इतनी आतुर क्यों है?

दो कारण हैं, एक तो बच्चे से स्तन बहुत जल्दी छीन लिया गया है। वह उसका पहला परिचय था, वह उससे जल्दी छीन लिया गया है। उसके मन में उसकी आकांक्षा रह गयी है, इसलिए पुरुष जीवन भर स्तन के प्रति आतुर है, उत्सुक है, परेशान है।

स्त्री क्यों उत्सुक है इतनी? अगर पुरुष से छीन लिया गया है तो स्त्री क्यों उत्सुक है? वह भी उत्सुक है। उससे भी जल्दी छीना गया है,

एक। और बहुत जल्दी उसे सचेत कर दिया गया है कि शरीर का यह हिस्सा शरीर का हिस्सा नहीं है, इसे छिपाना है, या दिखाना है! लेकिन इसे स्वीकार नहीं कर लेना है सहज कि यह शरीर का हिस्सा है। शरीर में उसने भी हिस्से काट दिये हैं। और तब उसके परिणाम होंगे, दुष्परिणाम होंगे और आदमी रुग्ण होता चला जायेगा, बीमार होता चला जायेगा। और नयी-नयी मुसीबतें, उनको हल करने के लिए लायी गयीं, बीमारी पैदा करती रहेंगी। लेकिन कभी हम बुनियाद में जाकर यह न देखेंगे कि आदमी के झरने पर गिराये गये पत्थर को हटायें, आदमी को स्वस्थ करें, उसे सरल करें, उसे सहज करें। वह जैसा पैदा हुआ है, उसको हम वैसा बढ़ाने की कोशिश करें और उसकी जिन्दगी में उसकी धारा खण्ड-खण्ड न हो जाय, अखण्ड रह सके, इसकी दिशा में कुछ काम करें। अब तक यह नहीं हो सका है, इसलिए आदमी सूली पर लटक गया है, और आगे भी यह नहीं हो सकेगा, अगर हमारी समझ में न आये तो हम पत्थर हटायेंगे नहीं। हम सब पत्थर रखने वाले लोग हैं। हम सब अच्छे लोग, भले लोग पत्थर रखे चले जा रहे हैं। एक-एक आदमी पर पत्थर रखे चले जा रहे हैं।

हमारी पूरी सामाजिक व्यवस्था, शिक्षा की व्यवस्था, माँ, बाप, मित्र, प्रियजन सब एक नये आये बच्चा पर पत्थर रखने की कोशिश में लगे हैं। सब तरफ से उसे दबा देंगे। कल वह कुरूप, अपंग होकर खड़ा हो जायेगा। फिर उसकी हम निन्दा भी करेंगे। फिर हम उसे अपराधी भी ठहरायेंगे। फिर कल हम उसे जेलखाने भी भेजेंगे, पागलखाने भी भेजेंगे। कल वह मरीज होकर अस्पताल में भर्ती भी होगा। यह सब चलेगा, यह सब उपाय चलता रहेगा, लेकिन पत्थर को हम न हटायेंगे। पत्थर अपनी जगह है।

बल्कि कुछ लोग हैं जो कहते हैं कि शायद पत्थर ठीक से नहीं रखा जा सका, इसलिए यह सारी गड़बड़ हो गयी है। कुछ लोग हैं, जो कहते हैं, और जोर से दमन करो। कुछ लोग हैं, जो कहते हैं, और जोर से पत्थर रख दो, झरनों को प्रगट ही मत होने दो। फिर वहाँ गन्दे डबरे बनेंगे, झरना प्रगट ही नहीं होगा। कुछ लोग तो हैं, जो यह कहते हैं कि अगर

आदमी किसी तरह मार डाला जा सके, उसका सब काट दिया जाय—वह बिल्कुल भूत-प्रेत की तरह रह जाय, छाया की तरह, जिसमें जिन्दगी बिल्कुल न हो—ऐसे लोग हमारे चारों तरफ खड़े हैं। उनमें महात्मा हैं, धर्मगुरु हैं। उनमें वे सारे लोग हैं, जिनके चरणों में हम सिर झुकाते हैं। वे सारे लोग हमारी गर्दन को कसने में लगे हुए हैं। वे हमें जिन्दा रहने में सहयोगी बनने को नहीं हैं। वे हमें रास्ता बता रहे हैं मोक्ष जाने का। वे हमें जिन्दा रहने का रास्ता नहीं बता रहे हैं। वे कह रहे हैं कि तुम कैसे जल्दी मरो—और तुम मरकर कैसे वापस जिन्दगी में न आ सको, इसका रास्ता हमें बता देते हैं। पहली तो गलती यह की कि जिन्दगी में आये, अब दुबारा यह गलती मत कर लेना जिन्दगी में लौटने की। जिन्दगी बड़ा पाप है। यह शरीर बड़ा पाप है, इस सबको हटाओ, इस सबको मिटाओ और मोक्ष की यात्रा करो। आवागमन से मुक्त हो जाओ।

यह जो प्रवृत्ति शेष रह गयी—आज तक रही है, आज तक की पूरी मनुष्यता को हमने यही जहर, यही विष उसके खून में डाला है, तो हम जिन्दगी को प्रफुल्लता से नहीं भर पायेंगे। नीत्शे कहता था और नीत्शे ठीक कहता था—नीत्शे कहा था, धर्मगुरुओं ने मनुष्य का दमन किया, कि वह उसको धार्मिक बना सकेंगे। धार्मिक वे नहीं बना पाये। धर्मगुरुओं ने मनुष्य को जहर पिलाया, ताकि मनुष्य के स्वभाव को नष्ट कर दें और उसको वह बना लें, जो बनाना चाहते हैं। जो मूर्ति ढालना चाहते हैं, ढाल लें। वह मूर्ति नहीं ढल पायी, लेकिन एक बड़ा दुष्परिणाम जरूर हुआ। आदमी को जहर दे दिया था बदलने के लिए, वह बदला तो नहीं, लेकिन जहरीला हो गया, पायजनस हो गया। उसका सब विकृत हो गया, कुरूप हो गया, सब तरफ खराब हो गया।

मैंने कल एक प्रतीक कथा कही थी कि जीसस को सूली लगायी गयी तो उनके दोनों तरफ दो चोर भी लटकाये गये थे। मुझे यह ख्याल में बहुत अर्थपूर्ण मालूम पड़ता है। जिसे हम बुराई कहते हैं और जिसे हम भलाई कहते हैं, वह जिन्दगी को दो हिस्सों में तोड़कर देखी गयी तरकीब है। जब तक हम बुराई और भलाई दोनों को एक साथ खड़ा करके,

दोनों को स्वीकार करके जिन्दगी का भवन न बनायेंगे, तब तक एक तरफ बुरा आदमी सूली पर लटक जायेगा, एक तरफ अच्छा आदमी भी सूली पर लटक जायेगा, क्योंकि बुरा आदमी भी आधा है और अच्छा आदमी भी आधा है। पूरा आदमी कोई भी नहीं है। और जब तक पूरा आदमी न हो, तब तक सूली पर लटकना ही पड़ेगा दुःख और पीड़ा और चिन्ता को सूली पर लटकने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है।

लेकिन कुछ चीजों को हमने बुरा करार दे दिया है। अब हम दुबारा सोचने को भी राजी नहीं हैं कि क्या बुरा है उनमें! क्या बुरा है उनमें, इसे सोचने को हम राजी भी नहीं हैं। हमने शरीर को बुरा करार दे दिया है और हमने मान लिया है हजारों साल में कि शरीर बुरा है। आज हम फिर दुबारा सोचने को तैयार नहीं हैं कि शरीर में क्या बुराई है।

सच तो यह है कि जीवन के सारे आनन्द शरीर के द्वारा ही हम तक आते हैं। सूरज की किरण भी शरीर से हम तक आती है। फूल की सुगन्ध भी शरीर से हम तक आती है। पक्षियों के गीत भी शरीर से हम तक आते हैं। इस सारे जगत का जो कुछ भी हम तक आता है, वह शरीर से आता है। और ध्यान रहे, हम भी इस जगत तक शरीर से ही जाते हैं। अगर एक फूल तक मैं पहुँचता हूँ तो मेरे हाथ के द्वारा, और अगर सूरज तक मैं पहुँचता हूँ तो मेरी आँख के द्वारा।

लेकिन शरीर की निन्दा करके हमने शरीर के सब द्वारों पर खीले ठोंक दिये हैं, ताले ठोक दिये हैं, चाभियाँ बन्द कर दी हैं, क्योंकि शरीर बुरा है। इसलिए शरीर के कुछ हिस्से हमने बिल्कुल बन्द कर दिये हैं। शरीर की सबसे बड़े आनन्द की जो क्षमता है, वह है स्पर्श, लेकिन हम कभी शरीर के स्पर्श आनन्द को स्वीकार करने की तैयारी में नहीं हैं। न तो हम नग्न होकर हवाओं में नाचते हैं कि हवायें हमारे पूरे शरीर को छू लें, न कभी हम नग्न होकर सूरज की रोशनी में बैठते हैं कि सूरज की पूरी किरणें हमारे रन्ध्र-रन्ध्र को स्पर्श कर जायँ। न कभी हम रेत में लेटते हैं, न कभी हम पानी में लोटते हैं। न कभी हम किसी व्यक्ति को पूरे प्राणों से प्रेम करते हैं और पूरे शरीर से स्पर्श कर लते हैं। सब तरफ

भय हो गया है ! सब हमने कुण्ठित कर दिया है। शरीर का स्पर्श सबसे बड़ा संवेदन है। स्पर्श का हमने विरोध कर दिया है ! और सब अपने-अपने हृदय पर तख्ती लगाये हुए हैं, टच मी नाट। मुझे छुएँ मत। वह दिखायी नहीं पड़ती, लेकिन हर आदमी लगाये हुए है कि मुझे छुएँ मत, जरा फासले पर रहें ? हम बात भी करते हैं तो एक जेंटलमेनली डिसटेंस, एक सभ्य आदमी का फासला है, उससे हम बात करते हैं !

मैं एक जंगली काबीले में कुछ दिन था, तो मैं बड़ा हैरान हुआ। उस जंगली कबीले के लोग अगर घण्टे भर बात करेंगे तो कम से कम सौ बार आपको छूयेंगे। बात-चीत करेंगे तो कितनी बार आपके शरीर को पकड़ लेंगे, इसका हिसाब मैंने लगाया तो पाया है कि घन्टे भर अगर बात-चीत चलती हो तो कम से कम सौ बार। हमारी घण्टे भर की बात-चीत में अगर तीन बार भी शरीर का स्पर्श हो जाय तो बहुत है, और अगर स्पर्श हो तो बहुत ही निकट जो हैं उनके ही. शरीर को हो सकता है। अगर अपरिचित, अनजान आदमी के शरीर को आप निकट मान लें तो झगड़ा और झंझट हो सकती है। हमने शरीर के स्पर्श के बिल्कुल दरवाजे बन्द कर दिये हैं और शरीर के स्पर्श से हमारे पास जीवन के बड़े सुख आते हैं, लेकिन हमने सब बन्द कर दिया है।

हमने कुछ द्वार थोड़े से खुले रखे हैं—आँख को हमने खुला हुआ द्वार रखा है, इसलिए आँख बड़ी रुग्ण हो गयी है। उससे हम बहुत से काम ले रहे हैं। अगर हम किसी आदमी को प्रेम में छूना हो तो छू तो नहीं सकते, तो फिर आँख से ही उसको छूना पड़ता है, तो आँख बीमार हो जाती है, क्योंकि आँख छूने का काम नहीं कर सकती है। इसलिए लुच्चे पैदा हो गये हैं। लुच्चे का मतलब आप समझते हैं ? लुच्चे का मतलब घूर कर देखने वाला, और कुछ मतलब नहीं है। वह आँख से हाथ का काम ले रहा है, यह लुच्चे का मतलब है। लोचन संस्कृति में आँख को कहते हैं। लुच्चा वह जो आँख ही आँख हो गया है, और कोई मतलब नहीं है। आलोचक कहते हैं न हम। आलोचक उसको कहते हैं, जो बहुत गौर से किसी चीज को देखे। लुच्चा उसको कहते हैं, जो देखता ही चला जाय। जिसका देखना

जिसका स्टे बिल्कुल ही घूरना बन जाय। वह आँख का काम हाथ से ले रहा है बेचारा, व्यर्थ लुच्चा हो गया है। सच बात यह है कि अगर हम अपने भीतर खोज करें तो सौ में से सौ के भीतर लुच्चा मिल जायेगा। इससे कम में नहीं मिलेगा। मिल ही जायेगा, क्योंकि वह जो काम शरीर से लेना था, वह हमें आँख से लेना पड़ रहा है। हमने एक आँख, केन्द्रित एक द्वार खोल दिया है, उससे हमें बहुत काम लेना पड़ रहा है। और आँख बिल्कुल रुग्ण और बीमार हो गई है। न वह ठीक से देख पाती है, न वह ठीक से पहचान पाती है. क्योंकि जो उसका काम नहीं है, वह उससे हम ले रहे हैं।

यह जो पत्थर है हमारे ऊपर, उसके कारण हमारी कोई इंद्रिय मुक्त होकर पूरा काम नहीं कर पा रही है। न हम ठीक से सुनते हैं, न ठीक से स्पर्श करते हैं, न ठीक से देखते हैं, क्योंकि शरीर की निन्दा है, तो इन सबके प्रति भी निन्दा हो गयी। धर्मगुरु समझाते हैं कि भोजन में स्वाद भी मत लेना, अस्वाद से भोजन करना। गाँधी जी के ग्यारह नियमों में एक नियम यह भी है—अस्वाद से भोजन करना, स्वाद मत लेना ! हद्द पागलपन की बात है। हद्द पागलपन की बात है। यह तो समझ में आता है कि इतना स्वाद लेना कि भोजन भी ब्रह्म मालूम पड़ने लगे। यह समझ में आ सकता है। इतना स्वाद लेना कि भोजन से भी उसके दर्शन हो जायँ, जो परम है। लेकिन स्वाद ही मत लेना, तो उसका अंतिम परिणाम क्या होगा ? अंतिम परिणाम होगा कि सप्रेश करना पड़ेगा। स्वाद तो आयेगा, और आपको लेना नहीं है तो आपको जीभ को मारना पड़ेगा, धीरे-धीरे जीभ का द्वार बन्द हो जायेगा। इसी तरह हम सब द्वार बन्द कर देगें, तो व्यक्ति बन्द हो जायेगा।

कभी आपने सोचा, अगर आपके पास आँखें न हों, तो यह जिन्दगी, यह दुनिया इतनी ही होगी, जितनी है ? इसमें से एक बहुत बड़ा हिस्सा कट जायेगा। वही कभी नहीं होगी। अगर आपके पास कान भी न हों, तो आपको पता है कि जिन्दगी यही होगी, जो है ? एक बड़ा हिस्सा कट जायेगा। अगर आँखें नहीं हैं तो रंग और रूप और किरण से संबंधित सब दुनिया विदा हो जायेगी। अगर कान नहीं हैं तो ध्वनि से संबंधित

सारा जगत विलीन हो जायेगा। अगर स्वाद नहीं है तो स्वाद से संबन्धित जगत विदा हो जायेगा। अगर गंध नहीं है तो गंध विदा हो जायेगी। अगर स्पर्श नहीं है तो स्पर्श विदा हो जायेगा। अगर पाँचों इन्द्रियों को बन्द किया जा सके, तो, तो आप अपनी कैपसूल में बन्द हो जायेंगे, कब्र में। आप इस जगत और परमात्मा से संबन्धित नहीं हो जायेंगे, आप सिर्फ अपने अहंकार में बन्द हो जायेंगे। दमन करने वाले लोगों ने इन्द्रियों का द्वार बन्द करना सिखाया है—जीवन की राह नहीं, जीवन का मार्ग नहीं!

तो मैं आपसे कल तीसरे सूत्र में यह कहना चाहूँगा कि इंद्रियों से इतने बाहर जायें—इसने बाहर जायें और इन्द्रियों से इतना भीतर आने दें कि बाहर और भीतर का फासला ही अन्त में गिर जाय। जब तक बाहर भीतर का फासला बना रहेगा, तब तक जीवन की परिपूर्णता का आनन्द उपलब्ध नहीं हो सकता। तब तक पत्थर हमारी छाती पर रखा है। यह मैंने दूसरे सूत्र की बात कही।

कुछ मित्रों के प्रश्न आये हैं, वह धीरे-धीरे मैं बात कर लूँगा। जो मित्र कल सुबह ध्यान के लिए आना चाहें, वह स्नान करके आयें, ताजे कपड़े पहनकर आयें और घर से आते वक्त चुप और मौन आयें, और वहाँ स्थान पर आकर कोई बात न करें, कोई शब्द का उपयोग न करें, चुपचाप आकर बैठ जायँ। ठीक आठ बजे के पहले आ जायँ। आज कुछ लोग थोड़ी बाद में पहुँचे। फिर बात पूरी हो जाती है, फिर उन्हें कठिनाई होगी समझने से। ठीक आठ के पाँच दस मिनट पहले पहुँच जायें। आठ के बाद नहीं। आठ के पहले आ जायें—आठ से नौ तक वहाँ ध्यान का प्रयोग होगा। यहाँ ध्यान के संबंध में कुछ प्रश्न पूछे हैं, वह मैं वहीं बात करूँगा। यहाँ साँझ की जो चर्चाएँ हैं, उसके संबंध में बात होगी।

मेरी बातों को इतनी शान्ति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुग्रहित हूँ। और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

———

ग्वालिया टैंक, बम्बई, २५ नवम्बर १९६९

३ : प्रेम के प्रतिबिम्ब

मेरे प्रिय आत्मन,

एक अजायब घर को देखने गया था। वहाँ बहुत से पशुओं को बन्द देखा। जंगल में उन्हीं पशुओं को मुक्त भी देखा है। पशु वही थे, लेकिन जंगल में मालूम होता है, उनके पास एक आत्मा थी। अजायब घर में उनके पास वह आत्मा नहीं है। जंगल में उन्हें प्रफुल्ल देखा था। उनकी जिन्दगी एक मुक्त गीत थी। अजायब घर में भी वे थे, लेकिन ऐसा लगा कि जिन्दगी तो खो गयी है और वे मर भी नहीं गये हैं। दोनों के बीच में अटक गये हैं। जिन्दगी खो गयी है और मौत नहीं आयी है। उन पशुओं की आँखों में बड़ी उदासी, बेचैनी और चिन्ता भी दिखाई पड़ी। एक शेर को देखा अपने कठघरे में सींखचे से दूसरे सींखचे तक चक्कर लगाते हुए। सैकड़ों मीलों के विस्तार में दौड़ता रहा होगा। वृक्षों में, पहाड़ों में, नदियों में छलांग लगाता रहा होगा। दूर-दूर तक कोई सीमा न रही होगी उसके चरण चिह्नों की। वह एक छोटे से कठघरे में एक कोने से दूसरे कोने तक! सींकचों की एक कतार से दूसरी कतार तक दिन भर घूमता रहेगा। अगर वह शेर विक्षिप्त हो गया हो, तो आश्चर्य न होगा।

उस अजायब घर से लौटते वक्त मुझे ऐसा लगने लगा कि कुछ और खोजबीन करूँ। कहीं ऐसा तो नहीं है कि आदमी समाज बनाने की जगह अजायबघर बना लिया है? और जिसे हम समाज कहते हैं, वह समाज न हो, एक अजायबघर हो। और फिर जितनी इस संबंध में खोजबीन की, उतनी यह धारणा मेरी मजबूत और पक्की होती चली गयी। जंगल में जानवर शायद ही बीमार पड़ते हों। चोट खा जायँ, बात अलग है।

चोट का मतलब बीमारी बाहर से आ जाय, बात अलग है, लेकिन भीतर से शायद ही बीमारी आती हो। लेकिन अजायबघर में जानवरों को वे ही बीमारियाँ पकड़ जाती हैं, जो उस घर को बनाने वाले मालिकों की बीमारियाँ हैं! जंगलों में बन्दरों की हजारों पीढ़ियों में शायद ही किसी बन्दर को अल्सर हुआ हो, लेकिन अजायबघर में बन्दरों को अलसर हो जाता है! अजायबघर के जानवर को वे ही बीमारियाँ पकड़ जाती हैं, जो आदमी को पकड़ती हैं! फिर तो मैं और पता लगाया तो बहुत हैरानी में पड़ गया कि जंगल के जानवर को, जिसको हम मानसिक विकृतियाँ कहें, वे शायद ही कभी दिखायी पड़ती हैं। लेकिन अजायब घर में आने पर वे ही मानसिक विकृतियाँ उसे पकड़ लेती हैं, जो आदमी को पकड़ लेती हैं! जंगल में जानवर को पागल होते शायद ही कभी देखा गया है, लेकिन अजायब घर में जानवर पागल हो जाते हैं!

और पागलपन जो है, बुनियादी रूप से आदमी की ईजाद है। वह आदमी के विशेष लक्षणों में से एक है। यह आपने कभी न सुना होगा कि जंगल में किसी पशु ने कभी आत्महत्या कर ली हो, स्वीसाइड कर ली हो। लेकिन अजायबघर में जानवरों ने स्वीसाइड करने की, आत्महत्या करने की भी कोशिश की है! जंगल का जानवर मस्टरबेशन करते हुए नहीं पकड़ा जायेगा, लेकिन अजायबघर का जानवर हस्त-मैथुन करने लगता है! जंगली जानवर में हमने सेक्सुअलिटी एक ही लिंग के साथ कोई योनि संबंध खोजे से नहीं मिलते, लेकिन अजायबघर के जानवरों में होमो सेक्सुअलिटी पैदा हो जाती है। तब तो थोड़ा विचारणीय है कि आदमी ने जो समाज बनाया है, वह समाज है या एक अजायबघर है? क्योंकि अजायबघर में जानवर में जो-जो चीजें पैदा हो जाती हैं, वह आदमी के समाज में सब पैदा हो गयी हैं।

मेरी प्रतीति ऐसी है कि समाज बनाने की जगह हम अजायबघर बना लिये हैं। और मनुष्य की गहराइयों में एक गहराई का दुःख यह भी है कि इसकी सारी सहजता खो गयी है और वह कटघरों में बन्द हो गया है। आज तीसरे सूत्र पर ये थोड़ी मैं बात करना चाहूँगा। लेकिन

हम कहेंगे, हम कहाँ बन्द हैं? हम तो मुक्त हैं? अजायबघर में पक्षी-पशु तो बन्द है, हम कहाँ बन्द हैं? लेकिन क्या कभी आपने अनुभव किया है कि आप मुक्त हैं और बन्द नहीं हैं? निश्चित ही लोहे के सींखचे नहीं हैं, लेकिन लोहे के सींखचे तोड़े जा सकते हैं। ऐसे सींखचे हैं, जो दिखायी नहीं पड़ते, तोड़े भी नहीं जा सकते, और हैं, लोहे की सीखचों से ज्यादा मजबूत हैं!

एक जेलखाना हम बनाते हैं। चारों तरफ बड़ी दीवाल लगा देते हैं और बाहर संतरी बिठा देते हैं, पहरेदार बिठा देते हैं, बन्द ही करवा देते हैं। क्या कभी आपने ख्याल किया है कि नेशन एक बड़ा जेलखाना है, जिसके चारों तरफ संतरियों की कतार लगी हुई है और आप अगर राज्य की आज्ञा के बिना देश की सीमा पार करना चाहें तो पार नहीं कर सकते हैं, और अपराधी हो जायेंगे। लेकिन राष्ट्र बड़ी चीज है और सीमाएँ बड़ी दूर हैं, इसलिए दिखाई नहीं पड़ रही हैं। जेलखाना बहुत बड़ा है और हमारी आँखों की पहुँच बड़ी छोटी है। लेकिन जेलखाना वहाँ है, वहाँ संतरी खड़े हुए हैं।

जब तक दुनिया में राष्ट्र हैं, तब तक आदमी का समाज नहीं बन सकता है, अजायबघर ही बनेगा। लेकिन राष्ट्र तो बड़ी है बात, बड़ा जेलखाना है, इसलिये बड़े जेलखाने के भीतर हमने और छोटे जेलखाने बनाये हैं! राष्ट्रों के भीतर छोटे-छोटे और राष्ट्र हैं। अभी हिन्दुस्तान एक—एक जेलखाना है, और चीन एक और पाकिस्तान एक। इस हिन्दुस्तान के बड़े जेलखाने के भीतर से छोटे जेलखाने हैं—मुसलमान का एक जेलखाना है, हिन्दू का दूसरा है, जैन का तीसरा है, पारसी का चौथा है, सिख का पाँचवा है! फिर उन्होंने अपनी सीमाएँ बाँध रखी हैं, और उनके भी सींखचे हैं, उनको भी पार मत करना, अन्यथा मुसीबत में पड़ जायेंगे! वे दिखायी नहीं पड़ते हैं सींखचे। एक हिन्दू और मुसलमान जब मिलते हैं तो दोनों के बीच में सींखचे होते हैं या नहीं होते हैं? दिखायी तो नहीं पड़ते हैं, लेकिन होते हैं! सख्त दीवाल होती है, जिसको पार करना

मुश्किल है। वह हमें घेरे हुए है। और ऐसा नहीं है कि मुसलमान और हिन्दू के बीच फिर कोई और सींखचे नहीं हैं।

मैं अभी एक गाँव में था, काश्मीर के, और उस गाँव में तो कोई हिन्दू नहीं था, मुसलमान ही मुसलमान थे। तो मेरी सेवा-टहल के लिए जो आदमी था, उससे मैंने पूछा, तुम मुसलमान हो? उसने कहा, मैं मुसलमान नहीं हूँ। मैं बहुत हैरान हुआ। मैंने कहा, तुम कौन हो? उसने कहा मैं सुन्नी हूँ, मैं मुसलमान नहीं हूँ। मुसलमान शिया हैं! उस गाँव में शिया और सुन्नियों में झगड़ा चला, तो सुन्नी कहता है, मैं शिया नहीं, मुसलमान तो वे शिया हैं। उस गाँव में उतना ही तनाव है—जितना हिन्दू मुसलमान में होता है, उतना ही शिया-सुन्नी में हैं। उनके बीच भी एक दीवाल खड़ी है! हिन्दू के बीच ब्राह्मण हैं और शूद्र हैं, उनके बीच बड़ी दीवाल खड़ी है। और ऐसा नहीं है कि शूद्र के बीच आपस में दीवालें नहीं हैं—चमार और भंगी के बीच उतनी ही बड़ी दीवाल है, जितनी किसी के बीच हो सकती है! ऐसे कठघरे के भीतर कठघरा, कठघरे के भीतर कठघरा है।

वे जादू के डिब्बे देखे हैं न, डिब्बे के भीतर डिब्बा, डिब्बे के भीतर डिब्बा, डिब्बे के भीतर डिब्बा है! वे जो अजायबघर में जानवर बन्द हैं, उनका तो एक ही कठघरा है। आदमी जिस अजायबघर में बन्द है, उनमें कठघरों के भीतर कठघरे हैं, और कठघरे बढ़ते ही चले जाते हैं। अगर हम अपने सारे कठघरों की कतार देखें तो पागल हो जायेंगे। और हमें ख्याल भी आ जाय कि इतने कठघरों में बन्द हूँ, तो सिर फूट जायेगा। और यह जो आज आदमी इतना विक्षिप्त हुआ जा रहा है, उसका कारण यही है कि उसे सब कठघरे साफ-साफ दिखायी पड़ने लग गये हैं। एक-एक कठघरा साफ-साफ दिखायी पड़ने लग गये हैं।

इन सारे कठघरों का आधार क्या है? इस गुलामी का आधार क्या है? यह परतन्त्रता जो हमें सीखचों में बन्द किये हुए है, इसका आधार क्या है? कौन सी मजबूरी है, जो आदमी को सीखचों के भीतर खुद ही

बन्द होने को कहती है कि बन्द हो जाओ। शायद ख्याल में भी नहीं आया होगा, लेकिन ख्याल में आना चाहिए।

हमारे सारे कठघरों के आधार में हमारा परिवार है, वह हमारा बुनियादी कठघरा है। लेकिन परिवार की बड़ी प्रशंसा की जाती है। कहा जाता है परिवार तो स्वर्ग है, परिवार तो बड़ा पवित्र है, परिवार तो हमारी संस्कृति का केन्द्र है, सारी मनुष्य की संस्कृति का! और मैं आपसे कहना चाहता हूँ, परिवार हमारी सारी विकृति का केन्द्र है, संस्कृति का नहीं। और परिवार जब तक है, तब तक संस्कृति पैदा ही नहीं हो सकती है। क्योंकि परिवार हमारा पहला कठघरा है, जो हमें दूसरों से तोड़ता है। आपका परिवार और मेरा परिवार एक दूसरे को तोड़ता है। जब तक परिवार है, तब तक मनुष्य जाति कठघरों से मुक्त नहीं हो सकती। वह जो फेमिली है, जब तक वह है।

परिवार हमारी गुलामी की आधार-शिला है!

लेकिन हम प्रत्येक बच्चे को परिवार का गौरव और अहंकार सिखाते हैं। हम उनसे कहते हैं कि तू खास परिवार का है। अपने परिवार की इज्जत रखना। अपने वंश की इज्जत रखना। अपने बाप दादों की इज्जत रखना। हम उसे सारी मनुष्य जाति से तोड़कर अलग कर रहे हैं। हम उससे यह नहीं कह रहे हैं कि यह सारी मनुष्य जाति, यह सब फैलाव तेरा परिवार है। हम उससे कह रहे हैं, ये इने-गिने दस-पाँच लोग ये तेरे परिवार हैं! ये तेरे पिता हैं, ये तेरी माँ हैं, ये तेरे भाई हैं, ये तेरी बहन है। यह तेरा परिवार है। इसके लिए तू जीना और मरना। इसकी इज्जत की फिक्र करना। इसके आदर्शों का ख्याल रखना! इसकी नीति, इसका इतिहास, इसकी परम्परा, इस सबके गौरव को तू बचाना! हम बचपन से उसमें यह जहर डाल रहे हैं। क्या हमें पता है कि हम उसे मनुष्य जाति के बड़े परिवार से तोड़ रहे हैं?

छोटे परिवारों की शिक्षा बड़े परिवारों से तोड़ने वाला परिणाम लायेगी ही। हम उसे बाँध रहे हैं, एक बहुत छोटी इकाई से, और उस इकाई से बँध जाने की वजह से वह कभी भी मुक्ति अनुभव नहीं करेगा।

फिर बड़ी इकाइयाँ भी आयेंगी—परिवार के साथ फिर उसकी जाति है, फिर परिवार और जाति के साथ उसका समाज है, और समाज और जाति के साथ राष्ट्र है। फिर इकाइयों पर इकाइयाँ बैठती चली जायेंगी, लेकिन पहली इकाई परिवार की है। परिवार के कारण संस्कृति निर्मित नहीं हो पायी है। हम समझते हैं कि वह हमारा यूनिट है, वह हमारी इकाई है—परिवार है तो सब है। और परिवार ने किस-किस तरह की बीमारियाँ पैदा की हैं, वह ख्याल में भी नहीं है। उन पर थोड़ी बात मैं करना चाहूँगा। क्योंकि वह कठघरा, वह इमप्रिजनमेंट पहला है। अगर वह टूट जाय तो बाकी सब कठघरे टूट सकते हैं, क्योंकि वे उसी से पैदा होते हैं।

परिवार सिखाता है धर्म, परिवार सिखाता है जाति, परिवार सिखाता है राष्ट्र! परिवार से एक दफा आदमी बँध गया तो उस परिवार की जाति से बँध जाता है। जाति से बंधता है तो धर्म से बँध जाता है। धर्म से बँधता है तो राष्ट्र से बंध जाता है। और सारी बीमारियाँ हजारों साल की परिवार हमें दे जाता है। हर परिवार अपने बेटे को हजारों-लाखों साल की सारी धूल, सारी बीमारी, सारे रोग वसीयत में दे जाता है। लेकिन उसे हम शिक्षा कहते हैं। हम कहते हैं कि माँ-बाप अपने बेटे को शिक्षित कर रहे हैं। माँ-बाप अपने बेटे पर अतीत का बोझ रख रहे हैं। शिक्षा अतीत का बोझ नहीं होगी, शिक्षा सदा भविष्य की मुक्ति होगी, शिक्षा सदा भविष्य की तरफ उन्मुख करेगी। लेकिन परिवार और उससे बँधी हुई शिक्षा अतीत की तरफ उन्मुख करती है, पीछे की तरफ। क्योंकि भविष्य तो परिवार का है नहीं।

भविष्य तो व्यक्ति का है, परिवार का तो अतीत है।

ध्यान रहे, परिवार का कोई फ्यूचर नहीं है, परिवार का कोई भविष्य नहीं है। परिवार की तो सब कुछ सम्पदा अतीत में है, मृत अतीत में। और व्यक्ति का सब कुछ भविष्य में है, अजन्मे भविष्य में। अजन्मे भविष्य में व्यक्ति को हम परिवार के नाम मर गयी सारी परम्परा और रूढ़ियों को थोप देते हैं। वह व्यक्ति वहीं जकड़ जाता है और बन्द हो जाता है। वह व्यक्ति अतीत उन्मुख हो जाता है। वह भी भविष्य उन्मुख नहीं रह जाता।

इसलिए मैं कहूँगा, वह माँ सच में अपने बेटे को प्यार करती है, जो उसे परिवार से नहीं बाँधती और अतीत से नहीं बाँधती और भविष्य के लिए एक मुक्त मनुष्य बनाती है। वह बाप अपने बेटे को प्यार करता है, जो प्यार तो करता है, लेकिन अपनी बीमारियाँ, अपने विचार, अपने सिद्धान्त, अपना धर्म, अपनी जाति बच्चे को दे नहीं जाता। और जो बाप अपने बेटे को अपना धर्म, अपनी जाति, अपने परिवार, ये सब परम्पराएँ दे जाता है, वह अपने बेटे का निश्चित दुश्मन है। उससे बड़ा कोई दुश्मन नहीं है। क्योंकि वह बेटे को पीछे से बाँध जाता है।

लेकिन मुसलमान बाप अपने बेटे को मुसलमान बना जाता है, हिन्दू बाप अपने बेटे को हिन्दू बना जाता है सख्ती से, मजबूती से। भूल-चूक न हो जाय, इसलिए बहुत जल्दी करते हैं माँ-बाप कि लड़के में बुद्धि न आ जाय, लड़की में बुद्धि न आ जाय। बुद्धि के आने के पहले उन्हें बाँध दो, क्योंकि बुद्धि आ जाने पर बगावत भी हो सकती है, विद्रोह भी हो सकता है। इसलिए माँ-बाप बड़े उत्सुक होते हैं कि बचपन से जल्दी बच्चों को सब सिखा दो। इसलिए हम सब बच्चों के नाम अलग रखते हैं ताकि उनकी आइडेंटिटी, उनका तादात्म्य अलग रहे। एक मुसलमान के बच्चे का नाम देखकर पहचाना जा सके कि वह मुसलमान है। एक हिन्दू के बच्चे का नाम देखकर पहचाना जा सके कि हिन्दू है। कपड़े देखकर पहचाना जा सके कि आदमी हिन्दू है कि मुसलमान। इसका रंग-ढंग सब देखकर पहचाना जा सके। बच्चे को हम ऐसा ढालते हैं कि वह इस दुनिया में एक मनुष्य की तरह नहीं है। एक बँधी हुई इकाई की तरह पहचाना जाय! इसलिए हम ऐसा नाम रखते हैं।

अभी एक मेरे मित्र ने मुझसे पूछा, उनका बेटा पैदा हुआ है, इसका क्या नाम रखूँ? मैंने कहा, एक्स, वाई, जेड, कुछ भी रख सकते हैं। लेकिन उन्होंने कहा, एक्स, वाई, जेड, बहुत बुरा मालूम पड़ेगा। तो मैंने कहा, नम्बर एक, नम्बर दो, नम्बर तीन, ऐसा कुछ रखना। उन्होंने कहा, यह बड़ा अजीब सा लगेगा। लोग क्या कहेंगे? आप कुछ ऐसा नाम बतायें, जो नाम जैसा लगता हो। तो मैंने कहा, इसका नाम अल्बर्ट

कृष्ण अली रख दें। उन्होंने कहा, तब बड़ी मुश्किल होगी। लोग समझ न पायेंगे कि यह हिन्दू है कि मुसलमान है कि ईसाई है—यह कौन है ? अल्बर्ट कृष्ण अली—इसमें बड़ी मुश्किल होगी। मैंने कहा, मैं चाहता हूँ कि मुश्किल हो। इसे मत जोड़ें परिवार से, इसे मत जोड़ें जाति से, इसे मत जोड़ें राष्ट्र से, लेकिन माँ-बाप बहुत उत्सुक हैं इसे जोड़ देने में ! माँ-बाप बहुत उत्सुक हैं कि यह बेटा उसी शृंखला का हिस्सा हो जाय, जिसके वे हिस्से हैं ! लेकिन वे सारी शृंखलाएँ, बीमारियाँ और महारोग सिद्ध होगी, इसके लिए माँ-बाप बहुत चिन्तित नहीं हैं। वे बेटे को एक शृंखला का हिस्सा बनाना चाहते हैं। वह शृंखला से मुक्त एक मनुष्य न बन जाय, अपनी हैसियत से एक इकाई न बन जाय, इसलिए वह किसी परम्परा, किसी धारा का हिस्सा बनाना चाहते हैं ! वह व्यक्ति न बन जाय। परिवार किसी को व्यक्ति नहीं बनने देता है। और जब तक इस पृथ्वी पर व्यक्ति नहीं पैदा होते, तब तक स्तंत्रता पैदा नहीं हो सकती है। व्यक्ति होना ही गहरी से गहरी स्वतंत्रता है। और वह व्यक्ति व्यक्ति नहीं है, किसी बड़ी परिवार, जाति, कोई कुल, किसी परम्परा का एक हिस्सा मात्र है—वह एक बड़ी मशीन का पुर्जा है, इससे ज्यादा नहीं है। और इसलिए बड़ी सुविधा होती हैं लेबल लगाने में। अभी हिन्दू मुस्लिम दंगा हो जाय तो पड़ोस के आदमी ने, जिसने कभी कुछ आपका नहीं बिगाड़ा था, आप उसकी छाती में छुरा भोंक सकते हैं, क्योंकि वह मुसलमान है ! उसने आपका कभी कुछ नहीं बिगाड़ा, उसने कभी किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा, लेकिन वह मुसलमान है, यह काफी है। अब बड़ी हैरानी की बात है। अगर कलकत्ते में एक मुसलमान किसी हिन्दू को छुरा भोंक दे तो बम्बई में जवाब दिया जा सकता है ! उसका एक हिन्दू एक मुसलमान को छुरा भोंककर जवाब देगा ! लेकिन क्या यह कोई जवाब हुआ ?

मेरे मित्र परसों रात एक कहानी सुना रहे थे। वह कह रहे थे कि एक पठान के घर में एक आदमी मेहमान हुआ। उस पठान के घर में मेहमान हुआ तो पठान बड़ा आतिथ्य दिखलाया और पठान वैसे भी बहुत अतिथि प्रेमी होते हैं। लेकिन उस गरीब के पास कुछ भी नहीं था तो

उसने कहा, आप रुको, मैं अभी बाजार से सामान लेकर आता हूँ। वह सब अपने वर्तन भाड़े बाजार में बेचने गया कि खाने का इन्तजाम कर दें, क्योंकि अतिथि घर आया है। जब तक वह गया, तब तक सामने के झोपड़े वाले पठान ने उस आदमी को कहा, आप वहाँ कहाँ उस गरीब के घर में ठहर गये हैं। वहाँ खाने को भी कुछ नहीं है। यहाँ आ जायं, मेरे मेहमान हो जायँ। उसने बहुत मना किया, लेकिन वह पड़ोस वाला पठान उसे उठाकर ले गया। उस पड़ोस वाले पठान की सामने वाले पठान से दुश्मनी है। वह उस मेहमान को उठाकर ले गया। जब वह पठान वापस लौटा तो उसने देखा, मेहमान तो जा चुका है और पड़ोसी के घर में भोजन कर रहा है। वह तो क्रोध से भर गया। उसने उठायी बन्दूक और जाकर उस मेहमान से कहा, गोली मार दूँगा, वापस चलिये। मैं इन्तजाम किया हूँ आपकी सेवा का। वह मेहमान बहुत घबड़ाया। लेकिन दूसरे पठान ने जिसके घर वह भोजन कर रहा था, उसने कहा, बेफिक्र चले जाओ, घबड़ाओ मत, अगर इसने हमारा एक मेहमान मारा तो मैं इसके तीस मेहमान मारकर बताऊँगा। तुम मजे से जाओ। तुम बेफिक्री से जाओ, हम इसके तीस मेहमानों को गोली न मार दें तो हमारा नाम नहीं। इसको मारने दो गोली, हम तीस से बदला लेकर दिखायेंगे। उस मेहमान ने कहा, लेकिन इससे मुझे क्या फायदा होगा ? मेरा क्या सम्बन्ध उन तीस मेहमानों के मरने से।

लेकिन मेहमान शब्द से काम चलाया जा सकता है और मेहमान शब्द के नीचे आदमी रखे जा सकते हैं, जिनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। मुसलमान शब्द काम दे देगा। तो मुसलमान से काम चलाया जा सकता है। अगर दुनिया में मुसलमान, हिन्दू और ईसाई न हों, तो अगर कलकत्ते में एक आदमी किसी को गोली मारे, छुरा भोंके तो कहीं भी दंगा नहीं हो सकता, क्योंकि अ ने ब को छुरा भोंक दिया, इससे झगड़ा नहीं हो सकता है कि हिन्दू ने मुसलमान को छुरा भोंक दिया। तब झगड़ा हो सकता है। अ ब को छुरा भोंके तो अदालत में निपटारा हो जायेगा। किसी को कोई झंझट नहीं है। लेकिन, हिन्दू मुसलमान को छुरा भोंके तो

फिर झगड़ा पूरी दुनिया में भी फैल सकता है। क्योंकि वह हिन्दू के नाम के नीचे हमने बहुत लोगों को इकट्ठा कर रखा है।

परिवार हमारा पहला व्यक्तित्व छीनने का उपक्रम है। जहाँ हम व्यक्ति का व्यक्तित्व छीन लेते हैं और उसे एक समूह के भीतर जबरदस्ती ढाँचे में ढालने की कोशिश करते हैं। वह पहला कठघरा है, जो पैदा हो जाता है। वह जिन्दगी भर पीछा नहीं छोड़ता।

अजीब ढंग से पीछा पकड़ती हैं बचपन से सीखी बातें। उनकी हमें याद नहीं रहतीं, लेकिन पीछा करती हैं। अब एक बच्चा अपनी माँ को प्रेम करता है और माँ बहुत खुश होगी कि बच्चा माँ को प्रेम करता है और माँ बच्चे को कितना प्रेम करती है, वह करेगी, लेकिन बच्चे के मन में और माँ के प्रेम की जो तस्वीर बनती चली जायेगी, माँ भी नहीं सोच सकती, बच्चा भी नहीं सोच सकता कि अन्ततः यही प्रेम उसकी जिन्दगी को भी उपद्रव में डाल सकता है। अगर बच्चे के मन में अपनी माँ की तस्वीर पूरी तरह बैठ गयी तो वह जिन्दगी भर पत्नी में अपनी माँ को खोजेगा, जो नहीं मिल सकती है। और वह जिन्दगी भर फ्रस्ट्रेशन में जियेगा। जिन्दगी भर तनाव और परेशानी रहेगी, क्योंकि वह खोज रहा है माँ को। उसको माँ जैसी पत्नी चाहिए। वैसी पत्नी कहाँ मिल सकती है। वह एक ही औरत थी। और माँ को पत्नी बनाया नहीं जा सकता। उसका कोई उपाय नहीं है। अब वह अपनी माँ को खोज रहा है, माँ के गुण खोज रहा है, माँ की तस्वीर खोज रहा है। और वह तस्वीर उसको कहीं भी नहीं मिलेगी। उसको कोई पत्नी कभी सुख नहीं दे पायेगी। हर पत्नी के साथ मुसीबत खड़ी हो जायेगी। क्योंकि वह माँ की एक इमेज, एक धारणा मन में बैठ गयी है। अब बचपन में सीखी गयी एक धारणा जीवन भर उसका पीछा करेगी। वह कभी शान्त नहीं हो सकेगा।

इसलिए हर आदमी जानता है कि मुझे कैसी स्त्री चाहिए, और हर स्त्री जानती है कि मुझे कैसा पति चाहिए। एक धुँधली धारणा है भीतर, और हम उसकी तलाश में रहते हैं। लेकिन वह कभी मिलने वाला नहीं है, क्योंकि लड़की के मन में अपने पिता की तस्वीर है और लड़के के मन में

अपनी माँ की तस्वीर है। और वे कहीं भी मिलने वाले नहीं हैं। एक से व्यक्ति दोबारा पैदा ही नहीं होते! अब वह बचपन में बैठ गयी तस्वीर जिन्दगी भर पीछा करेगी। और सारी जिन्दगी को खराब कर देगी। बचपन में जो भी बैठ जाता है, वह जिन्दगी भर पीछा करता है। और बचपन में अगर गलत सीमाएँ बिठा दी जायँ तो जिन्दगी भर उनको भूलना मुश्किल है। एक आदमी बाद में बुद्धिमानीपूर्वक सोच-विचार करके यह समझ ले कि मैं सिर्फ आदमी हूँ, न हिन्दू हूँ, न मुसलमान हूँ, न इस परिवार का हूँ, न उस देश का हूँ, तो भी बहुत गहरे में वह वही रहेगा।

एक मित्र बीस साल से जर्मनी में हैं। अब बीस साल में जर्मन भाषा को वे ऐसा बोलने लगे थे, जैसे उनकी मातृभाषा हो। बल्कि वह यहाँ लौटकर आते थे तो हिन्दी बोलने में उन्हें कठिनाई होती थी। हिन्दी वे ऐसे ही बोलते थे, जैसे कोई जर्मन हिन्दी सीखकर बोल रहा हो। वे हिन्दी बोलना ही करीब-करीब भूल गये। फिर वे बीमार पड़े और उनके दूसरे भाई उन्हें देखने गये। उनके दूसरे भाई ने मुझे कहा कि हम बड़ी मुश्किल में पड़ गये। जब वे बीमार थे और बेहोश हो जाते थे, तब वे जर्मन भूल जाते थे, हिन्दी बोलने लगते थे। और रात को डाक्टर कहते थे उनके भाई से कि आप रात रुक जाइए, अगर आपका भाई बेहोश हो जाता है, तो फिर हमारी समझ के बाहर हो जाता है कि वह क्या बोलता है। जब वे बेहोश होते थे, तो वे हिन्दी बोलते थे। वे होश में होते थे, तो वे हिन्दी ठीक से समझ भी नहीं पाते थे।

वह जो बचपन में सीखा था, वह बहुत गहरे बैठ जाता है।

मैंने सुना है कि भोज के दरबार में एक बहुत बड़ा पण्डित आया और उसने भोज के पण्डितों को चुनौती दी कि मेरी मातृभाषा पहचान कर बता सको तो मैं एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ भेंट करूँगा। और जो आदमी हार जायेगा, उसे फिर एक लाख स्वर्ण मुद्रा मुझे देनी पड़ेगी। अगर जीत गया तो एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ मैं दे दूँगा। भोज के दरबार में बड़े-बड़े विद्वान लोग थे। एक-एक विद्वान ने चुनौती स्वीकार की, रोज एक-एक पण्डित हारने लगा। उसकी मातृभाषा पहचाननी मुश्किल थी। वह कोई तीस

भाषाएँ इस भाँति बोलता था कि सभी उसकी मातृभाषाएँ हैं । रोज पण्डित हारने लगे । आठवें दिन आ गया । भोज ने कालिदास को कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ । कैसी बदनामी होगी मेरी ? एक पण्डित यह भी नहीं पहचान पाता है कि मातृभाषा कौन सी है । बोलना तो दूर, समझना दूर, मातृभाषा कौन सी है, यह भी नहीं बता पाता है । लोग क्या कहेंगे ? कालिदास से कहा, तुम कुछ करो । कालिदास ने कहा मैं सोच रहा हूँ । कुछ करने की कोशिश करूँगा । उस दिन जब पण्डित जीतकर जा रहा था एक लाख रुपया, आठवें दिन लेकर फिर जा रहा था, बड़ी सीढ़ियों पर दरवाजे के सामने कालिदास से बातें कर रहा था । जब सीढ़ियाँ उतरने लगा, कालिदास ने उसे जोर से धक्का दे दिया । वह सीढ़ियों से नीचे गिरा—पच्चीस फीट सीढ़ियों से नीचे, और उसको उसने जो गाली दी, वह मातृभाषा में थी । कालिदास ने कहा, माफ करिए, यह तकलीफ देनी पड़ी, और कोई उपाय न था । यह आपकी मातृभाषा होनी चाहिए । रुपये नहीं जीतने हैं, लेकिन हम खोज करना चाहते थे कि मातृभाषा क्या है ?

वह जो बचपन में बैठी हो, वह बहुत गहरे में बैठी है । वह जिन्दगी भर पीछा करती है । हम कितना ही सीख लें फिर, असल में बचपन में पकड़ी गयी मानसिक बीमारियों से छुटकारा करीब-करीब असंभव है । हो सकता है, लेकिन बड़ा मुश्किल है । और यह जो सारी मनुष्य जाति इतनी बीमार दिखाई पड़ रही है, यह बचपन में पकड़ी गयी मानसिक बीमारियों का परिणाम है । बचपन में हम सीमाएँ सिखा रहे हैं, असीम नहीं । बचपन में हम अतीत से बाँध रहे हैं, भविष्य की तरफ मुक्त नहीं कर रहे हैं । बचपन में हम धर्म सिखा रहे हैं, आदर्श सिखा रहे हैं, बचपन में हम सब सिखाये दे रहे हैं । और बचपन एक काराग्रह बन जायगा और यह जिन्दगी भर साथ रहेगा ।

आप कहीं भी जाओ, घर के बाहर निकलना आसान है । लेकिन हिन्दू के बाहर होना बड़ा मुश्किल है । हिन्दू आपके चारों तरफ जुड़ा ही रहेगा । आप कहीं भी जाओ, आपके आसपास मुसलमान की दीवाल साथ में चलेगी । वह आपके शरीर के चारों तरफ चिपका हुआ जाल है, उससे

छूटना बहुत मुश्किल है । और परिवार इस जाल की शुरुआत है, वह प्राथमिक चरण है । क्या मनुष्य को परिवार से मुक्त किया जा सकता है ?

निश्चित ही किया जा सकता है । और अगर माँ-बाप-बच्चों को प्रेम करते हैं, तो उन्हें उसे परिवार से नहीं बाँधना चाहिए । उन्हें निरन्तर कोशिश करनी चाहिए कि वह मुक्त जी सके । उसकी किसी से कोई आईडेन्टिटी, उसका किसी से कोई तादात्म्य न हो पाये । वह एक व्यक्ति की हैसियत से खड़ा हो सके । एक शृंखला की कड़ी की हैसियत से नहीं, एक व्यक्ति की हैसियत से खड़ा हो सके । अपनी हैसियत से खड़ा हो सके ।

अरविन्द के पिता एक बहुत अद्भुत आदमी थे, शायद आपको पता हो या न हो । अरविन्द को उन्होंने पाँच-छः साल की उम्र में हिन्दुस्तान के बाहर भेज दिया । और जिस स्कूल में रखा था इंगलैंड में, वहाँ के शिक्षकों को और वहाँ के प्रिन्सिपल को कहा कि मेरे लड़के को किसी धर्म की कोई शिक्षा न दी जाय । वे बहुत हैरान हुए । उन्होंने कहा, किसी धर्म की तो शिक्षा मिलनी ही चाहिए । अरविन्द के पिता ने कहा, मैं किसी धर्म की शिक्षा को नहीं देना चाहता, क्योंकि कितने लोगों को धर्म की शिक्षा दी गयी है और वह जो कर रहे हैं, उससे ज्यादा अधर्म और कुछ भी नहीं हो सकता है । मैं अपने बच्चे को किसी धर्म की शिक्षा नहीं देना चाहता । अगर उसकी जिन्दगी में उसे खोज करनी होगी तो वह खोज करे । और मेरे बच्चे को कभी हिन्दू न समझा जाय और कभी भारतीय न समझा जाय । पर उस प्रिंसिपल ने कहा, यह कैसे हो सकता है ? उनके पिता ने कहा कि मैं यही चाहता हूँ कि मेरा बच्चा एक मुक्त व्यक्ति की तरह बढ़े । वह किसी जाति की स्मृतियों को लेकर बड़ा न हो और किसी परम्परा की कड़ी की तरह एक हिस्सा न बने । वह अपनी हैसियत से अपने पैरों पर खड़ा हो सके । वह दूसरों के कन्धों पर खड़ा न हो, मैं यही चाहता हूँ । बहुत

बाप बीमार पड़ गये, लेकिन बेटे को उन्होंने बुलाया नहीं । बहुत हिम्मत के आदमी रहे होंगे । अरविन्द जैसा बेटा पैदा करने के लिए वैसे भी हिम्मतवर आदमी चाहिए । बाप बीमार थे, लेकिन उन्होंने बेटे को नहीं बुलाया । घर के लोगों ने कहा, बेटे को बुला लें, आप बीमार हैं ? तो

उनके पिता ने कहा, अच्छा है कि वह मुझसे न बँधे। उसे याद भी न रहे कि उसका कोई पिता है। ताकि अतीत से उसका सारा सम्बन्ध टूट जाय। बहुत अद्भुत हिम्मत के आदमी रहे होंगे कि उससे मेरा कोई संबंध भी न हो, ताकि वह अतीत से—मैं उसकी कड़ी हूँ मुझसे, अतीत से, पास्ट से जुड़ा हुई कोई कड़ी उसे याद न रह जाय। वह भविष्य का नागरिक हो अतीत का बोझ लेकर खड़ा न हो। भविष्य का मुक्त नागरिक हो।

अरविन्द के पिता मर गये, अरविन्द को पता भी न चला! अरविन्द जब वापस हिन्दुस्तान आये, तब उनको पता चला कि उनके पिता चल बसे। और इसलिए खबर नहीं कि कि मुझसे कोई स्मृति भी न जुड़े, वह भविष्य का नागरिक होना चाहिए। हम सब अतीत के नागरिक हैं। और अरविन्द में जो प्रतिभा प्रगट हुई, उसमें उनके पिता का नब्बे प्रतिशत हाथ है। और अरविन्द में जो भविष्य की एक प्रेरणा उदय हुई, और भविष्य का जो एक दर्शन अरविन्द को हो सका, और मनुष्य के भावी विकास के लिए जो वे सोच सके, उस सबमें उनके पिता का हाथ है, क्योंकि अतीत के बोझ को उन्होंने काट दिया, अतीत से शृंखला तोड़ दी।

क्या हम एक ऐसा समाज बना सकेंगे, जहाँ माँ-बाप बेटे को अतीत से जोड़ने वाले नहीं तोड़ने वाले बनते हों; तो ही मनुष्य के दुःख और मनुष्य की शूली पर लटकी हुई इस हालत को नीचे उतार सकते हैं, अन्यथा यह उतारना बहुत मुश्किल है।

आज मैं तीसरा सूत्र यह कहना चाहता हूँ कि बच्चों को अतीत से मुक्त करना है, ताकि वे भविष्य के मुक्त नागरिक बन सकें। लेकिन हम सब पीछे से बँधे हैं! और कुछ क्षण हैं व्यक्ति के जीवन में, जिसको मैं मूवमेंट्स आफ एक्सपोज कहता हूँ। जैसे कि कैमरे का एक्सपोज होता है। एक क्लिक दबाया और कैमरा खुला और एक क्षण में जो उसके भीतर चला गया, वह भीतर बैठ गया, फिल्म ने पकड़ लिया। ऐसे ही मनुष्य के मन में भी एक्सपोज के क्षण होते हैं, जब उसका मन खुलता है और कुछ चीजों को पकड़ लेता है।

आदमी की जिन्दगी में ऐसे दस-पाँच क्षण होते हैं, जो मूवमेंट्स आफ एक्सपोज हैं। अगर उन क्षणों में भूल हो जाय तो जिन्दगी भर के लिए भूल हो जाती है। बचपन में ऐसे क्षण सर्वाधिक होते हैं, जब बच्चे का मन खुला होता है और जो भी उसमें प्रवेश कर जाता है, वह प्रवेश कर जाता है और उसकी आत्मा में उसकी छवि अंकित हो जाती है।

मैं एक बहुत हैरानी की घटना पढ़ रहा था। मैं पढ़ रहा था कि एक वैज्ञानिक मुर्गियों पर कुछ प्रयोग करता था। अब मुर्गी का बच्चा जैसे ही अण्डे के बाहर निकलता है, अपनी माँ के पीछे भागना शुरू कर देता है। अण्डे से बाहर निकला और माँ भाग रही है, वह उसके पीछे भागने लगे। और जब तक वह बड़ा नहीं हो जायेगा, माँ के पीछे भागता रहेगा, भागता रहेगा। एक वैज्ञानिक ने अद्भुत प्रयोग किया। जब मुर्गी का चूजा बड़ा हो गया, और अण्डा टूटने के करीब आया तो उसने उसकी माँ को तो हटा दिया और माँ की जगह एक गैस का भरा हुआ गुब्बारा रख दिया उसी रंग का, लाल रंग का। और जब अण्डा टूटा और उसमें से बच्चा बाहर निकला तो उसे माँ तो नहीं दिखायी पड़ी, उसे दिखायी पड़ा गुब्बारा। वह मूवमेंट्स आफ एक्सपोज है! जब बच्चा पहली दफा जगत में आता है, तो उसका मन खुलता है पूरा। वह जो भीतर ले जाता है, वह सदा के लिए भीतर हो जाता है। वह गुब्बारे के पीछे भागने लगा। फिर उसकी माँ को भी ले आया गया, लेकिन माँ की तरफ उसने ध्यान भी न दिया! फिर लाख कोशिश की गयी कि वह अपनी माँ के पीछे भागे, लेकिन वह माँ को पहचान नहीं सका गुब्बारा ही उसकी माँ हो गया। वह गुब्बारे के पास आकर सिर टिकाके सो जाता था! वह गुब्बारे के नीचे घुसकर बैठ जाता था! वह गुब्बारे के पीछे भागता था। वह गुब्बारे की तरफ चोंच फैलता था कि गुब्बारा उसकी चोंच में कुछ दे दे! लेकिन वह माँ को नहीं पहचान सका! वह मर गया बच्चा। फिर तो बहुत मुर्गी के बच्चों पर प्रयोग किया गया और पाया गया कि उस क्षण में, पहले क्षण में उसका मन जो पकड़ लेता है, वही उसकी माँ बन जाती है।

सबके साथ वैसे क्षण हैं, आदमी के साथ भी वैसे क्षण हैं। एक बच्चा पैदा होता है और माँ के प्रति जो इतना बड़ा प्रेम है, उसका पहला कारण यह है कि वह मूवमेंट आफ एक्सपोजर में पहले माँ ही उसको उपलब्ध होती है। तब उसका मन खुला होता है और माँ की तस्वीर भीतर चली जाती है। लेकिन खतरनाक भी है एक अर्थ में, क्योंकि लड़के के मन में भी माँ की तस्वीर चली जाती है और लड़की के मन में भी माँ की तस्वीर चली जाती है! और मनुष्य के जिन्दगी में मनुष्य के प्रेम और दाम्पत्य में बाधा डालने वाला एक कारण यह भी है! क्योंकि जो तस्वीर भीतर चली गयी है लड़के के मन में, अब जिन्दगी भर वह इसी तस्वीर को खोजता रहेगा। पहले माँ के प्रेम में इसको पायेगा और परिपक्व कर लेगा, फिर यह मजबूत हो जायेगी। फिर जब सेक्सुअल मेच्योरटि आती है, पहली दफे यौन की दृष्टि से व्यक्ति परिपक्व होता है, तब फिर मूवमेंट आफ एक्सपोजर आता है। जिसको लोग कहते हैं, लव एट फर्स्ट साइट। वह कुछ भी नहीं है। वह वही मूवमेंट आफ एक्सपोजर है। वह वही का वही मामला है, जैसे उस मुर्गी को प्रेम हो गया गुब्बारे से। वह मुर्गी का बच्चा गुब्बारे के पीछे घूमने लगा। वह लव एट फर्स्ट साइट, वह पहली नजर है प्रेम की, खुल गया मन और वह गुब्बारा भीतर बैठ गया। जब यौन की दृष्टि से व्यक्ति पहली दफे परिपक्व होता है, तब फिर उसका मन खुलता है और जो पहली तस्वीर भीतर बैठ जाती है, भीतर प्रवेश कर जाती है और गहरा प्रवेश कर जाती है। लेकिन अगर इन दोनों तस्वीरों में भीतर संघर्ष हो जाय तो वह व्यक्ति कभी भी शांति से जी न पायेगा और इन दोनों तस्वीरों में संघर्ष हो जाता है।

अभी इजराइल में वह एक प्रयोग करते हैं। और उस प्रयोग ने बड़ी सफलता पायी है। वह इस मूवमेंट आफ एक्सपोजर को ध्यान में रखकर किया गया प्रयोग है, और आज नहीं कल, सारी दुनिया को करना पड़ेगा। वे छोटे बच्चे को माँ के पास ज्यादा देर नहीं पालते हैं। बल्कि हर तीन महीने में उसकी नर्स बदलते रहते हैं। ताकि उसके मन में किसी एक स्त्री का कोई फिक्सेशन, कोई एक चित्र न बन पाये। वह बड़ा

होते-होते बीस-पच्चीस नर्सों को माँ जैसा प्रेम करे और माँ बदलती चली जाय। बीस-पच्चीस चित्र बने तो धुँधला हो जायेगा। कोई एक चित्र भीतर न रह जायगा। और यह अनुभव किया गया है कि वैसा बच्चा फिर किसी भी स्त्री को ज्यादा सरलता से प्रेम कर सकता है, बजाय उस बच्चे के जो अपने ही माँ के ही चित्र पूरी तरह निश्चितता से भीतर पकड़ लेता है और जिसका चित्र बहुत साफ होता है, जिसका चित्र धुँधला नहीं होता।

अब सारा दाम्पत्य सड़ गया है। सारा दाम्पत्य दुःख की सूली से भरा हुआ है। सब सूली पर लटके हुए हैं। लेकिन कोई भीतर उतरकर देखने की फिक्र में नहीं है कि कारण कहाँ हैं और क्या हैं? लड़के के मन में माँ का चित्र बैठ जाय, यह तो ठीक है, लेकिन लड़की के मन में भी माँ का चित्र बैठ जाय तो बहुत कठिनाई हो जाती है। जरूरी है कि लड़की के मन में बाप का चित्र बैठे। लेकिन हमारी जो व्यवस्था है उसमें सब बच्चों को माँ पालती है, बाप तो किन्हीं को पालता नहीं है। आने वाले भविष्य में लड़कियाँ बाप के निकट ज्यादा पाली जानी चाहियें, लड़के माँ के निकट ज्यादा पाले जाना चाहियें, तभी हम दाम्पत्य जीवन से दुःख और पीड़ा और कलह को हटा पायेंगे। अन्यथा नहीं हटा पायेंगे। इसलिए आज तक पाँच हजार वर्षों में जितने विवाह के प्रयोग हुए हैं, सभी असफल हो गये हैं, क्योंकि प्रयोग ऊपर से होते हैं, भीतर कुछ और गहरी जड़ें हैं, जो हमारे ख्याल में भी नहीं हैं। लड़की के मन में भी अगर माँ का चित्र बैठ जाय तो बहुत खतरा है। खतरा यह है कि हो सकता है, वह किसी पुरुष को कभी ठीक से पूरा प्रेम न कर पाये। वह पहले क्षण में जो तस्वीर बैठ गयी है, वह तस्वीर खतरनाक हो सकती है। पहली तस्वीर लड़की के मन में पुरुष की ही बैठनी चाहिए, वह भी एक ही पुरुष की नहीं बैठनी चाहिए, वह भी उचित है कि और ज्यादा पुरुषों की बैठे। ताकि कोई निश्चित तस्वीर न हो। और निश्चित तस्वीर की खोज जिन्दगी में शुरु न हो जाय।

अगर यह हो सके तो हम दाम्पत्य के दंश को, कलह को, दुःख को, सफरिंग को अलग कर सकते हैं। अन्यथा नहीं कर सकते हैं लेकिन इस

सब पर कोई ध्यान नहीं है। और एक आदमी अशान्त हो गया है, एक-एक आदमी पीड़ित हो गया है, एक-एक आदमी अपनी अशांति और पीड़ा के लिए तरकीबें खोजता फिरता है। वह पूछता है, मैं शांत कैसे हो जाऊँ। जब कि अशांति के कारण इतने गहरे हैं, इतने सामूहिक हैं और इतने अतीत से जुड़े हुए हैं कि उस एक व्यक्ति की सामर्थ्य के बाहर हो जाता है कि वह कुछ कर पाये। वह करीब-करीब विवश, भाग्य के हाथों में बँधा हुआ अनुभव करता है। कुछ भी नहीं कर पाता है, तड़फता है, परेशान होता है और मर जाता है।

क्या हम कभी एक ऐसे समाज का चिन्तन करेंगे ?

करना पड़ेगा। करना अत्यन्त जरूरी है। अन्यथा मनुष्य का भविष्य नहीं है कोई। अब हम उस जगह आ गये हैं, जहाँ मनुष्य ने जो बीमारियाँ अतीत में पाली थीं, वह अपनी पूर्णाहुति पर पहुँच रही हैं, और हो सकता है, यह पर्दा गिरने के करीब हो। यह पूरा आदमी का समाज नष्ट हो जायेगा। ऐसा होता है, पानी गर्म करते हैं तो एक डिग्री पर पानी भाप नहीं बनता है। दस डिग्री पर भी नहीं बनता, नब्बे डिग्री पर भी नहीं बनता, निन्यानवे डिग्री पर भी पानी भाप नहीं बनता, भाप तो सौ डिग्री पर बनता है। लेकिन जब सौ डिग्री पर बनता है, तो कोई कह सकता है कि यह गलती इस आखिरी डिग्री की है, जिसकी वजह से यह पानी भाप बनता है। वह निन्यानवे डिग्रियाँ जो अतीत में इकट्ठी थीं, उनका ख्याल भी न आये।

आज आदमी की जिन्दगी में जो सब तरफ से रोग प्रगट हो गये हैं—हिंसा है, क्रोध है, वैमनस्य है, युद्ध हैं, ये सारे के सारे आज पैदा नहीं हो गये हैं। कोई यह न समझे कि रामराज्य का इसमें कोई हाथ नहीं है। कोई यह न समझे कि बुद्ध के जमाने का कोई हाथ नहीं है। कोई यह न समझे कि क्राइस्ट के जमाने का कोई हाथ नहीं है। यह उन सब जमानों का हाथ है। हम तो आखिरी डिग्री भर जोड़ रहे हैं पानी के भाप बनने में, और कुछ नहीं कर रहे हैं। यह जो पिछले पाँच हजार वर्षों में, जैसा आदमी बनाया है, वह आखिरी जगह पहुँच गया है, जहाँ आखिरी डिग्री जुड़ जाय तो सब भाप बन जाय। और हम भाप बनने के करीब खड़े हो गये हैं। इसलिए बहुत चिन्ता की बात भी है, चिन्तन की भी, विचार की भी, सोचने की भी, खोज करने की भी।

मैं कुछ दो-तीन और छोटी बातें इस सम्बन्ध में कहूँ और अपनी बात पूरी करूँ।

एक-एक व्यक्ति को अब तक हमने अतीत का सदस्य बनाया है। भविष्य का सदस्य नहीं बनाया है। इसे बनाने के लिए हम बहुत तरकीबें उपयोग में लाये हैं सबसे बड़ी तरकीब तो हम यह उपयोग में लाये हैं कि अतीत के आदर्श पुरुषों को हमने एक-एक बच्चे के ऊपर थोप दिया है। हम उससे कहते हैं, राम जैसा बनो, बुद्ध जैसे बनो, महावीर जैसे बनो। जैसे खुद जैसे होना कोई कसूर हो, कोई अपराध हो। और हर आदमी अपने जैसा होने को पैदा हुआ है। कोई आदमी दूसरे जैसा हो नहीं सकता है। कोई राम नहीं बन सकता। और बने, तो बनाने की जरूरत भी नहीं है। और बन भी सकता हो तो बड़ी कृपा होगी कि न बने। क्योंकि जब कोई दूसरे की नकल बनता है तो उसकी आत्मा खो जाती है। वह सिर्फ अभिनय रह जाता है, उसकी आत्मा नहीं रह जाती। आत्मा तो तभी होती है, जब कोई व्यक्ति होता है, स्वयं होता है। अथेंटिकली इंडिवीजुअल अब कोई होता है ही आत्मा तो होती है। अन्यथा आत्मा नहीं होती है। राम के पास आत्मा रही होगी, लेकिन रामलीला के रामों के पास कोई आत्मा नहीं होती। लेकिन रामलीला के राम बनने के लिए निरन्तर उपदेश दिये जा रहे हैं।

अतीत के महापुरुषों को हम भविष्य के बच्चों पर थोप रहे हैं, जब कि भविष्य के बच्चे भविष्य के नागरिक होंगे। अतीत को हम उनके ऊपर न थोपें। काफी है कि हम राम से परिचित करा दें, लेकिन कभी भूलकर यह न कहें कि राम जैसे बन जाओ। बल्कि हम निरन्तर कहें कि राम पाँच हजार साल के आदमी हैं और तुम्हें भविष्य का आदमी बनना है। राम तुम्हारे लिए जरा भी सहयोगी नहीं हो सकते। तुम राम को समझ लो और इसीलिए समझ लो कि कहीं भूल-चूक से भी राम जैसे मत हो जाना।

क्योंकि राम पाँच हजार साल पुराने आदमी हैं। राम तुम्हें नहीं बनना है और बनोगे तो बहुत मुसीबत में पड़ जाओगे।

आज अगर कोई आदमी कृष्ण बन जाय बम्बई की सड़कों पर, तो आप समझते हैं कि क्या होगा? सिवाय पुलिसखाने के वह और कहीं नहीं पहुँचाया जायेगा। फौरन पुलिसखाने में पहुँचा दिया जायेगा। कृष्ण बड़े प्यारे आदमी हैं, बहुत अद्‌भुत आदमी हैं। लेकिन पाँच हजार साल पहले का अद्‌भुत आदमी आज बिल्कुल बेमानी है। आज कोई मतलब नहीं है। आज कृष्ण जैसा बनकर खड़ा हो जाना बहुत नाटकीय मालूम पड़ेगा, बहुत ड्रामेटिक मालूम पड़ेगा। तो रंगमंच पर, रामलीला में, कृष्ण लीला में, कहीं रासलीला चलती हो तो ठीक है, लोग बर्दाश्त कर लेंगे, लेकिन सड़क पर अगर पा लिया तो बहुत मुश्किल हो जायेगा।

अतीत को हम थोपते हैं बच्चों पर! पहले थोपने का ढंग यह है कि अतीत के महापुरुषों की तस्वीर उनके मन में बिठाते हैं, जो कि बिल्कुल गलत है। जो कि वह कभी नहीं हो सकता। और अगर वह तस्वीर उनके मन पर बैठ गयी तो निरन्तर सेल्फ कण्डेमनेशन अनुभव करेंगे। जिन्दगी भर अनुभव करेंगे कि मैं अभी राम जैसा नहीं हो पाया। एक स्त्री अनुभव करेगी कि मैं सीता जैसी नहीं हो पायी। सीता जैसी होना चाहिए थी। मैं सीता जैसी नहीं हो पायी। उसकी सारी जिन्दगी एक मुसीबत और एक कष्ट बन जायेगी, एक दुःख बन जायेगी। जब हम कहते हैं किसी आदमी से, तुम किसी और जैसे हो जाओ तो हम उसको आत्म-निन्दा का पाठ सिखा रहे हैं। और जो आदमी आत्म-निन्दा का पाठ सीख लेता है, उस आदमी के आनन्द की कोई संभावना शेष नहीं रह जाती।

आनन्द तो आयेगा आत्म-प्रफुल्लता से, आनन्द तो आयेगा आत्म-स्वीकृति से। आनन्द तो आयेगा मैं जैसा हूँ, उसमें मैं आनन्दित हो सकूँ। लेकिन हमारी शिक्षा कहती है, उसमें कभी आनन्द मत लेना जैसे तुम हो! आनन्दित तुम तब हो सकते हो जब तुम बनो राम, जब तुम बनो कृष्ण, जब तुम बनो क्राइस्ट, तब तुम आनन्दित हो सकते हो। तो हम ढाँचे थोपते हैं बच्चे के ऊपर। वे ढाचे उनको निन्दित कर देते हैं सदा के

लिए। जिन्दगी भर जीते हैं, लेकिन उन्हें ऐसा लगता है कि वे ठीक जीवन नहीं जी रहे हैं। वे कुछ गलत जीवन जी रहे हैं, क्योंकि स्त्री सीता नहीं बन पायी है, क्योंकि आदमी राम नहीं बन पाया, क्योंकि आदमी कृष्ण नहीं बन पाया। जरूर कुछ गलती हो गयी, मैं गलत जीवन जी रहा हूँ। हममें से हर आदमी ऐसा अनुभव कर रहा है कि मैं गलत जीवन जी रहा हूँ! और अगर सारी दुनिया ऐसा अनुभव करती हो कि हम गलत जीवन जी रहे हैं तो ठीक जीवन कैसे पैदा हो सकता है। ठीक जीवन की बुनियादी आधारशिला यह होगी कि हम प्रत्येक व्यक्ति को उसके जैसा बनने की क्षमता, स्वतन्त्रता, मुक्ति और सहयोग दें। जो आदमी जो बन सकता हो, उसके लिए हम सहयोगी हों। अभी हम सब बाधक हैं, वह जो बन सकता है।

रवीन्द्रनाथ के घर में एक पुरानी किताब रखी हुई है। उस किताब में घर के लोग, घर में जो छोटे बच्चों के जन्म दिन होते हों, उन जन्म दिनों पर घर के बच्चों के सम्बन्ध में अपने रिमार्क लिखते थे, अपनी टिप्पणियाँ लिखते थे। रवीन्द्रनाथ के तो दस ग्यारह भाई बहन थे, बड़ा परिवार था। लेकिन उस घर की किताब में सब बच्चों के सम्बन्ध में अच्छे रिमार्क्स हैं, रवीन्द्र के बाबत कोई अच्छा रिमार्क नहीं है। रवीन्द्र के बाबत रवीन्द्रनाथ की माँ ने ही लिखा है कि रवीन्द्र से हमें कोई भविष्य में आशा नहीं है। यह लड़का न मालूम कैसे हमारे घर में पैदा हो गया। क्योंकि बाकी सब बच्चे कोई फर्स्ट क्लास आता है, कोई गोल्ड मैडल लाता है। इस लड़के के पास होने की उम्मीद ही बहुत मुश्किल है। रवीन्द्र-नाथ पर बहुत थोपने की कोशिश की उन्होंने कि तुम ऐसे बन जाओ, वैसे बन जाओ, लेकिन वह लड़का नहीं बना। और बड़ी कृपा की उस लड़के ने कि माँ-बाप की नहीं मानी और नहीं बना। अगर बन जाता तो दुनिया एक बहुत अच्छे आदमी से वंचित रह जाती। लेकिन बहुत से लोग बन गये हैं और दुनिया बहुत अच्छे लोगों से वंचित हो गयी है।

हम सब थोप रहे हैं, ऐसे बन जाओ। रवीन्द्रनाथ का रवीन्द्रनाथ होना ही आनन्दपूर्ण है। किसी और जैसे बनने की कोई जरूरत नहीं है। और

यह रवीन्द्रनाथ के लिए ही सही नहीं है, एक साधारण से साधारण आदमी का अपने जैसा होना ही काफी है। वह अपनी ही खुशबू से जी सकता है और अपनी ही जिन्दगी और अपने ही रास्ते पर चल सकता है। उसका अपना गीत होगा, अपने चरण होंगे, अपना नृत्य होगा। कोई हर्ज नहीं कि बहुत बड़े मंचों पर उसका नाम न लिया जाय, और कोई हर्ज नहीं कि बड़ी राजधानियों में उसका शोरगुल न हो, और कोई हर्ज नहीं कि अखबारों के पहले पृष्ठ पर उसका नाम न हो। कोई हर्ज नहीं, क्योंकि जिन्दगी अखबारों से सम्बन्धित नहीं है। बल्कि सच सो यह है कि अखबारों की तलाश में केवल वे ही लोग घूमते हैं, जो जिन्दगी से वंचित रह गये है, जो जिंदगी का आनन्द नहीं भोग पाये हैं। असल में राजधानियों से जिन्दगी का कोई सम्बन्ध नहीं है। राजधानियों की खोज और तलाश सिर्फ उन्हीं मनों में है, जो जिन्दगी की राजधानी में नहीं पहुँच पाये हैं। असल में दूसरा मेरी प्रशंसा करे, इससे जिन्दगी का क्या सम्बन्ध है ?

जिन्दगी का सम्बन्ध है कि मैं आनन्दित हो जाऊँ। जिन्दगी जीने में है, किसी की प्रशंसा में नहीं है, और किसी के आदर में नहीं है। लेकिन हम एक-एक बच्चे को यह कह रहे हैं कि तू सम्मानित जीवन जीना ! दूसरे लोगों की तरफ ध्यान रखना कि दूसरे लोग क्या कहते हैं। जो गलत दूसरे लोग कहते हों, वह कभी मत करना, और जो दूसरे लोग ठीक कहते हों, वह सदा करना ! हम उस बच्चे को जिन्दगी जीने से तोड़ रहे हैं। हम उससे यह कह रहे हैं कि तू निरन्तर उधार जिन्दगी जीना। दूसरों की आँखों में पहले देख लेना कि लोग क्या कहते हैं !

लोग क्या कहते हैं, इससे जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम क्या अनुभव करता है, इससे जीवन का सम्बन्ध है। लेकिन कोई माँ-बाप अपने बेटे को यह नहीं कह रहे हैं कि तू जिन्दा रहना, अपनी हैसियत से जीना। और चाहे सारी दुनिया भी गलत कहती हो, लेकिन अगर तुझे आनन्दपूर्ण मालूम पड़ता हो और तुझे शांतिपूर्ण मालूम पड़ता हो तो तू अपने रास्ते पर जाना, दुनिया की फिक्र मत करना। सच तो यह है कि राजपथों पर चलने वाले लोगों को आनन्द की कोई झलक भी नहीं मिलती है। जो पग-

डण्डियों पर जाते हैं, अपनी-अपनी जिन्दगी की पगडण्डियों पर जाते हैं, वे ही केवल जीवन के गहन रहस्य में प्रवेश कर पाते हैं। सीमेंट से पटे हुए जो राजपथ हैं, वे राजधानियाँ पहुँचाते हैं, लेकिन जंगलों में जानेवाली जो गहरी पगडण्डियाँ हैं, जहाँ आदमी को अकेला चलना पड़ता है अपना रास्ता बनाते हुए, वहाँ जिन्दगी की गहराइयों की पहुँच है। लेकिन् हम यह कभी नहीं सिखाते।

तीसरी बात, हम कभी बच्चे को नहीं सिखाते, नहीं सिखा पाते। न हमने सीखा है, न सिखा पाते हैं कि वह जो चारों तरफ विराट ब्रह्माण्ड फैला हुआ है, उससे हमारा कोई सम्बन्ध है। हम सिर्फ आदमियों से संबंध जुड़वाते हैं। हम कहते हैं, यह रही तेरी माँ, यह रहे तेरे पिता, यह रहे तेरे भाई, यह रही तेरी बहन। लेकिन चाँद-तारों से कोई संबंध है ? समुद्र की लहरों से कोई संबंध है ? आकाश में भटकने वाले बादलों से कोई सम्बन्ध है ? वृक्षों पर खिलने वाले फूलों से कोई सम्बन्ध है ? धूप से कोई सम्बन्ध है ? छाया से कोई सम्बन्ध है, पत्थरों से, रेत से कोई सम्बन्ध है, पृथ्वी में कोई सम्बन्ध है ?

नहीं कोई सम्बन्ध नहीं है। आदमी ने आदमी के बीच सम्बन्ध बना लिये हैं और सारे जगत से सम्बन्ध तोड़ लिये हैं। जब कि जिन्दगी कभी भी रसपूर्ण नहीं हो सकती, जब तक कि हम समग्र से न जुड़ जायँ। ऐसे हम जुड़े हैं, लेकिन मन में हम टूट गये हैं। आप समुद्र के किनारे बैठकर कभी आनंदित हो लेते हैं, हों क्षण भर को, पर कभी आपने जाना है कि यह आनन्द क्यों आपको हो रहा है समुद्र की लहरों से ? यह समुद्र के पास आपको एक शांति क्यों मालूम पड़ रही है ? यह समुद्र के गर्जन में आपको अपनी आत्मा की आवाज क्यों सुनायी पड़ती है, कभी आपने सोचा है ?

शायद आपको पता भी न हो—करोड़ों-करोड़ों वर्ष पहले आदमी का पहला जन्म तो समुद्र में ही हुआ था, और आज भी आदमी के भीतर जो खून बह रहा है, उसमें उतना ही नमक है, जितना समुद्र के पानी में। आदमी के भीतर जो पानी है उसमें समुद्र के पानी और नमक का जो अनुपात है, वही अनुपात आज भी आदमी के भीतर के पानी और नमक

में है। आज भी पानी वही बह रहा है। माँ के पेट में जो बच्चा गर्भ में होता है, उस गर्भ को चारों तरफ से पानी घेरे रहता है, उसमें अनुपात नमक का वही है, जो समुद्र में है। उसी से तो वैज्ञानिक पहली दफा इस ख्याल से पहुँचे, हो न हो किसी न किसी तरह आदमी कभी पहली दफा, उसका पहला जीवन समुद्र से शुरू हुआ होगा। आज भी उसके पास पानी का अनुपात वही है। आज भी बच्चा उसी पानी में तैरता और बड़ा होता है। आज भी हमारे शरीर में नमक का जरा सा अनुपात गिर जाय तो हम मुश्किल में पड़ जायेंगे। नमक का अनुपात वही रहना चाहिए, जो समुद्र में है! जब आप समुद्र के पास जाते हैं, तब आपके पूरे शरीर और पूरे व्यक्तित्व में समुद्र कोई सहानुभूति की लहरें उठा देता है। आप उसी के हिस्से हैं। आप कभी मछली थे। हम सब कभी मछली थे। उसके निकट जाकर हमारे भीतर वही लहरें उठ आती हैं।

जब पहाड़ पर जाते हैं और देखते हैं हरे वृक्षों के विस्तार को तो मन एकदम शान्त होता है। हरे विस्तार को देखकर एकदम आनंदित होता है। क्या बात है हरे रंग में? हमारे सारे खून में, हमारी सारी हड्डियों में वृक्षों से लिया हुआ सब कुछ घूम रहा है। हम उनसे ही बने हैं, हम उनसे ही जुड़े हैं।

जब ठंडी हवाओं की लहरें आती हैं और आप उन हवाओं में बहे चले जाते हैं, तो एक खुशी, एक प्रफुल्लता भर जाती है। क्यों? क्योंकि हवा हमारा प्राण है। हम जुड़े हैं, हम अलग नहीं हैं।

जब रात को पूर्णिमा के चाँद को आप देखते हैं तो कोई गीत आपके भीतर झरने लगते हैं और कोई कविता फूटने लगती है। अंग्रेजी में शब्द है लुनार, चाँद के लिए। और पागल को कहते हैं लुनाटिक। वह भी उसी से बना हुआ शब्द है। हिन्दी में भी कहते हैं पागल को चाँदमारा। ऐसा ख्याल है कि पूर्णिमा के दिन जितने लोग पागल होते हैं, किसी और दिन नहीं होते हैं। कुछ कारण है। पूर्णिमा का चाँद हमारे भीतर न मालूम कैसी लहरें ले आता है। समुद्र में ही लहरें नहीं आतीं, समुद्र ही ऊपर उठकर चाँद को छूने को चला जाता है, ऐसा नहीं है। हमारे प्राण भी

किन्हीं गहरी गहराइयों में, हमारे प्राणों की तरंगें भी चाँद को छूने को उठ जाती हैं। लेकिन चाँद से हमारा कोई नाता नहीं है, कोई रिस्ता नहीं है!

हमने सब तरफ से जिन्दगी को तोड़ लिया है। और अगर आदमी सब तरफ से जिन्दगी को तोड़ेगा और सिर्फ आदमियों की दुनिया बनायेगा, वह दुनिया उदास होगी, दुःखी होगी, वह दुनिया सच्ची नहीं होगी, क्योंकि वह दुनिया वास्तविक नहीं है। उसकी जड़ें पूरे ब्रह्माण्ड पर फैलनी चाहिए। मैं उस आदमी को धार्मिक कहता हूँ, जिसका संबन्ध आदमियों से ही नहीं है, जिसका संबन्ध सारे जीवन में फैल गया है। एक पशु के साथ भी उसका संबन्ध है, एक पौधे के साथ भी, एक पक्षी के साथ भी।

आकाश में भी देखा है कभी कोई परों पर तिरती हुई चील को? उसे देखते रहें तो ध्यान में चले जायेंगे। कैसा निष्प्रयास, इफर्टलेस एक चील आकाश में परों को फैला कर खड़ी रह जाती है। और बह जाती है हवाओं में। पर भी नहीं हिलाती और बही चली जाती है! कभी उसे गौर से देखते रहें तो भीतर कोई चील आपके भी पर फैला देगी और बह जायेगी।

जिन्दगी सब तरफ से जुड़ी है और आदमी ने उसे तोड़ दिया है। तोड़ी हुई जिन्दगी विक्षिप्त हो गयी है। इसलिए मैंने कहा, हम समाज नहीं बना पाये, हमने अजायबघर बना लिया है। समाज बनाने में अभी हम बहुत दूर हैं। हमने कठघरे बना लिये हैं, आदमी का प्रकृति से तोड़ दिया है, सब प्राकृतिक से तोड़ दिया है, भीतर भी, बाहर भी! नैसर्गिक से तोड़ दिया है और एक कृत्रिम और एक आर्टीफीसियल आदमी हमने खड़ा कर दिया है। वह आदमी बड़े धोखे का है। एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी करूँगा।

एक कवि एक गाँव के पास से गुजरता था, उसने खेत में एक झूठे आदमी को खड़ा हुआ देखा। आपने भी खेतों में झूठे आदमी देखे होंगे? अगर खेत देखे हों, तो वहाँ झूठा आदमी भी देखा होगा, क्योंकि अब तो

खेत देखना भी बड़ी मुश्किल बात हो गयी है। अभी लन्दन में बच्चों का एक सर्वे किया गया तो दस लाख बच्चों ने गाय नहीं देखी है। वे बच्चे पूछने लगे, गाय यानी क्या ? दस लाख बच्चों ने लन्दन में गाय नहीं देखी ! तीन लाख बच्चों ने कहा कि उन्होंने खेत नहीं देखा ! वह कवि खेत के पास से गुजर रहा है। वहाँ उसने एक झूठे आदमी को खड़ा देखा। उस कवि के मन में बड़ी दया आ गयी। वह उस झूठे आदमी के पास गया। हण्डीका सिर है, डण्डे लगे हैं, कुरता पहने है। उस कवि ने उस झूठे आदमी से पूछा, मित्र, खेत में खड़े-खड़े बड़े थक जाते होंगे, और काम भी बड़ा उबाने वाला है? वर्षा, सर्दी, रात, दिन, धूप, गर्मी, कुछ भी है, तुम यहीं खड़े रहते हो ! मैं कई बार निकला हूँ इस रास्ते से, तुम यहीं खड़े रहते हो ! ऊब नहीं जाते हो ? घबड़ा नहीं जाते हो ? कभी छुट्टी नहीं मनाते हो ?

उस झूठे आदमी ने कहा, बड़ा मजा है इस काम में। दूसरों को डराने में इतना मजा आता है कि अपनी तकलीफ पता ही नहीं चलती। रात-दिन डराता हूँ। कोई आ जाता है, फिर उसको डरा देता हूँ; फिर कोई आ जाता है, उसको डरा देता हूँ। इतना मजा है कि फुरसत ही नहीं मिलती दूसरों को डराने से कि मैं खुद अपनी चिन्ता करूँ। वह कवि सोचने लगा। उसने कहा, बात तो बड़ी ठीक कहते हो। मैं भी जब किसी को डरा पाता हूँ तो बड़ा आनन्द आता है। वह झूठा आदमी हँसने लगा, उसने कहा कि तब तुम भी झूठे आदमी हो, क्योंकि सिर्फ झूठे आदमियों को ही दूसरों को डराने में आनन्द आता है। तुम भी घास-फूस के आदमी हो तुम्हारे ऊपर भी हण्डी लगी है और डण्डे लगे हैं और कुरता पहन लिया है।

मैं सोचने लगा, झूठे आदमी और सच्चे आदमी में फर्क क्या है ? हण्डी लगी हो, डण्डे लगे हों, कुरता पहना हो—इसमें और मुझमें फर्क क्या है ?

फर्क इतना ही है कि यह अपने में बन्द है, इसकी कोई जड़ें जीवन से जुड़ी हुई नहीं हैं। इसकी कहीं श्वांस नहीं जुड़ी है। किसी आकाश से इसका मन नहीं जुड़ा है। किन्हीं वृक्षों से इसका खून नहीं जुड़ा है।

किन्हीं समुद्रों से इसका पानी नहीं जुड़ा है। इसके भीतर कोई जोड़ नहीं है बाहर से। यह सब तरफ से टूटा अपने में बन्द है। इसका कोई जोड़ ही नहीं है, इसीलिए यह झूठा है।

और सच्चे आदमी का क्या मतलब होता है ?

कि वह जुड़ा है, सबसे जुड़ा है—रग-रग, रेशा-रेशा, कण-कण जुड़ा है। सूरज से जुड़ा है, चाँद से जुड़ा है। समुद्रों से जुड़ा है, आकाश से जुड़ा है, सबसे जुड़ा है। जितना जो आदमी ज्यादा जुड़ा है, उतना सच्चा होगा और जितना ज्यादा टूटा है, उतना हण्डी रह जायेगी, लकड़ियाँ रह जायेगी, कुरता रह जायेगा।

और करीब-करीब आदमी झूठा हो गया है। सारी मनुष्यता हण्डी वाली, लकड़ी वाली, कुरते वाली मनुष्यता हो गयी है। वहाँ भीतर कोई आत्मा नहीं है, क्योंकि आत्मा तो अनन्त जोड़ से उत्पन्न होने वाली संभावना है। इस सम्बन्ध में कल आप से बात करूँगा।

सुबह जो मित्र ध्यान के लिए आते, हैं वह ठीक आठ बजे के पहले पहुँच जायं, स्नान करके और घर से ही चुप चलें, आँख बन्द करके चलें और वहाँ भी कोई बात न करें।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, इससे अनुग्रहीत हूँ, और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

———

ग्वालिया टैंक, बम्बई, २६ नवम्बर १९६९

४ : अरूप की झलक

मेरे प्रिय आत्मन्,

मैंने सुना है—किसी अज्ञात ग्रह पर निवास करने वाले लोग एक बड़े पागलपन से पीड़ित हैं। उस ग्रह के निवासियों को यह ख्याल पैदा हो गया है कि जमीन पर पैर रखकर खड़ा होना पाप है। वे अपने बच्चों को बचपन से ही शीर्षासन करना सिखा देते हैं, सिर के बल खड़ा होना सिखा देते हैं ! उन बच्चों के पैर चलने के योग्य नहीं रह जाते हैं। जीवन की जरूरतें कभी-कभी उन बच्चों को भी चलने को मजबूर करती हैं, क्योंकि सिर के बल चला नहीं जा सकता, सिर्फ खड़ा हुआ जा सकता है। मजबूरियों में उनके बच्चों को चलना पड़ता है, लेकिन तब उनके पैर बहुत लड़खड़ाते हैं। वे ज्यादा चल भी नहीं सकते, और सबसे बड़ी कठिनाई पैरों की कमजोरी से नहीं आती, इस बात से आती है कि चलते समय बच्चे समझते हैं कि वे कोई बड़ा जघन्य अपराध कर रहे हैं, पाप कर रहे हैं। चलते हैं तो पाप मालूम पड़ता है, सिर के बल खड़े रहें तो जीना मुश्किल हो जाता है। उस जाति में कुछ लोग ऐसे विशेषज्ञ हो गये हैं कि जीवन भर सिर के बल खड़े-खड़े ही बिता देते हैं ! शेष लोग उन्हें महात्मा मानते हैं और आदर देते हैं। लेकिन बाकी लोगों को कभी-कभी सिर के बल से नीचे उतरना पड़ता है, पैरों से चलना पड़ता है। रात में सोते समय शीर्षासन करना मुश्किल हो जाता है। दिन में खाना खाते समय भी, खेत में काम पर जाते समय भी शीर्षासन में रहना मुश्किल हो जाता है।

उस ग्रह पर दो तरह के प्राणियों की जातियाँ हो गयी हैं। एक वे लोग जो सोते समय शीर्षासन से नीचे उतर आते हैं, खेती करते समय पैर के बल चलते हैं, संसारी समझे जाते हैं। और दूसरे जो लोग चौबीस घंटे शीर्षासन में खड़े रहते हैं, संन्यासी समझे जाते हैं। जो सिर के बल

ही खड़े रहते हैं, वे तो पागल हो गये हैं, क्योंकि सिर के बल खड़ा रहना सिर में इतना खून पहुँचा देना है कि सिर की सब शिराएँ नष्ट हो जायेंगी। जो सिर के बल खड़े हुए हैं, उनका सिर धीरे-धीरे पैरों की स्थिति में आ गया है, उतना ही जड़ हो गया है। और जो सिर के बल नहीं खड़े हैं, वे भी पागल हो गये हैं, क्योंकि पूरे वक्त उन्हें ऐसा लगता है कि पैरों के बल खड़े होना जघन्य अपराध है और इसलिए नरक की अग्नि में पड़ना जरूरी हो गया है ! वे भी विक्षिप्त हो गये हैं।

जब मैंने यह बात सुनी थी, तो बहुत हैरान हुआ था। मैंने सोचा, ऐसा कोई ग्रह कहाँ हो सकता है ? लेकिन तब मुझे यह पता न था कि हमारी पृथ्वी ही वह ग्रह है। तब इस पृथ्वी के रहन-सहन के ढंग के संबंध में मेरी समझ कम थी। तो मैं सोचता था कि कहीं किसी चाँद-तारे पर वह ग्रह होगा, जहाँ लोग ऐसे पागल होंगे। लेकिन जब मैंने आदमी को पास देखा तो पाया कि हर आदमी शीर्षासन किये खड़ा है। यह पृथ्वी ही वह ग्रह है, जहाँ के सारे लोग पागल हो गये हैं। इस शीर्षासन करने की प्रवृत्ति ने ही सारे जीवन को विकृत, कुरूप, अपंग दुःख और पीड़ा से भर दिया है।

इस उल्टे होने की प्रक्रिया में हमने क्या-क्या किया है, उन-उन बिन्दुओं पर मैं आज बात करना चाहता हूँ। उल्टे होने की प्रक्रिया में जो नीचे होना चाहिए, उसे हमने ऊपर कर दिया है और जो ऊपर होना चाहिए, उसे नीचे कर दिया है। एक आदमी शीर्षासन करता है तो यही तो करता है ! सिर जो ऊपर होना चाहिए, नीचे कर देता है, पैर जो नीचे होने चाहिए, उन्हें ऊपर कर देता है। अगर हम उल्टा मकान बनायें, शीर्षासन करता हुआ, तो उसकी नींव ऊपर होगी और उसका शिखर नीचे होगा। अभी तक हमने ऐसा मकान बनाने की कोशिश नहीं की, क्योंकि हम जानते हैं कि वह निपट पागलपन है। लेकिन जिन्दगी हमने ऐसी बनाने की कोशिश की है, जिसे हमने उल्टी कर दिया है। आधार ऊपर कर दिये हैं और शिखर नीचे कर दिये हैं।

जिस दिन आदमी ने यह समझा कि मोक्ष पाने योग्य है और पृथ्वी

छोड़ देने योग्य है, जिस दिन आदमी ने यह समझा कि जीवन बुरा है और मृत्यु के बाद कोई अच्छा जीवन है, जिस दिन आदमी ने ऐसा समझा कि शरीर पाप है और आत्मा पुण्य है—उसी दिन आदमी के जीवन का भवन उल्टा हो गया। तब से हम बुनियाद को इनकार कर रहे हैं और शिखर का सम्मान कर रहे हैं। कोई शिखर बिना बुनियाद के खड़ा नहीं हो सकता। बड़े मजे की बात है, बुनियाद तो बिना शिखर के हो सकती है, लेकिन शिखर बिना बुनियाद के नहीं हो सकता। एक मकान हम बनायें और जमीन में सिर्फ बुनियाद डाल दें तो बुनियाद तो हो सकती है, लेकिन हम ऐसा नहीं कर सकते कि मन्दिर का सिर्फ शिखर बना दें और उसकी बुनियाद न हो। पृथ्वी तो बिना मोक्ष के हो सकती है, लेकिन मोक्ष बिना पृथ्वी के नहीं हो सकता। एक आदमी इस तरह जी सकता है कि आत्मा की उसे खबर ही न रह जाय, केवल शरीर में जी सके। लेकिन कोई भी आदमी केवल आत्मा में नहीं जी सकता, शरीर में ही जीना पड़ेगा।

जीवन में जो जितना श्रेष्ठ है, वह अपने से निकृष्ट पर निर्भर होता है। एक वीणा तो हो सकती है, जिसमें संगीत न बज रहा हो, अभी जिसके तार न छेड़े गये हों। ऐसी वीणा हो सकती है, जो सोयी हो, जिसके तार न छिड़ गये हों, जिसमें संगीत न बज रहा हो, लेकिन ऐसा संगीत नहीं हो सकता, जो बिना वीणा के हो और बज रहा हो।

जीवन में जो भी श्रेष्ठ है वह निकृष्ट पर खड़ा हुआ है, और इसलिए जिसे हम निकृष्ट कहते हैं, वह भी निकृष्ट नहीं है, क्योंकि श्रेष्ठ का वह आधार है। और श्रेष्ठ का आधार निकृष्ट कैसे हो सकता है? वीणा निकृष्ट कैसे हो सकती है? संगीत श्रेष्ठ कैसे हो सकता है? क्योंकि संगीत वीणा से ही पैदा होता है।

कल दो संन्यासी मुझसे मिलने आये थे। उन्होंने मुझसे कहा कि हमें ध्यान करना है, ध्यान सीखना है। तो मैंने उनसे पूछा कि पागल हो गये हो? संन्यासी कैसे हो गये बिना ध्यान किये? क्योंकि ध्यान से अगर संन्यास न आया हो तो संन्यास आ ही कैसे सकता है? यह तो बिना नींव के शिखर रखने की बात है। उन्होंने कहा, अब तो हो गया, लेकिन अब

हम सीखना चाहते हैं। हमे ध्यान सीखना है। मैंने उनसे कहा, कल सुबह आ जाओ ध्यान की बैठक में। तो उनमें से एक ने पूछा, वहाँ स्त्रियाँ तो न होंगी? मैंने कहा, क्या बिना स्त्रियों के नहीं आ सकोगे? उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं है, अगर स्त्रियाँ हों तो हम न आ सकेंगे, क्योंकि स्त्रियों को देखना पाप है। और अगर स्त्री का स्पर्श हो जाय, तब तो हमें उपवास करके प्रायश्चित करना होगा। मैंने उनसे पूछा कि तुम किसी स्त्री से पैदा हुए हो कि किसी पुरुष से पैदा हुए हो? और तुम्हारे खून में किसी स्त्री का खून बहता है, तुम्हारी हड्डियाँ किसी स्त्री की हड्डी से बनी है। तुम्हारा मांस कहाँ से आया है, तुम्हारी चमड़ी कहाँ से आयी है? तुम कहाँ से आये हो? और आज स्त्री को देखने से तुम्हें पाप लगता है, और स्त्री के छू लेने से तुम्हें प्रायश्चित करना होगा! और उनके शरीर में जो है, वह सब स्त्री से आया हुआ है।

ये शीर्षासन करते हुए लोग हैं, जो जिन्दगी की बुनियाद इनकार करना चाहते हैं, जहाँ जिन्दगी खड़ी है, उसे इनकार करना चाहते हैं। ये ऐसे लोग हैं, जो कहते हैं कि हम जड़ों को इनकार कर देंगे, क्योंकि जड़ें जमीन गड़ी हैं, अन्धेरे में पड़ी हैं, न मालूम जमीन गन्दी हो अन्धेरे में। और नरक की तरफ जड़ें जाती हैं और हम जड़ों को इनकार करते हैं। हम तो सिर्फ फूलों को स्वीकार करते हैं, जो वृक्षों में ऊपर लगते हैं, आकाश की तरफ उठते हैं, सूरज की तरफ खिलते हैं। हम तो सिर्फ फूलों को स्वीकार करते हैं, जड़ों को हम स्वीकार नहीं करते। लेकिन कोई फूल देखा है, जो बिना जड़ों के खिल गया हो? और अगर फूल जड़ों के बिना आते ही नहीं तो जड़ें निकृष्ट कैसे हो जायेंगी? सच तो यह है कि जड़ें उस अन्धेरे से जो इकट्ठा कर रही हैं, वही फूलों में जाकर प्रकट हो रहा है। जड़ें जो जमीन से खोज ला रही हैं, वही फूलों में आकाश की तरफ प्रकट हो रहा है। असल में फूल जड़ों के अंतिम छोर हैं। जड़ों ने कमाया है, मेहनत की है, फूलों में प्रकट किया है और सुरभि को लुटा दिया है।

लेकिन कुछ लोग हैं, जो कहेंगे कि जड़ें हमें बरदाश्त नहीं, क्योंकि जड़ें अन्धेरे में हैं, जमीन के नीचे हैं, नरक की तरफ जाती हैं। हम तो सिर्फ

फूल पसन्द करते हैं। जड़ों को काट डालो और फूलों को बचा लो। हो सकता है, जड़ें काट डाली जायँ तो फूल बच सकते हैं, लेकिन वे कागज के फूल होंगे या प्लास्टिक के होंगे, असली फूल नहीं होंगे। कागज के फूलों की जरूर कोई जड़ें नहीं होतीं। और अगर हम जिन्दगी को नीचे की जड़ों से उखाड़ लें, तो कागज के संन्यासी रह जायेंगे, असली संन्यासी नहीं। क्योंकि असली संन्यासी तो स्त्री से आता है। हाँ, कागजी संन्यासी सोच सकता है कि वह स्त्री से नहीं आया है। असली संन्यासी तो स्त्री के प्रति आदर से, सम्मान से भरा होता है। क्योंकि वह उसी की एक धारा है, लेकिन नकली संन्यासी क्रोध से, घृणा से और अपमान से भरा होगा, क्योंकि वह कागजी फूल है, जिसकी कोई जड़ें नहीं हैं। जड़ों को जो इनकार कर रहा है। क्या मनुष्यता ने अब तक अपनी ही जड़ों से इनकार नहीं किया है? हमने सब जड़ों से इनकार कर दिया है, सिर्फ ऊपर के फूलों को स्वीकार करते हैं। सारी मनुष्यता झूठी हो गयी है। शिखर रह गये हैं, बुनियादें खो गयी हैं। शरीर को इनकार कर दिया है, आत्मा को पकड़कर हम बैठ गये हैं! पृथ्वी से आँख हटा ली है, स्वर्ग और मोक्ष और दूर के लोगों पर आँखों को जमा दिया है। अगर कहीं कोई मोक्ष होगा तो यह पृथ्वी उसकी सीढ़ी है, और अगर कहीं कोई आत्मा है तो शरीर के द्वार के अतिरिक्त उसके मन्दिर में कोई प्रवेश न कभी हुआ है और न हो सकता है। यह असम्भव है। जीवन का अपना गणित है। उस गणित में हमें सब स्वीकार करना पड़ेगा, तभी हम सीधे खड़े हो सकते हैं।

हमने मनुष्य को इस उल्टाने में बहुत-से काम किये हैं—आज मैं पहला सूत्र आपसे कहना चाहता हूँ—वह यह है कि हम नीचे को, जड़ को इनकार कर देते हैं और ऊपर को, शिखर को स्वीकार कर लेते हैं। जब कि सारे शिखर नीचे की जड़ों से आते हैं, वे उन्हीं का फैलाव होते हैं। बहुत दिशाओं में हमने ऐसा किया है, उसका फल हम भोग रहे हैं। बहुत तरफ हमने ऐसा किया है, उसका निरन्तर कष्ट हम भोग रहे हैं।

अभी मैं एक गाँव में था, एक संन्यासी आये थे मिलने। आज एक स्त्री भी मुझसे मिलने आयी थी। उसके साथ बहुत मजेदार बातें हुईं।

वही बातें उस संन्यासी से हुईं। वह संन्यासी आकर बोले, संसार सब माया है, कुछ है नहीं। जब उन्होंने यह कहा, संसार सब माया है, कुछ है नहीं तो फिर मैंने सामने कुर्सी पड़ी थी, उनसे न कहा कि आप कुर्सी पर बैठ जायं, क्योंकि माया पर बैठाने में गिर जायँ तो झगड़ा है। मैं चुप ही रहा, वे खड़े रहे। मैंने उनसे कहा, कि आपको यहाँ अगर कोई बैठने योग्य चीज दिखाई पड़ती हो तो बैठ जायं, क्योंकि मैं बिठाऊँ और आप गिर जायँ—क्योंकि आप कहते हैं, सब माया है। इस कुर्सी पर बैठें और गिर जायँ तो झंझट मेरे ऊपर लग जाय तो आप खड़े ही रहें। मैंने उनसे पूछा कि थके-माँदे हैं, पानी पीयेंगे? तो उन्होंने कहा, प्यास तो बहुत लगी है। तो मैंने कहा, लेकिन पानी माया हो? और माया के पानी से कैसे प्यास बुझेगी? और अगर प्यास भी माया है तो बुझाने की कोशिश करना ही फिजूल है। मैंने पूछा, भोजन करते हैं? उन्होंने कहा, करता हूँ। मैंने कहा, बड़ी गड़बड़ बातें कर रहे हैं। एक तरह सब माया कहे चले जा रहे हैं और एक तरफ उसी माया के साथ जीना पड़ेगा चौबीस घण्टे! श्वास लेनी पड़ेगी उसी माया से, भोजन खोजने पड़ेंगे उसी माया से, मन्दिर-तीर्थ बनाने पड़ेंगे उसी माया से।

सब माया चलेगी, और ऊपर से इनकार चलेगा तो जीवन में खण्ड हो जायेंगे। जो आधार है, वह अस्वीकृत हो जायेगा, जो शिखर है, व स्वीकृत रह जायेगा। और तब बेईमानी पैदा होगी और पाखण्ड पैदा होगा, तब हिपोक्रेसी पैदा होगी। अब तक हमने पृथ्वी पर जो संस्कृति खड़ी की है, वह हिपोक्रेसी है, वह सब पाखण्ड है, क्योंकि उसने जीवन के पूरे सत्य को स्वीकार नहीं किया है। और जिस सत्य को अस्वीकार कर दिया है वह है।

आज एक महिला आयी। वह मुझसे पूछने लगी कि मुझे कुछ प्रश्न आपसे पूछने हैं। मैंने कहा, जरूर पूछें। उन्होंने कहा, मुझे ध्यान करना है, क्या करूँ? मैंने कहा, परमात्मा के प्रति समर्पण करें तो ध्यान आ जायेगा। उन्होंने कहा, कौन परमात्मा? मैं तो स्वयं ब्रह्म हूँ। मैंने कहा, जब स्वयं ब्रह्म हैं तो फिर पूछने किसलिए आयी हैं मेरे पास? उन्होंने कहा,

यह तो मेरी समझ में आ गया है कि मैं ब्रह्म हूँ, लेकिन एक प्रश्न रह गया है। मैंने कहा, ब्रह्म को भी प्रश्न रह जाता है ?

अब एक तरफ पकड़ा हुआ है कि मैं ब्रह्म हूँ, तो जिन्दगी जहाँ की तहाँ खड़ी है, जहाँ तब थी, जब ब्रह्म नहीं थीं। जिन्दगी के उलझाव वही हैं, परेशानियाँ वही हैं। जिन्दगी के कष्ट वही हैं, और यहाँ अब ब्रह्म होने का ख्याल भी पैदा हो गया है। तो हम आदमी को पागल करवा देंगे। हमने आदमी को पागल करवा दिया है। अब ऐसा नहीं है कि कुछ लोग पागलखानों में बन्द हैं। अब ऐसा है कि पूरी पृथ्वी ही पागलखाना हो गयी है। धीरे-धीरे हर आदमी पागल होता चला गया है। हो ही जायेगा, बिलकुल स्वाभाविक है।

उस ग्रह के लोग अगर पैर के बल चलते हैं, तो समझते हैं कि पाप हो रहा है, सिर के बल खड़े होते हैं तो समझते हैं पुण्य हो रहा है। तो अगर वहाँ सारे लोग पागल गये हों तो क्या आश्चर्य है ? हम सब भी उसी भाँति पागल हुए जा रहे हैं। हम सब पागल हो गये हैं। जीवन का कोई सत्य पूरा का पूरा स्वीकृत नहीं है। जैसा जीवन है, वैसा नहीं। हम काट-काट कर टुकड़ों में बँटकर स्वीकार करते हैं और ऊपर के हिस्से को बचा लेते हैं और नीचे के हिस्से को इनकार कर देते हैं, जब कि ऊपर के सब हिस्से नीचे के हिस्सों के सहारे खड़े होते हैं। उन्हीं से पैदा होते हैं, उन्हीं से विकसित होते हैं। वे उन्हीं का विस्तार हैं, उन्हीं का विकास हैं। आदमी को उल्टा करने में इस बात ने बड़ा सहारा दिया है।

मैं एक छोटी-सी एक जापानी गुड़िया देखता था। उसे फेंकिये, कैसा ही फेंकिये, वह सदा सीधी हो जाती है। एक भिक्षु हुआ बोधिधर्म। बोधिधर्म के ऊपर ही पहली दफा वह गुड़िया बनी। उस गुड़िया का नाम दारूमा है। बोधिधर्म का जापान में नाम है दारूमा। वह एक हिन्दू, भारतीय भिक्षु था। हिन्दुस्तान से गया था। उस गुड़िया का नाम भी दारूमा डोल, दारूमा गुड़िया है। उसे फेंकें तो, कैसे भी फेंके तो वह सदा सीधी हो जायेगी। उसके पेट में वजन है। उस वजन की वजह से सिर सदा ऊपर आ जाता है। कोई मित्र वह गुड़िया लाये थे। मैंने कहा,

यह गुड़िया तुम बहुत अच्छी लाये। एक-एक आदमी को यह गुड़िया दे दो। क्योंकि आदमी उल्टी हालत में हो गया है। उसे कैसा ही फेंको, वह कभी सीधा नहीं पड़ता है, हमेशा उल्टा पड़ता है, शीर्षासन कर जाता है ! यह गुड़िया बहुत अद्‌भुत है।

फिर मैंने पता लगाया कि गुड़िया बनायी क्यों गयी ? तो वह जो था बोधिधर्म, उसने यह कहा था कि आदमी ऐसा हो गया है कि कैसा भी पटको, वह उल्टा ही गिरेगा। वह कभी सीधा हो ही नहीं सकता ! और उस बोधिधर्म ने कहा था, मैं एक सीधा आदमी हूँ। मुझको तुम कैसा भी पटकोगे, मैं सीधा ही गिरूँगा। क्योंकि मैं जीवन के उस रहस्य को समझ गया हूँ कि जो नीचे है वह नीचे है और जो ऊपर है वह ऊपर है। और मैंने नीचे को पूरा वजन दिया है, इसलिए ऊपर का शिखर सदा ऊपर आ जाता है। उसके कथन के अनुसार वह गुड़िया बनायी गयी है।

अपने-अपने घर में वह गुड़िया आपको खरीद कर रख लेनी चाहिए और रोज सुबह घर से निकलने के पहले गुड़िया को देख लेना चाहिए कि वह हर बार सीधी हो जाती है ! उसके सीधे होने का राज यह है कि उसका बेस वजनी है, उसकी बुनियाद वजनी है। और उसका सिर हल्का है। हमारा सिर भारी है और बेस बिलकुल ही वजनी नहीं है ! हम कैसे भी गिरेंगे, हम उल्टे गिरेंगे, सिर के बल गिरेंगे।

इसलिए दूसरा सूत्र मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आदमी का सिर भारी हो गया है। आदमी ने सारे जीवन को खोपड़ी में निर्भर कर लिया है और सब शरीर से खींच लिया है। सारा जीवन खोपड़ी में आ गया है ! हाथ में अब कोई जीवन नहीं है। जब आप किसी से हाथ मिलाते हैं तो आपके हाथ से कोई प्रेम उसकी तरफ नहीं बहता। सिर्फ आप सोचते हैं कि बड़े प्रेम से हाथ मिला रहे हैं। लेकिन हाथ से कोई प्रेम बहता नहीं है ! सिर्फ विचार में रहता है कि हाँ, प्रेम कर रहे हैं, इसलिए हाथ मिला रहे हैं। जब आप हाथ जोड़ते हैं, तब आप कल्पना में सोचते हैं कि बड़ा आदर कर रहे हैं, इसलिए हाथ जोड़ रहे हैं, लेकिन हाथों से आदर की किरणें बाहर नहीं जातीं। सारे शरीर से जीवन सिकुड़ कर

खोपड़ी में बैठ गया है। आदमी खोपड़ी में जी रहा है और इसलिए उल्टा होना अनिवार्य हो गया है। वह कैसे भी गिरेगा, उल्टा हो जायेगा। असल में वह उल्टा ही है, गिरे या न गिरे। सिर वजनी है, शेष सब हल्का हो गया है!

इसलिए कहना चाहता हूँ कि जीवन पूरे शरीर में बँट जाना चाहिए, सम भागों में वितरित हो जाना चाहिए। जीवन सिर ही में नहीं है, लेकिन हम सब काम सिर से कर रहे हैं। अगर हम प्रेम करते हैं तो वह भी विचार कर करते हैं। अगर हम प्रेम करने जाते हैं तो भी पता लगा लेते हैं कि जिससे प्रेम कर रहे हैं, वह हिन्दू तो है न मुसलमान तो नहीं है। अब हृदय के जगत में न कोई हिन्दू होता है, न कोई मुसमान होता है। हम प्रेम करते हैं तो हम पता लगा लेते हैं कि कुछ पैसा पास में है या नहीं! अब हृदय का तो पैसे से कोई संबंध है नहीं। लेकिन खोपड़ी पैसे का हिसाब रखना चाहती है। वह पक्का पता लगा लेना चाहती है कि पैसे का इन्तजाम कितना है! हिन्दू है, मुसलमान है, कि क्या है, क्या नहीं है, यह सारा मालूम हो जाना चाहिए!

अब तो अमेरिका में कंप्यूटर्स बना लिए गये हैं कि एक लड़का और एक लड़की अगर विवाह करना चाहते हैं, तो वे दोनों अपने-अपने संबंध में जानकारी कंप्यूटर में डाल दें तो कंप्यूटर उन्हें खबर दे देगा कि प्रेम करो या न करो। विवाह करो या न करो—क्योंकि कंप्यूटर हिसाब लगा कर बता देगा कि ठीक रहेगा कि नहीं! यह आखिरी बुद्धि की दौड़ है, जहाँ हम विचार से, मशीन से यह तय करवायेंगे कि प्रेम करना है या नहीं करना है। कंप्यूटर बता देगा कि तुम दोनों के बीच ताल मेल बैठेगा या नहीं बैठेगा। यह विवाह ठीक रहेगा कि नहीं! हम प्रेम भी विचार करके ही कर सकते हैं! हद हो गयी! प्रेम का विचार से कोई संबंध नहीं है। सच तो यह है कि हमने जीवन के बहुत-से हिस्सों को खींचकर सिर्फ खोपड़ी में केन्द्रित कर लिया है। इसलिए हमारी खोपड़ी बहुत भारी हो गयी है। रोज भारी होती चली जा रही है।

छोटे बच्चों से अगर चित्र बनवायें तो वे बहुत अद्भुत चित्र बनाते हैं; वे आदमी के सच्चे चित्र होते हैं, वैसे चित्र बड़े-बड़े चित्रकार भी नहीं बनाते हैं। छोटा बच्चा खोपड़ी बहुत बड़ी बनायेगा। और टांगे वगैरह छोटी लकीरों की तरह खींच देगा, हाथ लगा देगा—खोपड़ी बहुत भारी बना देगा! ऐसा मालूम होता है कि बच्चों को कुछ समझ आ गयी है कि आदमी की असली तसवीर क्या है।

अगर हम भी अपनी जिन्दगी में खोजने जायेंगे, तो आप किस ढंग से जिये हैं—आप पूरे जिये हैं, पूरे शरीर से? या आपने सिर्फ विचार से जीने की कोशिश की है? पिता के पैर दबाते हैं, उसमें भी प्रेम और हृदय नहीं है! उसमें भी यह सोचकर कि पिता हैं, इसलिए कर्तव्य है, पैर दबाने चाहिए! बुद्धि कहती है, कर्तव्य है, इसलिए माँ की सेवा कर दो। हृदय कर्तव्य जानता ही नहीं, क्योंकि कर्तव्य बहुत बेहूदा शब्द है। जहाँ ड्यूटी है, वहाँ प्रेम है ही नहीं। जिस आदमी ने भी कहा है, यह मेरी ड्यूटी है, यह मेरा कर्तव्य है, इसलिए मैं पिता के पैर दबा रहा हूँ, उस आदमी ने कभी पिता को प्रेम किया ही नहीं। वह बुद्धि से हिसाब लगा रहा है कि चूंकि इस आदमी ने हमको पैदा किया है, इसलिए हमें इस आदमी के पैर दबाने हैं। यह हिसाब की, गणित की बात है। इस स्त्री ने हमें पैदा किया है और नौ महीने पेट में रखा है, इसलिए हम इसके बुढ़ापे में सहायता कर रहे हैं! और न केवल यह बेटा ऐसा कह रहा है, माँ भी अपने बेटे से यह कह रही है कि मैंने तुझे नौ महीने पेट में रखा है, इतना बड़ा किया है, अब तू मेरी सेवा नहीं कर रहा है! वह भी गणित बता रही है। वह भी गणित फैला रही है, वह भी हृदय की बात नहीं है। हृदय गणित जानता ही नहीं।

हम पूरी जिन्दगी गणित से जी रहे हैं। सारी जिन्दगी सिकुड़ कर खोपड़ी के भीतर आ गयी है। इसलिए खोपड़ी वजनी हो गयी है। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम बहुत अशान्त हैं। और उनकी अशांति का कुल कारण इतना है कि जीवन जो कि फैला हुआ होना चाहिए पूरे व्यक्तित्व में, वह सिकुड़ कर एक जगह आ जाय तो अशांति ही हो जयेगी।

लोग कहते हैं हम बहुत टेंस हैं, चित्त बहुत तनाव से भरा है—कैसे हल्के हों ? वे हल्के कैसे होंगे ? और वे कहते हैं कि चित्त तनाव से भरा है, इसलिए हम गीता पढ़ रहे, हैं, कुरान पढ़ रहे हैं, फलाँ गुरु के पास जा रहे हैं—यह पढ़ रहे हैं, वह पढ़ रहे हैं ! ये हिसाब लगा रहे हैं। वे चित्त को और भारी करते चले जा रहे हैं ! क्योंकि चित्त भारी इसलिए है कि हमने जीवन को सिकोड़कर वहाँ अन्दर बन्द कर लिया है।

अभी एक परिवार में मैं ठहरा था। उस परिवार में कुछ दिन पूर्व पिता की मृत्यु हो गयी है। घर के लोग बड़े पढ़े-लिखे हैं। लड़कियाँ योरोप में पढ़ कर आयी हैं, सब लड़के बाहर पढ़े हैं। कोई डाक्टर है, कोई वकील है, कोई कुछ और है, कोई कुछ और है। लड़कियाँ, बहुएँ भी पढ़ी-लिखी हैं। वे रोये नहीं पिता के मर जाने के बाद। क्योंकि उन्होंने कहा, रोना अशोभन है, असंस्कृत है, ग्रामीण है। यह कोई ढंग की बात नहीं है। जो मर गया मर गया, रोने की क्या बात है ? जो घर में ज्ञानी हैं, उन्होंने कहा कि मर ही जाते हैं। जो और ज्यादा ज्ञानी हैं, उन्होंने कहा, आत्मा तो अमर है, रोने की कोई जरूरत नहीं है ! अब उन सबने अपने रोने को रोक लिया है। मैं उनके घर में गया तो मैंने देखा वहाँ बड़ा तनाव है। उस घर की एक बहू ने मुझसे कहा कि हम बहुत परेशानी में पड़े हुए हैं। मन तो रोने का होता है, लेकिन बुद्धि कहती है, रोने से क्या फायदा ? मन तो रोने को होता है, लेकिन बुद्धि कहती है क्या बेहूदी बात है ? रोने से क्या मरा हुआ आदमी वापस लौट सकता है ?

बुद्धि रोक रही है, रोने भी नहीं दे रही है ! अब वे आँसू भीतर घने हो गये। अब प्राण संकट में पड़ गये। जो काम हृदय से होना चाहिए, वह बुद्धि से लिया जा रहा है। बुद्धि भारी हो जायेगी और कठिनाई में डाल देगी। आँसू इकट्ठे हो जायेंगे, और कोई बहाना लेकर निकलना चाहिए, क्योंकि वे भर गये हैं, उनका निकलना जरूरी है। जब बादल भर जाय तो उसका बरसना जरूरी है। लेकिन बुद्धि अटकाव डाल रही है ! वह कहती है कि रोने से क्या होगा !

मैंने उस स्त्री को एक कहानी सुनाई। एक फकीर था, उसका गुरु मर

गया। उस फकीर के संबंध में यह प्रसिद्ध था कि वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया है जब उसका गुरु मर गया तो लाखों लोग देखने आये। वह फकीर अपने द्वार पर छाती पीटकर रो रहा था ! उसकी आँखों से आँसुओं की धार लगी थी। लोगों ने उससे कहा कि आप रो रहे हैं? हम तो सोचते थे, आप परम ज्ञान को उपलब्ध हो गये। उस फकीर ने कहा, और परम ज्ञान में रोना नहीं होता है, यह तुमसे किसने कहा ? और अगर परम ज्ञान में रोना न होता हो, तो हम परम ज्ञान छोड़ते हैं, लेकिन रोना नहीं छोड़ सकते। ऐसे परम ज्ञान से हम हाथ जोड़ते हैं, जिसमें रोना भी सम्भव न हो। उन्होंने कहा, कुछ तो ख्याल रखो, लोग क्या सोचेंगे ? लोग सोचते थे कि तुमने पता लगा लिया है कि आत्मा अमर है, अब तुम रो रहे हो ! तुम तो खुद ही कहते थे कि आत्मा अमर है, सब व्यर्थ है। फकीर ने कहा, मैं आत्मा के लिए रो ही नहीं रहा, मैं तो शरीर के लिए रो रहा हूँ। जो अब दुबारा कभी नहीं आयेगा। वह शरीर भी बड़ा प्यारा था, मैं तो उसके लिए ही रो रहा हूँ। उन्होंने कहा, पागल हो गये हो, शरीर के लिए रोते हो ! शरीर के लिए क्या रोना ? उस फकीर ने कहा, मैं कोई हिसाब लगाकर नहीं रो रहा हूँ। रोना आ रहा है, और मैं रो रहा हूँ, और मैं हिसाब लगाने से इनकार करता हूँ।

लेकिन हम सबने हिसाब लगा लिया है। हम हँसते हैं तो हिसाब लगाकर हँसते हैं। और कितने इंच हँसना है उस मौके पर, उसका हम हिसाब रखते हैं ! कितना रोना है, उसका भी हिसाब रखते हैं। कब रोना है, कब नहीं रोना है, उसका हिसाब रखते हैं। क्या हमने सारा का सारा सिर पर ही नहीं थोप दिया है ? जो भी व्यक्तित्व का हिस्सा था, वह सब सिर में आ गया है।

अभी मैं एक किताब देख रहा था। एक बहुत समझदार आदमी ने, लेकिन बड़े ना समझ, क्योंकि समझदारों से ज्यादा नासमझ खोजना बहुत मुश्किल है। एक समझदार आदमी ने वह किताब लिखी है। उसने लिखा है कि एक्सरसाइज करने की कोई जरूरत ही नहीं है क्योंकि लोगों को फुर्सत नहीं है कि व्यायाम कर सकें। उसने एक बहुत अच्छी तरकीब

बतायी है कि आँख बन्द करके लेट जाओ और कल्पना करो कि तेजी से दौड़ रहे हो ! दौड़ो मत । सिर्फ कल्पना करो । इतनी तेजी से दौड़ो कि पसीना निकलना शुरू हो जाय और दौड़ते रहो, दौड़ते रहो ! लेटे रहो कुर्सी पर और कल्पना में दौड़ते रहो । उसका दावा है कि एक्सरसाइज हो जायेगी ! एक्सरसाइज हो जायेगी—शरीर की नहीं लेकिन खोपड़ी की हो जायेगी । और जरूरत है शरीर की एक्सरसाइज की । खोपड़ी की एक्सरसाइज वैसे ही काफी हो रही है । उसकी जरा एक्सरसाइज कम हो इसकी जरूरत है ।

हम सारे व्यक्तित्व को सिकोड़ कर एक विन्दु पर ले आये हैं । पूरा शरीर करीब-करीब फिजूल हो गया है । इसलिए आप ख्याल करें, अगर मैं आपसे कहूँ कि आपका पैर काट डालें तो आप कट जायेंगे ? आप कहेंगे, नहीं, पैर के कटने से मैं नहीं कटूँगा । हाथ काट डालें, आप कट जायेंगे ? आप कहेंगे नहीं, हाथ के कटने से मैं नहीं कटूँगा । लेकिन कोई कहेगा, आपका सिर काट डालें तो आप कहेंगे ? फिर तो मैं कट जाऊँगा, ऐसा मालूम होता है । केन्द्र, आपने सिर्फ सिर में बना लिया है अपना । सारा बीइंग, सारी आत्मा सिर में ही इकट्ठी हो गयी है । बाकी यह पूरा का पूरा व्यक्तित्व निर्जीव हो गया है । इसमें कोई आत्मा नहीं रह गयी है । पैर कटने से नहीं कटते हैं आप, लेकिन सिर कटने से कट जाते हैं ।

आदमी उल्टा हो गया है, सिर पर भार पड़ने की वजह से आदमी ने शीर्षासन कर लिया है, और हम रोज यह भार बढ़ाये चले जा रहे हैं । बच्चों को हम स्कूल में भेजते हैं तो सिर्फ सिर उनका भारी करके वापस लौट आते हैं । उन्हें और कुछ भी सीखने को नहीं मिल पाता । वे न तो वहाँ प्रेम करना सीखते हैं, न क्रोध करना सीखते हैं । न वे जिन्दगी के कोई और राज सीखते हैं । वे सिर्फ वहाँ सिर को भारी करके लौट आते हैं । वे उतना सीख लेते हैं जो सिर में भरा जा सके और उनके दिमाग कंप्यूटर की मशीनें हो जाते हैं और वापस लौट आते हैं । शरीर का सारा खून सिकुड़ कर सिर में चला जाता है । सब शरीर की ताकत सिकुड़कर

सिर में चली जाती है । और सब तरफ से ताकत खिंच जाय तो सारा व्यक्तित्व अपंग और कुरूप हो जाता है ।

क्या आप को ख्याल है, जब आप खाना खाते हैं तो नींद क्यों आने लगती है ? सिर्फ इसीलिए नींद आने लगती है कि खाना खाते ही शरीर की ताकत की जरूरत पेट को हो जाती है । पेट सारी शक्ति को अपने पास बुला लेता है । इसलिए सिर सोने की हालत में आ जाता है, क्योंकि अगर सिर जगा रहे तो वह अपना काम जारी रखेगा । इसलिए झपकी आने लगती है । झपकी आने का मतलब यह है कि पेट यह कह रहा है कि अब तुम अपना काम बन्द कर दो, हमें पाचन का काम पूरा कर लेने दो । इसलिए खाना खा लेने के बाद नींद आने लगती है इसका कुल कारण इतना है कि शक्ति सीमित है और पेट को जरूरत है, अभी सिर को जरूरत नहीं है । लेकिन हम खाना खाने के बाद भी सिर से काम लिये चले जाते हैं । और अब तो सोना भी बहुत मुश्किल है, सोने में भी हम सिर से काम लिये चले जाते हैं । रात भर सिर से काम चल रहा है, सब अस्त-व्यस्त हो गया है ।

मैंने सुना है—एक वैज्ञानिक कुछ प्रयोग कर रहा था । एक बिल्ली को उसने खाना दिया है और एक्स-रे की मशीन लगा कर वह देख रहा है कि बिल्ली के पेट में क्या हो रहा है । खाना भीतर गया है, रस छूटे हैं, खाने को पचाने का काम शुरू हो गया है । तभी वह एक कुत्ते को भी कमरे में ले आया है । कुत्ते को देखते ही बिल्ली का मस्तिष्क भारी हो गया । क्योंकि कुत्ते को देखना पेट से तो हो नहीं सकता । कुत्ते को देखना तो होता है सिर से । उसका सिर भारी हो गया । बिल्ली सिकुड़ गयी । उसके पेट की सब आतें सिकुड़ गयीं और उन्होंने रस छोड़ना बन्द कर दिया । भोजन पड़ा रह गया । क्योंकि अब भोजन करने की सुविधा शरीर को न रही । अब शरीर की सारी शक्ति सिर में चली गयी । कुत्ता मौजूद है, कोई भी खतरा हो सकता है । कुत्ते को एक मिनट के बाद हटा लिया गया, लेकिन बिल्ली के पेट को वापस सक्रिय होने में छः घण्टे लग गये । तब तक भोजन पूरा ठण्डा हो गया । तब रस छूटे, तो उसको पचाने में

असमर्थ हो गये। इस बिल्ली के साथ निरन्तर तीन महने तक ऐसा प्रयोग किया गया। उसके पेट में अल्सर हो गया। हो ही जायेंगे। भोजन जब ठण्डा हो जायेगा और न पचाया जायेगा और रस बेवक्त छूटेंगे तो पेट में घाव हो ही जायेंगे। अब बिल्ली को अल्सर हो गया है, क्योंकि उसका मस्तिष्क पूरे वक्त तनावग्रस्त रहने लगा है। अगर हमारे पेट अल्सर से भर गये हैं, हजार तरह की बीमारियों से, तो उन बीमारियों का नब्बे प्रतिशत कारण तो यह है कि मस्तिष्क पूरी शक्ति खींचे ले रहा है। वह कोई ताकत छोड़ता ही नहीं। शरीर के किसी हिस्से के लिए कोई ताकत नहीं छोड़ रहा है। वह जीवन के किसी दूसरे आयाम में शक्ति को जाने ही नहीं देता है। सारी शक्ति वहीं खींच ली गयी है। सिर भारी होगा ही। सिर भारी हो जायेगा तो आदमी का व्यक्तित्व उल्टा हो जायेगा।

हमें जिन्दगी को कुछ और शिक्षण भी देने चाहिए जो सिर पर ही केन्द्रित न करते हों। हमें कुछ और बातें भी सीखनी चाहिए जो शरीर को व्यक्तित्व में बाँधती हों, सब अंगों में पहुँचा देती हों। आत्मा सिर में ही न रह जाय, कण-कण में हो जानी चाहिए। रोयें-रोयें में आत्मा प्रविष्ट हो जानी चाहिए। और अगर किसी व्यक्ति के पूरे जीवन में आत्मा प्रविष्ट हो जाय, तो उसका हाथ भी छुयेंगे तो आत्मा का पता चलेगा। उसका पैर भी छुयेंगे तो आत्मा का पता चलेगा। उसके पूरे शरीर के अणु-अणु में उसकी आत्मा का फैलाव होगा, उसकी आत्मा सिकुड़ नहीं गयी होगी। और तब वह यह नहीं कहेगा कि मैं पैर नहीं हूँ, मैं सिर हूँ। वह कहेगा, मैं यह सब हूँ, इन सबका जोड़ मैं हूँ। और इस पूरे जोड़ को वह जीयेगा। लेकिन हम इस तरह कभी जीये नहीं।

कभी आपने ख्याल किया है कि आप पैर धो रहे हैं, तो इस तरह से धोया हो कि पैर में भी कोई आत्मा है? कभी आप हाथ धो रहे हैं पानी से तो कभी आपने पानी का पूरा आनन्द हाथों को लेने दिया है? नहीं, जब आप हाथ धो रहे हैं तब पानी से तो हाथों को हाथों का कोई आनन्द मिलने का सवाल नहीं है। तब भी आपकी खोपड़ी अपना काम कर रही है। हाथ तो मशीन की तरह धुल जायेंगे और आप हट जायेंगे। कभी

आपने स्नान करते वक्त पूरे शरीर को आनन्द लेने दिया है? हमें कहाँ फुर्सत है, पूरे शरीर को धो डालेंगे किसी तरह। पानी गिर जायेगा उसके ऊपर, साबुन भी लगेगी, साबुन भी बह जायेगी और आप अपनी खोपड़ी से पूरे वक्त काम करते रहेंगे। आप स्नान करके लौट आयेंगे, लेकिन शरीर स्नान के आनन्द को अनुभव नहीं कर पायेगा। कल जरा प्रयोग करके देखें। जब स्नान कर रहे हों तो पूरे शरीर को पानी के स्पर्श का आनन्द लेने दें और पानी की ताजगी को पूरे शरीर को छूने दें। शरीर के रोयें-रोयें को स्नान करने दें और कृपा करके थोड़ी देर के लिए खोपड़ी को छुट्टी दे दें। थोड़ी देर के लिए पूरे शरीर में फैल जायँ और खोपड़ी से कहें, तुम्हीं नहीं हो, यह पूरा शरीर मैं हूँ। इस पूरे शरीर में मैं हूँ। और तब आप नहाने से एक नयी ताजगी लेकर निकलेंगे, जो कभी लेकर नहीं निकले। जब भोजन करें तब पूरे शरीर को भोजन का आनन्द लेने दें। और जब घूमने जायँ तो पूरे शरीर को हवाओं का आनन्द लेने दें। और जब किसी को प्रेम करें तो उसके पूरे शरीर को अपने हृदय से लगा लें। पूरे शरीर में जीने की कोशिश करें। खोपड़ी में मत जीयें।

शरीर का पुनर्जन्म जरूरी है। शरीर हमारा बिल्कुल ही समाप्त हो गया है। एक हिस्सा भर जी रहा है। और इसलिए सारा तनाव वहाँ इकट्ठा हो गया है। और इस तरह के तनाव हो गये हैं कि जिनकी हम कल्पना नहीं कर सकते हैं। जहाँ-जहाँ से हमने जीना बन्द कर दिया है, सिर को ही वह जीने का काम करना पड़ रहा है। आदमी की सारी सेक्सुअलटी, सारी कामुकता सिर पर चली गयी है। जो कि बड़ी बेहूदी बात है। अगर जानवरों से हमारी कोई बातचीत हो सके तो वे बड़े हैरान होंगे। वे कहेंगे कि क्या मामला है सब कुछ सिकुड़ कर सिर में आ गया है। आदमी की कामवासना भी सिर में आ गयी है। भोजन भी सिर में आ गया है। जब आप भोजन करते हैं, तब आपको उतना रस नहीं आता, जितना आप कुर्सी पर बैठ कर भोजन करने का विचार करते हैं। कभी आपने इसके फर्क का ख्याल किया है? जिस मित्र से मिलने के लिए आप इतने आतुर होते हैं, उससे मिल कर उतना आनन्द नहीं आता, जितना

मिलने का विचार करने से आनन्द आता है। यह बड़ी अजीब बात है। जिस स्त्री से आप प्रेम करते हैं, जितना इस आशा में कि कभी वह मिल जाय, इसकी कल्पना और विचार करने में जितना आनन्द आता है, वह स्त्री मिल जाय तो एकदम सब फीका पड़ जाता है। फिर वह आनन्द नहीं आता है। क्या बात है? जीना कम आनन्दपूर्ण और विचार करना ज्यादा आनन्दपूर्ण हो गया है? इसे देखेंगे तो ख्याल में आ जायेगी यह बात।

एक बड़ी लम्बी कार को गुजरते हुए आप देखते हैं और आपके मन को कितना आनन्द आता है कि कभी यह कार मिल जाय तो कितना आनन्दित मैं हो जाऊँगा। और मन में कितनी बार इस कार में आप बैठ लिये, क्योंकि उस असली कार में जो आदमी बैठे हैं उनको फिर बैठने में कोई आनन्द आ ही नहीं रहा, और कल अगर आप भी बैठ गये तो आपको भी आने वाला नहीं है। क्योंकि जिन्दगी से हमने आनन्द लेना बन्द कर दिया है। हम सिर्फ विचार करने में ही आनन्द लेते हैं! इसलिए जिन चीजों में हमें निरन्तर विचार ही करना पड़ता है और जो हमें कभी मिलती नहीं, उनमें हम ज्यादा आनन्द लेते हैं। और जो हमें मिल जाती हैं, उनमें आनन्द लेना मुश्किल हो जाता है।

मैंने सुना है—एक पागलखाने में दो पागल बन्द हैं। दोनों मित्र हैं। दोनों एक युनिवर्सिटी के प्रोफेसर हैं। उनका एक तीसरा प्रोफेसर मित्र उन्हें देखने पागलखाने गया। एक कोठरी के पास पहुँच कर उसने पागलखाने में सुपरिन्टेंडेंट से पूछा कि इसके पागल हो जाने का कारण क्या है, इस मेरे मित्र का? मैं दो साल देश के बाहर गया था। यह पागल क्यों हो गया है? उसने कहा, बड़ी अजीब बात है। यह एक स्त्री को पाना चाहता था। और नहीं पा सका, इसलिए पागल हो गया। लेकिन, वह बड़ा आनंदित था। उसने अपनी दीवालों पर कोयले से उस स्त्री के चित्र बना रखे थे। वह एक तसवीर अपनी छाती से लगाये हुए बैठा था, और बड़ा प्रसन्न था और गीत गुनगुना रहा था! सुपरिंटेंडेंट ने कहा कि यह स्त्री इसको मिल नहीं सकी है, इसलिए यह पागल हो गया है। लेकिन

इसके मित्र ने कहा, प्रसन्न बहुत है। उसने कहा, प्रसन्न इसीलिए है कि वह मिल नहीं सकी।

दूसरे कटघरे में ले गया, वहाँ दूसरा मित्र बन्द था। सुपरिन्टेंडेंट से आगन्तुक मित्र ने पूछा, यह क्यों पागल हो गये हैं? उसने कहा, यह और हैरानी की बात है, जो स्त्री उसको नहीं मिल सकी, वह स्त्री इनको मिल गयी है इसलिये यह पागल हो गये हैं। लेकिन वे सिर के बाल नोच रहे थे, और सींखचों से सिर मार रहे थे। एक को वही स्त्री नहीं मिल पायी है, इसलिए पागल हो गये हैं, लेकिन उनके पागलपन में भी एक रस और आनन्द है। क्योंकि अभी वह कल्पना में उस स्त्री से मिलते रहते हैं। अभी वे विचार में मिल रहे हैं, चित्र उसका छाती से लगाये हुए हैं, जिन्हें प्रेमिकाएँ नहीं मिल पातीं हैं, इस पागल दुनिया में, वे बड़े धन्यभागी हैं। और जिन्हें प्रेमिकाएँ मिल जाती हैं, इस पागल दुनिया में, उनकी मुसीबत का कोई ठिकाना नहीं है! वह अपने बाल नोंच रहे हैं, क्योंकि उनको वह स्त्री मिल गयी है! अब कल्पना और विचार करने को भी कुछ न बचा।

कैसी अजीब बात है कि जीवन इतना दुःखद और विचार इतना सुखद है। होना उल्टा चाहिए—विचार फीका होना चाहिए, जिन्दगी घनी और सघन होनी चाहिए। लेकिन हो ऐसा गया है कि आप जो सोचते हैं—वह ज्यादा आनन्दपूर्ण मालूम पड़ता है। एक होटल में भागे चले जा रहे हैं कि यह खाना खाऊंगा, यह खाना खाऊँगा, तब आप बड़े आनंदित मालूम पड़ते हैं। लेकिन खाना खाने की टेबल पर बैठकर आप के चेहरे से सब आनन्द उड़ जाता है। हो सकता है उस वक्त आप कल किसी दूसरे होटल में खाना खायेंगे, उसके विचार में आनन्द ले रहे हों। लेकिन आप जो खाना खा रहे हैं, वह आनन्द विदा हो गया।

अभी मेरे साथ कुछ मित्र काश्मीर गये थे। उनमें से एक से मैंने कहा, क्योंकि बहुत बार उन्होंने कहा, वह राजधानी में रहते हैं, बहुत बार वह मुझसे कहते थे, आपके साथ चलना है, पहाड़ पर। पहलगाम चलना है, डल झील पर चलना है, काश्मीर चलना है, बड़ा आनन्द आयेगा। और जब भी

वे बातें करते थे, तब उनकी आँखों में आनन्द की एक झलक आ जाती थी। बीस दिन तक वे मेरे साथ वहाँ थे डल झील पर। लेकिन मैंने डल झील की कोई झलक उनकी आँख में देखी नहीं! पहलगाम में था, लेकिन पहलगाम का कोई सौंदर्य उनको छुआ हो, यह मैंने नहीं देखा! बीस दिन बाद जब वह लौट कर दिल्ली आ गये, तब उन्होंने कहा कि बड़ी सुन्दर जगह है, बड़ा आनन्द आया! मैंने कहा कि मुझे हैरान मत करो, क्योंकि बीस दिन तुम्हारे साथ था, मैंने कभी एक बार नहीं सुना कि तुमने एक बार कहा हो, कि किसी वृक्ष के पास जाकर तुमने उसे गले भेंट लिया हो। कि तुमने किसी वृक्ष को, पेड़ को, हाथ फेरकर स्पर्श किया हो, कि तुमने किसी पत्थर से दोस्ती की हो, कि तुम किसी झरने में हाथ या पैर डाल कर थोड़ी देर तक बैठ गये हो। मैंने तो अनुभव ही नहीं किया कि तुमने वहाँ कभी थोड़ा भी रस लिया हो! हाँ, पहले तुम जरूर रस लेते थे। अब तुम फिर कह रहे हो कि वहाँ बड़ा आनन्द है!

क्या हम सबकी जिन्दगी में यही नहीं घट रहा है? हम सबकी जिन्दगी में यही घटित हो रहा है। इसका कारण कुल इतना है कि हमने सिर से जीना शुरू कर दिया है। पूरे शरीर, पूरे व्यक्तित्व और पूरी आत्मा से नहीं। आदमी उल्टा हो गया है। सारी मनुष्यता उल्टी हो गयी है अगर इस मनुष्यता को ठीक करना है तो इस पर सबसे बड़ी करुणा यह होगी कि हम आदमी को सीधा होने में सहयोगी बनें। सबसे बड़ी क्रांति यह होगी कि आदमी सिर से न जीये, पूरे शरीर और पूरे व्यक्तित्व से जीने लगे। उसका जीवन सब तरफ फैल जाय। हमें अन्दाज भी नहीं है, ख्याल भी नहीं है कि हमने किस तरह रोक ली हैं चीजें। क्या आपको पता है अन्धे आदमी का—एक अन्धा कान से जिस भाँति सुनता है, आपने कभी उस भाँति सुना है? कान आपके पास भी उतना ही शक्तिवान है, जितना अन्धे के पास है। लेकिन अन्धा कान से बहुत सुनता है।

मैं एक ट्रेन में सफर कर रहा था। रात का वक्त था, कोई बारह बजे ट्रेन में सवार हुआ। ऊपर की बर्थ पर कौन है, मैंने देखा नहीं, नीचे की बर्थ पर बिस्तर लगा कर लेटने जा रहा था कि ऊपर से झाँक कर

किसी ने मेरा नाम लिया और कहा, आप वही तो नहीं हैं? तो मैंने कहा, मैं वही हूँ। पहचानते हैं? लाइट जलाकर देखा तो ऊपर एक अन्धा आदमी है। मैंने कहा, आपने मुझे पहचाना कैसे? तो उन्होंने कहा, पाँच वर्ष पहले एक बार आपको सुना था। आपकी आवाज ख्याल में रह गयी थी। आप कुली से बात कर रहे थे तो मुझे लगा कि आप ही होने चाहिए। मैंने कहा, छः साल पहले सुनी हुई आवाज? तो उन्होंने कहा, मैं तो अन्धा आदमी हूँ, मैं तो आवाज से ही जीता हूँ, आवाज ही मेरी पह-चान है। आँखें तो नहीं हैं, तो कान से ही आँख का काम लेता हूँ। पैरों को भी मैं पहचानने लगता हूँ कि कौन आ रहा है, पद-चाप सुनकर पहचान लेता हूँ कि घर में कौन आ रहा है। घर से कौन जा रहा है बाहर, यह भी मैं जान लेता हूँ, क्योंकि सबके पैरों की चाप अलग है। कभी ख्याल किया है आपने? व्यक्तित्व इतना अद्भुत है कि दो आदमी एक जैसे पैर की आवाज भी नहीं करते। हर आदमी के पैर की आवाज अलग होती है। रिदिम अलग है और हर आदमी के दो पैर का गैप अलग है, और हर आदमी के पैर की आवाज का फासला अलग है, गीत अलग है। सब अलग है। दो आदमी एक साथ चलते भी नहीं हैं। उस अन्धे आदमी ने मुझसे कहा कि मुझे तो पैर की आवाज से भी पता चल जाता है कि घर के बाहर कौन जा रहा, घर के भीतर कौन आ रहा है।

इतना ही अद्भुत कान हमारे पास भी है, लेकिन हमारे कान को यह कुछ पता नहीं चलता! हमने कान का उपयोग ही नहीं किया है। अगर हम कान का पूरा उपयोग कर सकें तो जीवन का संगीत हमारे लिए परमात्मा की खबर लायेगा, लेकिन संगीत का हमें अनुभव नहीं हो सकता, क्योंकि कान का हमने कोई उपयोग नहीं किया है। कान का हमें कोई शिक्षण नहीं दिया गया है कभी।

हममें से बहुत कम लोगों को नाक से सुगन्ध आती है! जब मैं ऐसा कहता हूँ, आप कहेंगे, गलत कहते हैं, हम सबको गन्ध आती है। लेकिन आपने ख्याल किया है, आपको तब सुगन्ध आती है, जब कि वह बहुत तेज हो। इसलिए फ्रेंच परफ्यूम हैं और दूसरे परफ्यूम हैं। जिसकी नाक को

ठीक से सुगन्ध आती है, उसको वह बहुत घबड़ाने वाली मालूम पड़ सकती है, क्योंकि वह इतनी आक्रामक और इतनी हिंसक और इतनी तेज है, लेकिन उनका भी हमें पता नहीं चलता है, उनको भी डालकर थोड़ा सा मालूम पड़ता है कि हाँ कुछ है, कुछ अच्छा लगा है।

लेकिन क्या हमें एक दूसरे के शरीर की भी गन्ध का कभी बोध होता है ? एक-एक आदमी के शरीर में गन्ध है और एक-एक आदमी के शरीर की गन्ध का अपना अर्थ है। अपनी लय है। एक-एक आदमी के शरीर की गन्ध की अपनी खूबियाँ हैं। और कुछ मनोवैज्ञानिक तो यह कहते हैं कि जिन दो व्यक्तियों ने विवाह किया हो, अगर उनकी गन्ध मेल न खाती हो, तो चाहे उन्हें पता हो या न पता हो, वे जिन्दगी में कभी भी मेल न खा पायेंगे। उनकी गन्ध कहीं गहरे में मेल खाती हो, तब वे मेल खा पायेंगे। अन्यथा मेल खाना बहुत मुश्किल है। लेकिन हमें गन्ध का कोई पता नहीं चलता है—हमें गन्ध का कोई शिक्षण नहीं दिया गया है ! हमें स्पर्श का कोई पता नहीं चलता है।

हेलेन केलर सारी दुनिया में घूमी। वह लोगों के चेहरों पर हाथ लगाकर देखती थी। वह नेहरू से मिलने आयी तो उसने उनके चेहरे को हाथ लगाकर देखा। दोनों हाथ से उसने नेहरू के चेहरे को छुआ—उनकी नाक को, उनकी आँख को, उनके चेहरे को, और हेलेन केलर ने कहा कि मैंने इतने सुन्दर आदमी कम देखे। किसी ने पूछा, तुमने देखा कैसे, पहचानीं कैसे ? तो उसने कहा कि नेहरू के चेहरे पर हाथ फेरते वक्त, ठीक मुझे वैसा ही लगा जैसे यूनान में संगमर्मर की मूर्तियों पर फेरते वक्त लगा। ठीक वही, जैसे संगमर्मर की मूर्ति का चेहरा हो, उतना ही रहस्यपूर्ण, उतनी ही सौंदर्य से भरी हुई, वही कटाव, वही तेजी। हेलेन केलर ने कहा कि नेहरू बहुत तेज आदमी हैं। उनके नाक के स्पर्श से, उनके चेहरे के स्पर्श से मुझे लगा कि बहुत तेज आदमी होंगे। हम किसी के स्पर्श के ऐसा पता लगा सकते हैं ? हाथ में हमारे भी वही ताकत है। लेकिन हेलेन केलर के पास आँख नहीं है, कान नहीं है। कुछ भी नहीं हैं दूसरी इंद्रियाँ ! हाथ से ही उसने सारा काम लिया है। और उसका हाथ बहुत संवेदनशील

हो गया है। वह हाथ अब पहचानने लगा है। उसकी अंगुलियाँ भी स्पर्श से वह जानने लगी हैं, जो आँखें जान सकती हैं।

इसका क्या मतलब है ? इसका मतलब यह है कि हमारा पूरा शरीर इतना संवेदनशील यंत्र है कि अगर हम पूरे शरीर से जीने की कोशिश करें तो आनन्द के न मालूम कितने लोकों का उद्घाटन हो जायेगा। तब हमें एक गन्ध से भी परमात्मा का आगमन मालूम पड़े, और एक ध्वनि से भी परमात्मा का आगमन मालूम पड़े, और तब किसी के स्पर्श से भी परमात्मा का आनन्द अनुभव होने लगे। लेकिन अभी हमें पता नहीं पड़ता। इस-लिए तो हम अपने ज्ञानियों को कहते हैं, द्रष्टा, सिअर, विजनरी। हम अपने मुल्क में फिलासफी को दर्शन कहते हैं। यह आँख केन्द्रित लोगों के ख्याल हैं। किसी ज्ञानी को अगर हम कहें श्रोता तो, कोई नहीं मानेगा। कहेगा द्रष्टा कहिये, श्रोता का क्या मतलब होता है ? द्रष्टा यानी देखने वाला, श्रोता यानी सुनने वाला। और अगर हम किसी ज्ञानी को कहें, स्पर्श करने वाला, तो कहा जता है, क्या बातें करते हैं आप ? लेकिन हमने आँख केन्द्रित बना ली है। संस्कृति—खोपड़ी में भीतर विचार केन्द्रित हो गये हैं और विचारों का द्वार आँख बन गयी। आँख से जी रहे हैं, खोपड़ी में जी रहे हैं। और सारे व्यक्तित्व से सारा जीवन सिकुड़ कर ऊपर आ गया है, और हम कहीं भी नहीं जी रहे हैं। इसलिए हमारा जीवन से पूरा संपर्क भी नहीं हो पाता, और जीवन के आनन्द के कितने द्वार हो सकते हैं, यह हमें पता नहीं चल पाता है। धार्मिक व्यक्ति मैं उसको कहता हूँ, जो समग्र रूप से जी रहा है, टोटली जी रहा है, जो जीवन के सब अंगों से पूरी तरह जी रहा है। वही व्यक्ति परमात्मा का अनुभव कर पायेगा। अंश में जीने वाला अनुभव नहीं कर पायेगा। उसके कारण हैं।

समझ लें कि मैं एक बहुत बड़े मकान में एक छोटे-से छेद से देखूँ तो मुझे क्या दिखाई पड़ेगा। कोई एक द्वार का कोना, किसी एक दीवाल का हिस्सा, किसी चित्र का एक छोटा-सा टुकड़ा, किसी फोटो का कोई एक कोना, लेकिन मुझे और कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। मुझे तो कमरे के भीतर जाकर पूरा देखना पड़ेगा, तभी मैं पूरे कमरे से परिचित हो पाऊंगा।

हम परमात्मा से परिचित नहीं हो पाते, क्योंकि हम पूरे जीवन से देख नहीं पाते। हम देखते हैं छोटे-छोटे टुकड़ों से और वह टुकड़े इतने भारग्रस्त हो जाते हैं कि उनका भी देखना मुश्किल हो जाता है।

सिर का काम है थोड़ा-बहुत। मेरे पैर चलते हैं, मुझे आपके घर तक आना है तो पैर से चलकर आऊँगा। फिर मैं घर बैठ जाऊँगा तो पैर नहीं चलाऊँगा। लेकिन अगर मैं घर बैठकर ही पैर चलाता रहूँ चौबीस घन्टे, तो फिर जिस दिन मुझे आपके घर जाना है, पैर जबाब दे देंगे। मैं आपके घर न पहुँच पाऊँगा, क्योंकि पैर चौबीस घण्टे चलेंगे तो फिर बिलकुल न चल सकेंगे। पैर चल सकते हैं, क्योंकि विश्राम भी करते हैं। लेकिन मस्तिष्क विश्राम नहीं कर रहा है! वह सब काम उसी पर पड़ गया है। पैर का काम भी वही कर रहा है, प्रेम का काम भी वही कर रहा है! रोने का काम भी, हँसने का काम भी, विचार का काम भी, सेक्स का काम भी, धर्म का काम भी, प्रार्थना, भगवान, दूकान, बाजार—सब काम वही कर रहा है! उसे विश्राम नहीं है जरा-सा। इसका परिणाम यह हुआ है कि वह कुछ भी करने में असमर्थ हो गया है। वह कुछ भी नहीं कर पा रहा है। सब एक मैस हो गया है, सब एक पागलपन, सब गड्ड-मड्ड, अनारकी हो गई है भीतर, वह कुछ भी नहीं कर पा रहा है। सब अस्त-व्यस्त हो गया है। इस भार ने आदमी को उल्टा कर दिया है।

जब मैंने आदमी को करीब से देखा तो मुझे लगा, यह कहानी किसी दूसरे ग्रह के संबंध में नहीं, इसी पृथ्वी के ग्रह के लोगों की है। सिर भारी हो गया है। दारूमा डोल से उल्टी हालत हो गयी है। कैसे भी गिराओ, आदमी उल्टा ही गिर जाता है, शीर्षासन करने लगता है। इसे बदलना जरूरी है, क्योंकि इस शीर्षासन करती हुई स्थिति ने इतने घाव आदमी पर छोड़ दिये हैं कि उसका सारा प्राण दुःख से भर गया है, पीड़ा से भर गया है।

और ध्यान रहे, अगर हम आनन्द से भर नहीं पाये तो दुःख से भर जाना अनिवार्य है। दोनों के बीच में कोई जगह नहीं होती—या आनन्द,

या दुःख। ऐसा नहीं होता कि हम आनन्द को न पा सकें तो हम दुःख भी न पायें, बीच में रह जायें। बीच में कुछ होता ही नहीं। अगर हम आनन्द को उपलब्ध नहीं होते तो हम दुःख को अनिवार्य-रूपेण उपलब्ध हो जाते हैं। अगर हम स्वस्थ न हों, तो हम बीमार होंगे ही। स्वास्थ्य और बीमारी के बीच में कोई स्थान नहीं होता है। अगर कोई आदमी कहता हो कि मैं बीमार भी नहीं हूँ, मैं स्वस्थ भी नहीं हूँ तो समझना कि वह झूठ ही कहता है। या उसे पता न होगा, गलत कहता है, क्योंकि आदमी दोनों के बीच में नहीं हो सकता।

आदमी या तो बीमार होता है, या स्वस्थ होता है। अगर हम स्वस्थ हों, तो ही हम बीमार होने से मुक्त हो सकते हैं।

हम सब दुःखी हो गये हैं, हजार-हजार घाव हमारी आत्मा पर छिद गये हैं। सबसे लहू बह रहा है और सबमें मवाद पड़ गयी है, सब तरफ गन्दगी और दुर्गन्ध हो गयी है। लेकिन आनन्द की तरफ हम कैसे जायें, उसका कुछ ख्याल नहीं आता। और अगर जाने की कोशिश करते हैं, तो रास्ता बताने वाले लोग हैं, कोई कहता है कि बैठकर ओम् का जाप करो, कोई कहता है राम का जाप करो, कोई कहता है गीता पढ़ो, कोई कहता है कुरान पढ़ो, कोई कहता है कि भगवान की मूर्ति के सामने हाथ जोड़ कर बैठ जाओ! लेकिन जिन्दगी बदलने को कोई नहीं कहता है!

और अगर कोई जिन्दगी बदलने को भी कहता है तो बड़ी पागलपन की बातें कहता है। कोई कहता है, जिन्दगी बदल डालो— लोभ छोड़ दो, क्रोध छोड़ दो, काम छोड़ दो, यह सब छोड़ दो तो सब ठीक हो जायेगा। यह ऐसा ही है किसी आदमी से कहना, जैसे कोई बुखार से गर्मी में तप रहा हो, पसीना बह रहा हो, बुखार चढ़ा हो १०४ डिग्री और उनके पास जाकर हम कहें मित्र बुखार छोड़ दो। क्यों बुखार में पड़े हो, छोड़ दो। और वह आदमी कहे, बात तो आप बिल्कुल ठीक कहते हैं, छोड़ना तो मैं भी चाहता हूँ, लेकिन छूटता नहीं है। हम कहें कि क्यों पकड़े हुए हो, छोड़ दो बुखार, मजा करो, स्वस्थ हो जाओ।

बुखार छोड़ा नहीं जा सकता। बुखार छोड़ा नहीं जा सकता, स्वस्थ

हुआ जा सकता है। इससे बुखार छूट जायेगा। कोई ऐसी बात नहीं है कि आप लोभ छोड़ दें, क्रोध छोड़ दें, घृणा छोड़ दें। ये छोड़ी नहीं जा सकतीं। हाँ, आप आनन्दित हो जायँ, इसलिए छूट जाती हैं। क्योंकि आनन्दित व्यक्ति क्रोध नहीं करेगा, इसलिए नहीं कि क्रोध करने में असमर्थ हो गया, बल्कि इसलिए कि अपने आनन्द को खोने के लिए अब वह तैयार नहीं होगा। अब वह तैयार नहीं होगा कि क्रोध करके वह अपना आनन्द खो दे।

बुद्ध ने कहा है कि जब मैं छोटा था, तब मेरे पास हीरे-जवाहरातों के खिलौने थे। लाखों रुपये की कीमत के खिलौने थे। लेकिन अगर कोई लड़का मेरी रोटी का एक टुकड़ा, खेलने में मुझसे छीन लेता था तो मैं वह लाखों का खिलौना फेंककर मार देता था। कई बार ऐसा होता कि हीरे-मोती बिखर जाते, खिलौना टूट जाता। घर के लोग मुझसे कहते कि दो कौड़ी के टुकड़े के लिए तुमने लाखों का खिलौना बिगाड़ दिया। लेकिन तब मुझे पता ही नहीं था कि रोटी और खिलौने की कीमत क्या है। जब मैं बड़ा हुआ, तब मुझे पता चला। अब मुझसे कोई कहे कि एक रोटी का टुकड़ा किसी बच्चे ने छीना है तो तुम लाख रुपये का खिलौना फेंककर मार दो, तो मैं नहीं मारूंगा। इसलिए नहीं—इसलिए नहीं कि मैंने क्रोध छोड़ दिया है, बल्कि इसलिए कि क्रोध का गणित बिलकुल मूर्खतापूर्ण है, यह मुझे समझ में आ गया है। अब दो पैसे की रोटी के लिए लाख रुपये का खिलौना फेंककर मैं नहीं मार सकता हूँ। अब मैं जानता हूँ कि किस चीज का क्या मूल्य है।

आनन्द उपलब्ध हो तो ही मूल्य का पता चलता है।

लेकिन धर्मगुरु समझा रहे हैं, क्रोध छोड़ो, लोभ छोड़ो—सब ठीक हो जायेगा! और आदमी बेचारा सुन रहा है। और सोचता है कि छूट तो जाना चाहिए क्रोध और लोभ। वह छूटते नहीं। और धर्मगुरु भी बहुत अद्‌भुत हैं। वह उसको फिर लोभ भी दिलाते हैं। वह कहते हैं लोभ छोड़ दो तो स्वर्ग मिल जायेगा। और उनके ख्याल में भी नहीं है कि अगर इसने स्वर्ग पाने के लिए लोभ छोड़ा तो लोभ छूटा ही नहीं। क्योंकि स्वर्ग

पाने का लोभ फिर भी मौजूद रहा है। अब वह उसको समझा रहे हैं कि यह तुम यह छोड़ दो तो यह मिल जायेगा। लेकिन उन्हें पता भी नहीं है कि यह मिल जाने का लोभ, फिर भी लोभ ही है, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। वह उसको कह रहे हैं कि एक रुपया यहाँ छोड़ो तो वहाँ करोड़ रुपये मिलेंगे।

गंगा के किनारे मैं गया था एक यज्ञ में। वहाँ संन्यासी समझाते थे कि यहाँ गंगा के किनारे एक पैसा दान करो तो करोड़ गुना मिलता है। लोभ छोड़ो, दान करो। अब वह आदमी बेचारा जो एक पैसा छोड़ रहा है, वह इसी लोभ में छोड़ रहा है कि इसका करोड़ गुना मिल जाय तो अच्छा। इसमें कोई हर्ज नहीं है। उसी के लोभ का शोषण किया जा रहा है, और समझाया जा रहा है, लोभ छोड़ दो। लेकिन लोभ कोई छोड़ता नहीं है दुनिया में। हाँ लोभ छूट जाता है अगर कोई इतनी बड़ी संपदा मिल जाय कि लोभ के कारण उसमें बाधा पड़ने लगे। तो लोभ छूट जाता है। वह संपदा मिल सकती है, लेकिन जिन्दगी के रूपान्तरण से। और जिन्दगी के रूपान्तरण का क्या मतलब है?

जिन्दगी के रूपान्तरण के तीन सूत्र मैंने आज कहने चाहे हैं : पहला, जीवन के रूपान्तरण का यह मतलब है कि ठीक से समझ लें कि बुनियाद क्या है और शिखर क्या है। भूलकर शिखर को बुनियाद मत बना लेना। अन्यथा जिन्दगी का रूपान्तरण कभी भी न होगा। कभी भूलकर शिखर को जमीन में रखने की कोशिश मत करना। जड़ों को सम्हालना, क्योंकि जड़ें ही फूल लाती हैं। जड़ों को काट मत देना, जड़ें ही फूल बनती हैं। फूल और जड़ एक ही चीज के दो छोर हैं। वह जो नीचे है, और जो ऊपर है, वह कोई नीचे ऊपर नहीं हैं। वह एक का ही विस्तार है, यह पहली बात जीवन के रूपान्तरण में ध्यान रखनी जरूरी है।

दूसरी बात मैंने यह कही कि सिर को भारी मत हो जाने देना। क्योंकि अगर सिर भारी हो गया तो शीर्षासन लग जायेगा—चाहे दिखाई पड़े, चाहे दिखाई न पड़े। सिर अगर भारी हो गया तो पैर ऊपर चले जायेंगे, सिर नीचे आ जायेगा। उल्टी दारूमा डोल मत बन जाना। लेकिन

हम सब बन गये हैं। तो सिर को बाँटना, डिसेन्ट्रलाइज करना सिर को, विकेन्द्रित करना। उसको नीचे सारे अंगों में फैल जाने देना। और धीरे-धीरे प्रत्येक अंग को उसका काम करने देना। प्रत्येक अंग को उसका काम करने देना, ताकि एक केन्द्र पर सारा काम इकट्ठा न हो जाय और एक केन्द्र विक्षिप्त न हो जाय, पागल न हो जाय, ज्यादा बोझ में टूट न जाय, भारी न हो जाय, पत्थर न हो जाय। उसके ऊपर इतना बोझ न हो जाय कि वह काम अस्त-व्यस्त हो जाय। सिर का अपना काम है, उतना ही उससे लेना। बाकी काम शरीर पर छोड़ देना। दूसरी बात यह ध्यान में रखनी जरूरी है।

और तीसरी बात यह ध्यान में रखना जरूरी है कि हमारे व्यक्तित्व के जितने द्वार हैं, जितनी इन्द्रियाँ हैं, उनके प्रशिक्षण की जरूरत है। अपने कान को भी और गहरे, और गहरे सुनने में सक्षम बनाने की जरूरत है, ताकि पत्ता हिले तो उसका संगीत भी पता चल जाय। स्वाद को इतना सूक्ष्म बनाने की जरूरत है कि जब हम भोजन करें तो वह भोजन जो दिखाई पड़ रहा है स्थूल, वही ख्याल में न आये—उस स्थूल में जो विराट, सूक्ष्म छिपा है, उसका भी पता चल जाय।

उपनिषद के किसी ऋषि ने कहा है, अन्न ही ब्रह्म है। कितना स्वाद लिया होगा, तब वह यह जान सका होगा कि अन्न ब्रह्म है। यह कोई सिद्धान्त नहीं है। यह किसी अद्भुत रस-मग्न व्यक्ति का वक्तव्य है, जिसने इतने आनन्द से भोजन किया होगा कि भोजन में उसे ब्रह्म की झलक दिखाई पड़ गयी होगी।

जिन्होंने कहा, अनाहद नाद है उसका, वह हम जैसे लोग नहीं हो सकते, क्योंकि जिन्होंने कान को इतने सूक्ष्म तलों में प्रशिक्षित किया होगा, इतने सूक्ष्म तल में कान से सुनने की कोशिश की होगी कि सूक्ष्म नाद उन्हें सुनाई पड़ने लगा होगा, वह संगीत जो सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। एक संगीत है जो सारे जगत को घेरे हुए है, लेकिन सुनाई नहीं पड़ता, क्योंकि सुनने की क्षमता हमने कभी विकसित ही नहीं की।

आपने कभी ख्याल किया है, आप भी निकलते हैं रास्ते से, एक पेन्टर,

एक चित्रकार भी निकलता है रास्ते से। आप सारे दरख्तों को हरा समझते हैं। सचाई यह है कि दो दरख्त एक से हरे नहीं होते हैं, हरे भी हजार तरह के हरे होते हैं, लेकिन यह चित्रकार को दिखाई पड़ता है कि हजार रंग हैं हरे रंग के। हरा रंग एक नहीं है, हजार शेड हैं हरे रंग के। असल में पत्ता-पत्ता हरे रंग का होता है, लेकिन हमें सिर्फ एक हरा रंग दिखाई पड़ता है। उसका कारण कुल इतना है कि हमारी आँख ने कोई रंग की सूक्ष्मता में उतरने की तैयारी नहीं की।

मैं उस शिक्षा को बुनियादी शिक्षा कहता हूँ—गांधी की शिक्षा को बुनियादी नहीं कहता, वह बहुत गैर-बुनियादी शिक्षा है कि किसी को चर्खा चलाना सिखा दो, चटाई बुनना सिखा दो, तो शिक्षा पूरी हो जाये कि क-ख-ग सिखा दो तो चिट्ठी-पत्री लिख सके तो शिक्षा पूरी हो जाय। बुनियादी, बेसिक एजुकेशन मैं उसको कहता हूँ जो कान को इतना सक्षम बना दे कि जीवन का संगीत पकड़ में आ जाय। जो आँख को इतना सक्षम बना दे कि रूप नहीं, अरूप की झलक मिलने लगे। जो स्पर्श को इतना सक्षम बना दे कि शरीर को तो छुए, लेकिन स्पर्श आत्मा तक पहुँच जाय। जो स्वाद को इतना सक्षम बना दे कि 'अन्न ही ब्रह्म है', यह कहने की क्षमता आ जाय। और जो सारी इंद्रियों को इतना सक्षम बना दे कि सब तरफ के द्वार खुल जायँ और इन सब द्वारों से परमात्मा की झलक मिलने लगे। अधूरा उसे नहीं जाना जा सकता।

लेकिन पूरा तो हम तभी जानेंगे, जब हमारे घर के सारे द्वार खुले हों। हम ऐसे व्यक्ति हैं जो घर के सब दरवाजे बन्द करके भीतर बैठ गये हैं! और शिक्षा उसी दिन सच्ची होगी और क्रांतिकारी होगी, जिस दिन हम एक-एक बच्चे को शीर्षासन सिर का करवाना नहीं, बल्कि समस्त इंद्रियों को खोलना सिखायेंगे!

ऐसे भी बच्चे हमसे ज्यादा सक्षम होते हैं। अगर बच्चा आपको प्रेम करता है तो वह आपके चेहरे को छूना चाहेगा। अगर वह आपको प्रेम करता है तो वह आपके शरीर से अपने ओंठ भी लगाना चाहेगा। अगर वह आपको प्रेम करता है तो वह आपके गले से लटककर आपके पूरे शरीर

को भी छू लेना चाहेगा। वह पूरे शरीर से आपको पहचानने की कोशिश कर रहा है। लेकिन हम नहीं करते! अगर बच्चों को ठीक से शिक्षित किया जा सके तो उनकी सारी इंद्रियों के द्वार खुल सकते हैं! एक क्रांति इस जगत में हो सकती है और वह क्रांति सारे मनुष्यों को रूपान्तरित कर सकती है, अगर हम बीमारी के सारे कारणों को समझ लें, और करुणा लायें, दया नहीं।

ध्यान रहे, दया बड़ा अपमानजनक शब्द है। करुणा बिलकुल दूसरी बात है। करुणा का मतलब है, एक पीड़ा, एक सफरिंग, जो हम सबके साथ अनुभव करते हैं। दया का मतलब है, हम ऊपर हैं और कोई नीचे है, जिसपर हम दया करते हैं। दया बहुत अच्छा शब्द नहीं है। दया से कोई क्रांति न होगी। दान हो सकता है दया से, धर्मशाला बन सकती है लेकिन दया से कभी कोई क्रांति नहीं होगी। क्रांति होगी करुणा से। करुणा का मतलब है मैं भी सम्मिलित हूँ, वहीं खड़ा हूँ, जहाँ आप खड़े हैं। वहीं खड़ा हूँ, जहाँ आप खड़े हैं। आपकी पीड़ा मेरी पीड़ा है। मेरी पीड़ा आपकी पीड़ा है। हम सबकी पीड़ा सामूहिक पीड़ा है और हम सबने मिलकर मनुष्य को दुःख के रास्ते पर धक्का दिया है। हम सब मिलकर मनुष्य को आनन्द के मार्ग पर भी ला सकते हैं।

करुणा से क्रांति फलित हो तो ही क्रांति फलित हो सकती है। और एक क्रांति अत्यंत जरूरी हो गयी, क्योंकि जो आदमी हम पहचानते थे, वह मरने के करीब पहुँच गया। नया आदमी नहीं जन्मेगा, पुराना मर जायेगा, तो मनुष्य जाति समाप्त हो सकती है। नये आदमी के जन्म की जरूरत है। पुराना तो जायेगा, जा चुका, जा ही रहा है। अगर हमने नये को पैदा न किया तो आगे बहुत अन्धकार हो सकता है।

बहुत से प्रश्न इकट्ठे हो गये हैं। कल इन सारे प्रश्नों की चर्चा मैं करूँगा। मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, इसके लिए बहुत अनुग्रहीत हूँ। और अन्त में सबके भीतर छिपे प्रभु को प्रणाम करता हूँ। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

ग्वालिया टैंक, बम्बई, २७ नवम्बर १९६९.

५ : अन्तहीन यात्रा

पिछले चार दिनों की परिचर्चा में बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं। जितने प्रश्न के उत्तर संभव हो सकेंगे, मैं देने की कोशिश करूँगा।

एक मित्र ने पूछा है कि शांति और क्रांति में क्या संबंध हो सकता है? करुणा और क्रांति में क्या संबंध हो सकता है और कैसे हो सकता है? ये दोनों बातें तो विरोधी मालूम पड़ती हैं, ऐसा किसी दूसरे मित्र ने भी पूछा है।

रास्ते पर कभी चलती बैलगाड़ी देखी होगी आपने। गाड़ी का चाक चलता है, लेकिन चाक के बीच में एक कील ठहरी रहती है और चलती नहीं है। क्या कभी यह दिखायी पड़ा कि ठहरी हुई कील के ऊपर ही चाक का चलना निर्भर होता है। दोनों में विरोध है—कील ठहरी हुई है और चाक चलता है! मजे की बात यह है कि कील ठहरी हुई है, इसलिए चाक चलता है। अगर कील भी चल जाय तो चाक न चल पायेगा। ठहरी हुई कील पर चलते हुए चाक का आधार है।

जीवन बहुत विरोधों से निर्मित है।

कभी जोर का बवण्डर देखा हो, तूफान देखा हो, धूल का आकाश में उड़ता हुआ गुब्बारा देखा हो और जमीन पर पड़े हुए उसके चिन्ह देखे हों तो एक बात देखकर हैरान होंगे कि सब तरफ तो गुब्बारे के चिन्ह बन जाते हैं, लेकिन बीच में एक जगह खाली रह जाती है, वहाँ कोई तूफान नहीं होता। उठी हुई आँधी के घेरे के बीच में एक जगह होती है, जहाँ सब शांत होता है, जहाँ कोई तूफान नहीं होता है!

शांति मनुष्य के भीतर चाहिए और क्रांति उसके बाहर के जीवन में चाहिए।

शांति बनेगी कील और क्रांति होगी घूमता हुआ चाक । और हम सोचते हैं कि इन दोनों में से एक को बचा लें । या तो हम सोचते हैं कि शांति हो बच जाय, कील ही बच जाय, चाक न रहे, तो कील व्यर्थ हो जायगी, क्योंकि कील की सार्थकता चाक के साथ ही है ।

भारत ने, पूरब के मुल्कों ने यह प्रयोग करके देख लिया है कि शांति ही बच जाय, क्रांति की कोई जरूरत नहीं है तो हम मुर्दा हो गये जमीन पर, मरे हुए लोग हो गये । हमारा अस्तित्व अनस्तित्व जैसा हो गया, न होने के बराबर हम हो गये और अच्छा था कि न हो जाते । हमारा होना न होने से भी दुःखद हो गया । रुग्ण, बीमार, दीनहीन, दरिद्र, दास । हमने जीवन की सारी पीड़ा झेल ली एक गलती के आधार पर कि हमने कहा, हम कील बचायेंगे, हम चाक नहीं बचायेंगे, क्योंकि चाक कील का विरोधी है । हम केवल शांति बचायेंगे, क्रांति की, परिवर्तन की हमें कोई जरूरत नहीं ।

पश्चिम ने दूसरी भूल कर ली । उन्होंने चाक बचा लिया और कील फेंक दी । अब चाक को लिए बैठे हैं, लेकिन बिना कील के चाक बेकार है । उन्होंने क्रांति बचा ली है, परिवर्तन बचा लिया है, शांति की फिक्र छोड़ दी है । उनका भी तर्क यही है कि अगर क्रांति करनी है तो शांति की क्या जरूरत है ।

और ध्यान रहे, दिखायी पड़ता है कि पूरब और पश्चिम उल्टे हैं, लेकिन दोनों का तर्क एक है । पूरब का तर्क यह है कि अगर शांति चाहिए तो क्रांति की क्या जरूरत है । पश्चिम का तर्क है कि अगर शांति चाहिए तो क्रांति की क्या जरूरत है । दोनों का तर्क भिन्न नहीं है । दोनों का तर्क एक है, और वह इस बात पर निर्भर है कि जीवन में हम एक चीज को चुनेंगे, विरोध को हम छोड़ देंगे । लेकिन जीवन विरोध से बना है, जीवन की सारी व्यवस्था विरोध पर खड़ी है ।

कभी किसी मकान का दरवाजा देखें । दरवाजे में कारीगर ने विरोधी ईंटें लगा दी हैं । एक तरफ से ईंटें गयी हैं और दूसरी तरफ से ईंटें आयी हैं । और दोनों ईंटों में विरोध है । दोनों के विरोध के ऊपर सारा भवन

खड़ा हो गया है ! हम कह सकते हैं कि ईंटें एक ही दिशा में लगा सकते थे, लेकिन फिर भवन खड़ा नहीं होता ।

दो विरोध के आधार पर बल पैदा होता है, इसलिए जीवन सभी विरोधों के आधार पर खड़ा हुआ है ।

स्त्री और पुरुष एक तरह का विरोध है, ऋण और धन । दोनों में एक तरह का विरोध है । निगेटिव और पॉजीटिव पोल्स, एक तरह का विरोध है । अगर हम जिन्दगी को खोजने जायेंगे तो सब तरफ विरोध मिलेंगे और विरोधों के आधार पर जीवन का भवन खड़ा होता हुआ मिलेगा ।

लेकिन पूरब ने भी इस बात को न समझा और पश्चिम ने भी न समझा । पूरब ने भी आधी संस्कृति बनायी, कहा कि हम सिर्फ जिन्दा रहेंगे, शांत होकर रहेंगे । पश्चिम ने कहा हम जिन्दा रहेंगे तो क्रांत होकर रहेंगे, शांति से क्या सम्बन्ध है । यह ऐसा ही है, जैसे मैं कहूँ, मैं साँस सिर्फ भीतर ले आऊँगा, बाहर न ले जाऊँगा, क्योंकि बाहर ले जाने और भीतर ले जाने में विरोध है । अब जब भीतर श्वाँस ले जानी है तो बाहर श्वाँस ले जाने की क्या जरूरत है । और जब भीतर ले जानी है तो भीतर ही ले जाइये और रोक रखिये भीतर, श्वाँस को बाहर मत जाने दीजिये, क्योंकि बाहर और भीतर में विरोध है । लेकिन अगर भीतर ही साँस रोक लें तो मर जायेंगे । दूसरा आदमी कहता है कि जब बाहर ले जानी ही पड़ती है तो भीतर क्यों ले जायें, बाहर ही रोक दें । दोनों में विरोध है, हम बाहर ही रोक देते हैं । बाहर रोकने वाला भी मर जायेगा । एक भीतर रोककर मरेगा, एक बाहर रोककर मरेगा,, क्योंकि जिन्दगी बाहर भीतर आते हुए विरोधी पर निर्भर है ।

जिन्दगी निरन्तर विरोध पर निर्भर है ।

लेकिन हम इस विरोध को कभी स्वीकार नहीं कर पाते, इसलिए बड़ी मुश्किल हो जाती है । हम कहते हैं जन्म तो हमें स्वीकार है, मृत्यु हमें स्वीकार नहीं है । यह बड़े पागलपन की बात है । जिन्दगी जन्म और मृत्यु के विरोध के आधार पर खड़ी हुई है । जिन्दगी जन्म और मृत्यु के विरोध

पर ही निर्भर है। हम कहते हैं, जन्म तो बहुत सुखद है, मृत्यु बहुत दुःखद है। जन्म स्वीकार करते हैं, मृत्यु हम नहीं चाहते, तो पागलपन की बात कर रहे हैं। जिस दिन हम जन्म और मृत्यु दोनों को एक साथ स्वीकार कर पायेंगे, उस दिन जिन्दगी का रस कुछ और ही हो जायगा। शांति और क्रांति एक साथ स्वीकार करेंगे तो जिन्दगी कुछ बात और ही हो जायगी। भीतर एक विन्दु होगा, जहाँ कोई परिवर्तन नहीं। और बाहर परिवर्तन, परिवर्तन और परिवर्तन का घूमता हुआ चाक होगा। और भीतर एक कील होगी, जहाँ कोई परिवर्तन नहीं।

परमात्मा निरन्तर वहाँ है, जहाँ कोई परिवर्तन नहीं।
संसार वहाँ है, जहाँ निरन्तर परिवर्तन है।

और वह जो परमात्मा है निरन्तर शांत, चुप, मौन, जहाँ कभी कुछ न बदला, उसके ऊपर ही सारे संसार का चाक घूम रहा है।

संसार शब्द आपके ख्याल में है?

संसार का अर्थ एक चाक होता है। संसार का अर्थ होता है, जो घूम रहा है, दी व्हील। संसार शब्द का ही मतलब होता है घूमता हुआ, और परमात्मा का अर्थ होता है ठहरा हुआ। लेकिन ये दोनों विरोधी नहीं हैं। इस अर्थ में विरोधी नहीं हैं कि एक को हम बचा लेंगे। यह इस अर्थ में विरोधी है कि दूसरा एक पर निर्भर है। भीतर आती साँस बाहर जाती साँस पर निर्भर है। संसार न हो तो परमात्मा भी न होगा और परमात्मा न हो तो संसार भी न होगा। और इस भूल में मत रहना कि परमात्मा एक क्षण भी संसार के बिना रह सकता है। और इस भूल में भी मत पड़ना कि संसार एक क्षण भी परमात्मा के बिना रह सकता है। वे दोनों विरोधी ध्रुव हैं, जो एक दूसरे को सम्हाले हुए हैं।

और इसलिए मुझे सब विरोध स्वीकार है और क्रांति और शांति के विरोध को मैं जिन्दगी को बदलने, परिवर्तन करने और जिन्दगी को उससे भी जोड़ने में उपयोगी मानता हूँ, जो सनातन है, शाश्वत है, जिसका कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है। लेकिन मेरी बातों में इसलिए कठिनाई हो

जाती है कि कोई कहता है कि आप इधर क्रांति की बात कर रहे हैं, उधर आप शांति की बात करते हैं। और मैं मानता ही ऐसा हूँ कि वही आदमी क्रांति कर सकता है, जो शांत है। और जो आदमी शांत नहीं है, अगर क्रांति करेगा तो क्रांति के नाम पर सिर्फ पागलपन करेगा, और कुछ भी नहीं कर सकता है। सिर्फ शांत व्यक्ति क्रांति कर सकता है। जो आदमी शांत नहीं है, अगर क्रांति करेगा तो क्रांति के नाम पर सिर्फ पागलपन करेगा और कुछ भी नहीं कर सकता है। सिर्फ शांत व्यक्ति क्रांति कर सकता है। शांत हाथों में ही क्रांति का हथिहार दिया जा सकता है, अन्यथा क्रांति का हथियार खतरनाक सिद्ध हुआ है और खतरनाक सिद्ध होता रहेगा। इसलिए मैं कहता हूँ, करुणा पहला सूत्र है, क्रांति उसके पीछे आनी चाहिए, करुणा पहले।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि जो है, उसे समझ लेने से करुणा आ जायेगी। जो है, उसे समझ लेने से करुणा कैसे आ जायेगी?

अगर जो है, उसे हम समझ लें तो करुणा के अतिरिक्त हमारे चित्त में और कुछ भी न रह जायगा, क्योंकि जो है, वह इतना दुःखद हो गया है, जो है, इतना रुग्ण हो गया है, जो है, हमारे चारों तरफ फैला हुआ, वह इतना बीमार और विक्षिप्त हो गया है कि अगर हम उसे देख लें और समझ लें तो करुणा के सिवाय और कोई भाव न आयेगा। लेकिन हो सकता है, आप कहें क्रोध आ जाय। क्रोध तब आता है, जब हम पूरी स्थिति से अपने को बाहर खड़ा कर लेते हैं। करुणा तब आती है, जब पूरी स्थिति में हम भी सम्मिलित होते हैं और एक हिस्सा होते हैं!

अगर आज कोई आदमी चोरी कर रहा है तो हमें क्रोध आ सकता है कि इस चोर को मिटा डालें। लेकिन अगर हमें पूरी स्थिति—यह पता चल जाय और यह ख्याल आ जाय कि हम भी उसकी चोरी में हाथ बंटा रहे हैं, हम भी उसकी चोरी में साझीदार हैं। वह जो मजिस्ट्रेट अदालत में बैठ कर चोरों का निर्णय कर रहा है, वह भी चोरों की चोरी में साझीदार है। अगर हमें यह ख्याल आ जाय तो मजिस्ट्रेट को क्रोध नहीं आयेगा, करुणा आयेगी और चोर को सजा देते वक्त वह यह जानेगा कि मैं अपने को सजा

दे रहा हूँ और तब सजा देना बहुत मुश्किल हो जायेगा। परिवर्तन और क्रान्ति करना आसान हो जायेगा।

चोरों को सजा हम कितने दिन से दे रहे हैं, लेकिन एक चोर को हम कम नहीं कर पाये। जमीन पर चोर रोज बढ़ते गये हैं। जितनी सजा बढ़ी है, उतने चोर बढ़ते गये हैं, जितने जेलखाने बढ़े हैं, उतने चोर बढ़ते चले गये हैं! पृथ्वी पर अनादि से हम चोरों को सजा दे रहे हैं, लेकिन एक चोर कम नहीं कर पाये! और उसका कारण यह है कि चोर को सजा देते वक्त हम अपने को बाहर रख लेते हैं। हम सोचते हैं कि हम तो चोर नहीं हैं, जो चोरी कर रहा है वह चोर है, उसको सजा दे रहे हैं। लेकिन हमारे गहरे हाथ हैं, और इसलिए चोर को सजा मिल जाती है, लेकिन चोरी बन्द नहीं होती, क्योंकि हम, जिसका हाथ चोर को पैदा करने में था, तब तक दूसरे चोर पैदा कर लेते हैं। बल्कि हम जिस कारागृह में चोरों को बन्द करते हैं, वह चोरों के लिए शिक्षा का प्रशिक्षण महाविद्यालय हो जाता है, और कुछ भी नहीं होता। वहाँ और पुराने, ज्यादा योग्य, ज्यादा कुशल चोरों का साथ हो जाता है और कुछ भी नहीं होता। वहाँ और अच्छी तरह चोरी करना सीखकर वापस लौट आते हैं। इसलिए एक दफा जो आदमी जेल चला गया है, फिर वह नियमित रूप से जेल जाने लगता है, वह जेल बर्ड ही हो जाता है, उस पक्षी का घर ही वहीं हो जाता है। उसे यहाँ उतना अच्छा नहीं लगता है, जितना वहाँ अच्छा लगने लगता है। वहाँ उसके सङ्गी, साथी, मित्र सब इकट्ठे कर दिये हैं। वहाँ हमने चोरी के लिए सबको इकट्ठा कर दिया है, पूरे प्रदेश के चोरों को कि तुम साथ सलाह-मशविरा करो और एक दूसरे को तरकीबें बताओ कि कैसे पकड़ा न जा सकें। और हम चारों तरफ चोर पैदा किये चले जा रहे हैं। सजा हम इसलिए दे भी नहीं रहे हैं कि चोर को मिटा देना है। क्योंकि चोर तो हम भी हैं। अगर चोर मिटेगा तो हम भी मिट जायेंगे। सजा हम इसलिए दे रहे हैं कि हम जो सजा देने वाले हैं, अपने मन में यह मजा ले सकें कि हम चोर नहीं हैं। चोर कोई और है, इसका हम आनंद ले रहे हैं। यह तो क्रोध है चोर के ऊपर। इससे कोई परिवर्तन नहीं होगा।

मैंने सुना है, इंगलैंड में सौ वर्ष पहले जो आदमी चोरी करता था, उसे चौराहों पर खड़ा करके कोड़े मारे जाते थे, ताकि और लोग देख लें और, और लोग सचेत हो जायें कि चोरी करने वाले की यह गति और यह दुर्गति होती है। लेकिन सौ वर्ष पहले फिर यह सजा बन्द कर देनी पड़ी, क्योंकि नतीजे बड़े उल्टे आये। लन्दन में एक चौराहे पर कुछ पाँच-छः चोरों को कोड़े मारे जा रहे थे। हजारों लोग देखने इकट्ठा हुए थे। आप यह मत सोचना कि वे यह देखने इकट्ठे हुए थे कि चोरों की क्या गति होती है। वे असल में यह देखने इकट्ठे हुए थे कि जब कोड़े मारे जाते हैं, तो चमड़ा कैसे उधड़ता है, खून कैसे बहता है। उनके दिल में भी कई दफा कोड़े मारने की इच्छा हुई होगी, वह अधूरी रह गयी। वह उसे देखकर पूरा कर लेना चाहते हैं। वह वहाँ से चोरी नहीं करनी चाहिए, यह सीखकर नहीं लौटते हैं। वह वहाँ से कोड़ा मारने का कैसा रस और मजा है, इसकी थ्रिल और इसकी पुलक लेकर वापस लौटते हैं।

लेकिन एक दिन तो और अद्भुत घटना घटी। उस दिन नगर में जब चार-पाँच चोरों को कोड़े से पीटकर बेहोश कर दिया गया और सड़क खून से भर गयी—तो कोई दस हजार आदमी देखने इकट्ठे हुए थे। तभी पता चला कि कुछ लोगों की जेबें कट गयीं। भीड़ थी, लोग देख रहे थे चोरों को पीटते हुए। कुछ चोरों ने उनकी जेबें काट लीं, तब यह पता चला कि जब चोर पीटे जा रहे हों, उनकी चमड़ी उधेड़ी जा रही हो तो उसी वक्त जेब कट सकती है! तो इससे कोई चोरी नहीं रुक सकती। कोई सजा चोरी नहीं रोक पायी है, क्योंकि सजा हमारी करुणा से नहीं है, सजा हमारे क्रोध से निकल रही है। क्रोध से कोई परिवर्तन कभी भी नहीं होता है और क्रोध से अगर परिवर्तन जबरदस्ती थोप भी दिया जाय तो बहुत जल्दी विद्रोह शुरू हो जाता है, बगावत शुरू हो जाती है। और क्रोध को कितनी देर थोपा जा सकता है, आज नहीं कल क्रोध को शिथिल होना पड़ता है।

रूस में एक क्रान्ति हुई, जो क्रोध से हुई, करुणा से नहीं। तीस, पैंतीस, चालीस वर्ष तक उन्होंने कोड़े के बल पर क्रान्ति को बचाने की

कोशिश की, बन्दूक के बल पर क्रान्ति को बचाने की कोशिश की। अंदाज किया जाता है कि कोई साठ लाख से एक करोड़ लोगों तक की रूस में हत्या की गयी क्रान्ति के बाद। क्रान्ति को बचाने के लिए यह हत्या करनी पड़ी। कोई हर्ज नहीं, अगर क्रान्ति बच जाय तो समझ में आता है। लेकिन इतनी हत्या के बाद इतने लोगों को इतना कष्ट, इतनी पीड़ा देने के बाद अब वहाँ क्रान्ति शिथिल होने लगी, क्योंकि इस तरह की जबरदस्ती से कोई क्रान्ति कितनी देर टिकाई जा सकती है। वापस रूस व्यक्तिगत पूँजी को बाँटने की तरफ सोचने लगा है। मकान व्यक्तिगत अब हो सकता है और कार भी अब व्यक्तिगत हो सकती है। और ऐसा लगता है कि आने वाले पचास वर्षों में रूस और अमरीका में फर्क करना बहुत मुश्किल हो जायगा कि कौन समाजवादी है और कौन पूँजीवादी। क्योंकि अमरीका में भी पूँजीवाद को जबरदस्ती थोपने की कोशिश मुश्किल हुई जा रही है। वे धीरे-धीरे न मालूम कितनी चीजों का राष्ट्रीयकरण करते चले जा रहे हैं! इधर रूस में जबरदस्ती समाजवाद थोपने की बात मुश्किल होती चली जा रही है। धीरे-धीरे पूँजीवाद को मौका दिये चले जा रहे हैं। पचास साल में वे एक जगह आ जायेंगे, जहाँ दोनों के बीच फासला करना मुश्किल होगा। नाम के फासले रह जायेंगे—एक समाजवादी होगा, एक पूँजीवादी होगा, लेकिन फासले नहीं रह जायेंगे।

जबरदस्ती किसी भी चीज को बहुत देर तक नहीं ठहराया जा सकता है। और एक मजा है कि जिस चीज को हम जबरदस्ती ठहराते हैं, बहुत जल्दी पेंडुलम उलट जाता है। अगर आप किसी दुश्मन की छाती पर बैठ गये हैं जबरदस्ती और पूरी ताकत से उसको दबा रहे हैं, अगर वह होशियार है और चुपचाप पड़ा रहे और ताकत न लगाये तो थोड़ी देर मे आप थक जायेंगे, क्योंकि आपको ताकत लगानी पड़ी है और वह ताकत को इकट्ठा कर लेगा उतनी देर में। बहुत जल्दी वह मौका आयेगा कि आप नीचे पड़े होंगे और वह आपकी छाती पर बैठा होगा। क्योंकि जो श्रम करता है, वह थक जाता है और जो नीचे दबा होता है, वह विश्राम कर लेता है। इसलिए करवटें बदलते रहते हैं। क्रोध और प्रतिशोध से

क्रान्ति नहीं होती। सिर्फ वह करवट बदलता रहता है। करवट बदलने से कोई मतलब नहीं है।

क्रान्ति से मेरा मतलब है, मनुष्य का हमने आज तक जैसा निर्माण किया है, उसमें भूल हो गयी है। उस भूल की वजह से हम बहुत दुःख और बहुत पीड़ा और चिन्ता उठा रहे हैं। उस भूल के कारण पूरी मनुष्य जाति पागल होने के करीब पहुँच गयी है। उस भूल को समझकर, उस भूल को पहचान कर, उस भूल को देखकर स्वभावतः करुणा पैदा होगी, क्योंकि वह भूल हमने ही मिलजुल कर की है। यह भाव हमने ही मारे, चाहे नींद में मारे हों, चाहे बेहोशी में मारे हों। हमने अपने ही पैर अपने हाथ से काट लिये हैं और हमने अपनी आँखें अपने हाथों से फोड़ ली हैं और अपने को सब तरह से अपंग कर लिया है। यह मनुष्य की जो अपंग स्थिति है, पैरालाइज्ड, लकवा लगी हुई, सड़क पर घिसटती हुई, घावों से भरी हुई—इसमें हम ही जिम्मेवार हैं। अगर यह प्रतीति हो तो करुणा पैदा होगी।

करुणा का मतलब यह नहीं है कि किसी और पर करुणा पैदा होगी। करुणा का मतलब हम अपने पर करुणा कर पायेंगे। क्रोध असंभव हो जायगा। और अगर ऐसी करुणा पैदा हो तो परिवर्तन अनिवार्य है। अगर हमें दिखायी पड़ जाय कि कुछ गलत हो गया है तो गलत को फिर खींचने का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। वह अपने-आप गिर जायगा। करुणा से आने वाली क्रान्ति का अर्थ है कि हमें कुछ तोड़ने-फोड़ने का उतना सवाल नहीं है, जितना समझने का सवाल है। अगर समझ पूरी हो जाय तो शायद चीजें अपने आप छूट जायें, टूट जायें, अलग हो जायें। इतनी समझ विकसित हो सकती है। अगर विकसित करने की बात है। और वह समझ विकसित हो सकती है। अगर हम अपने दुःखों के मूल कारणों की खोज करें तो समझ के विकसित होने में कोई बाधा नहीं।

एक मित्र ने पूछा है कि आप करुणा, अहिंसा, दया, प्रेम इन शब्दों में क्या फर्क करते हैं? ये तो सब एक ही अर्थ रखते हैं। असल में ये एक ही अर्थ नहीं रखते। इनमें बहुत बुनियादी फर्क है।

सही अर्थों में दो समानार्थक शब्द होते ही नहीं हैं। कितने ही समानार्थक मालूम पड़ते हों, उनमें कुछ बुनियादी फर्क होता है, इसलिए दो शब्द ईजाद करने पड़ते हैं। अब जैसे प्रेम और अहिंसा और करुणा और दया, इन्हें थोड़ा समझ लेना उपयोगी है, क्योंकि हम इन शब्दों से बहुत ज्यादा भरे हुए हैं।

अहिंसा का मतलब है दूसरे को दुःख न पहुँचाना। वह बिल्कुल निगेटिव है। एक आदमी किसी को प्रेम किये हुए भी अहिंसक हो सकता है, क्योंकि किसी को दुःख न पहुँचाना, इतना ही अहिंसा शब्द का अर्थ है—किसी की हिंसा न करना, किसी को दुःख न पहुँचाना।

लेकिन प्रेम पॉजीटिव है। प्रेम का मतलब है किसी को सुख पहुँचाना। प्रेम का मतलब यह नहीं है कि किसी को दुःख न पहुँचाना। प्रेम का मतलब है किसी को सुख पहुँचाना।

तो प्रेम तो आयेगा किसी को सुख पहुँचाने से। और अहिंसक सिकुड़ जायगा कि किसी को दुःख न पहुँचे, काफी है। अगर आपके रास्ते पर काँटे बिछे हैं तो प्रेम उन्हें आकर उठायेगा। अहिंसक आपके रास्ते पर काँटे नहीं बिछायेगा, बस इतना ही है। लेकिन आपके रास्ते पर पड़े काँटे को उठाने नहीं आयेगा अहिंसक, क्योंकि अहिंसक को आपको दुःख नहीं पहुँचाना, उतना ही ध्यान रखना पर्याप्त है। शर्त ही इतनी है कि आपको दुःख नहीं पहुँचाना है। और यह भी, आपको दुःख क्यों नहीं पहुँचाना है, क्या इसलिए कि आपसे प्रेम है? नहीं, यह दुःख इसलिए नहीं पहुँचाना है कि आपको दुःख पहुँचाने से मेरे नर्क जाने की संभावना है। आपको दुःख पहुँचायेंगे तो मेरे नर्क में सड़ने का उपाय हो जायगा। और अगर आपको दुःख न पहुँचाया तो मेरी मोक्ष की सीढ़ी बन जायगी। आपसे कोई प्रयोजन नहीं है अहिंसक को। अहिंसक को प्रयोजन है अपने से। वह इस फिक्र में लगा है कि मैं मोक्ष कैसे जाऊँ, नर्क से कैसे बचूँ इसलिए किसी को दुःख नहीं पहुँचाना है। दुःख पहुँचाने से कहीं नर्क न हो जाय।

लेकिन प्रेम का मतलब बहुत भिन्न है। प्रेम का मतलब यह है कि किसी को सुख पहुँचाना है। और किसी को सुख पहुँचाने में ही हमारा

सुख है। और तब प्रेम आपको स्वर्ग पहुँचाने के लिए नर्क जाने के लिए भी तैयार हो सकता है, लेकिन अहिंसक आपको सुख पहुँचाने के लिए नर्क जाने को तैयार नहीं हो सकता है। अहिंसक आपको दुःख नहीं पहुँचाता, ताकि उसके स्वर्ग जाने की तैयारी पूरी हो सके। अहिंसा निषेध है, निगेटिव है, प्रेम पॉजीटिव है, विधायक है।

लेकिन प्रेम और करुणा में भी बहुत फर्क है। प्रेम का अर्थ है कि हम किसी को सुख पहुँचाना चाहते हैं और किसी के सुख में भागीदार होना चाहते हैं। करुणा का अर्थ है कि हम सबके दुःख में भागीदार हैं और सबका दुःख हमें दिखायी पड़ गया है और चित्त करुणा से भर गया है।

फर्क को समझ लेना।

प्रेम का अर्थ है : सबके सुख में भागीदार होना चाहते हैं।

करुणा का अर्थ है : सबके जीवन में जो सुख है, उसमें हम हिस्सेदार हैं, इसकी प्रतीति, इसका बोध, इसकी सफरिंग, इसकी पीड़ा।

तो प्रेम में तो एक आनन्द है। करुणा में एक पीड़ा है। प्रेम में एक रस है, करुणा में एक घाव है। करुणा एक फोड़ा की तरह दुःखता हुआ घाव है, प्रेम एक फूल है। करुणा एक काँटा की तरह चुभन है, इसलिए प्रेम और करुणा समानार्थी नहीं है।

करुणा और दया तो बहुत ही भिन्न बातें हैं।

करुणा का अर्थ है : सबके दुःख की प्रतीति और उस दुःख में मैं भी जिम्मेदार हूँ इसकी प्रतीति।

दया में? दया में दूसरे के दुःख की प्रतीति है। लेकिन दूसरा अपने दुःख के लिए जिम्मेदार है, इसकी भी प्रतीति है और मैं इसके दुःख को दूर करने का थोड़ा बहुत उपाय कर रहा हूँ, इसके अहंकार का भी बोध है। इसलिए दया करने वाला ऊपर खड़ा होता है। दया करने वाला दान दे रहा है, दया करने वाला कृपा कर रहा है, दया करने वाला बहुत सूक्ष्म अपमान कर रहा है, जिसके साथ दया कर रहा है। दया शब्द बहुत बेहूदा और कुरूप है, बहुत अच्छा नहीं है। इसलिए भूल कर भी आप दया मत करना, क्योंकि जिस पर भी आप दया करेंगे, उसका अपमान करेंगे ही।

प्रेम करना समझ में आ सकता है, लेकिन प्रेम में बड़ा फर्क है। जब प्रेम किसी को देता है तो ऐसा अनुभव नहीं करता है कि मैंने दिया। प्रेम सदा ऐसा ही अनुभव करता है कि जितना देना चाहिए था, उतना नहीं दे पाया। एक माँ से पूछें कि तूने अपने बेटे के लिए कितना किया। वह आँख से आँसू बहाने लगेगी और कहेगी कि मैं कुछ भी नहीं कर पायी। जो कपड़े मुझे देने थे, वह नहीं दे पायी, जो खाने मुझे खिलाने थे, वह नहीं खिला पायी, जो शिक्षा मुझे देनी थी, वह मैं नहीं दे पायी। माँ एक पूरी की पूरी फेहरिस्त बता देगी, जो वह नहीं कर पायी। लेकिन जायें, एक धर्मादा कमेटी के सेक्रेटरी से पूछें कि आपने गरीबों के लिए क्या-क्या किया, तो वह पूरी फेहरिस्त बता देगा कि हमने यह किया, हमने यह किया। जो उन्होंने नहीं किया, वह भी उसमें जोड़ देंगे कि हमने यह किया। दया करने वाला कहता है, हमने यह किया। वह अहंकार की तृप्ति कर रहा है। प्रेम करने वाला कहता है, हम यह नहीं कर पाये, करना था। उसका अहंकार टूट गया है।

प्रेम अहंकार तोड़ जाता है, दया अहंकार मजबूत कर जाती है।

यह सब शब्द बड़े अलग-अलग हैं। ये समानार्थी नहीं हैं। इनके पीछे गहरे भेद हैं। दया से कोई क्रांति नहीं होती। इसलिए हिन्दुस्तान में दया पाँच हजार साल से चल रही है, लेकिन क्रांति नहीं हुई है। दया पुरानी है। हम बड़े दयावान लोग हैं और जैसे कि दयावान लोग खतरनाक होते हैं, हम खतरनाक हैं। हम पाँच हजार साल से दया कर रहे, दान कर रहे हैं। हम कह रहे गरीब पर दया करो, बीमार पर दया करो। क्यों? क्योंकि गरीब पर दया करने से आपके स्वर्ग की सीढ़ी उपलब्ध होगी!

करपात्री जी ने एक किताब लिखी है। बहुत अद्‌भुत किताब है। उसे खूब सबको पढ़ लेना चाहिए। उस किताब में उन्होंने समाजवाद का विरोध किया है और कहा है, समाजवाद के विरोध के कई कारण हैं। उसमें एक कारण यह है कि समाजवाद में कोई गरीब नहीं रह जायगा कोई अमीर न रह जायगा तो फिर दया कौन करेगा, दान कौन करेगा? दया कौन लेगा, दान कौन लेगा? और बिना दान के मोक्ष असंभव है, इसलिए समाजवाद में फिर मोक्ष संभव न रह जायगा! अगर मोक्ष चाहिए तो समाजवाद मत आने देना। अगर मोक्ष चाहिए तो गरीब को गरीब बनाकर रखना और सड़क पर भिखमंगे को खड़ा रखना, क्योंकि उसी के कंधे पर दया करके आप मोक्ष जा सकेंगे और तो कोई रास्ता नहीं।

ये दया करने वाले लोग हैं, इनमें करुणा है? इनकी बात सुनकर तो ऐसा लगता है कि करुणा का इनमें कहीं कोई पता नहीं। वे यह कह रहे हैं कि गरीब को रखना पड़ेगा, नहीं तो दान कौन लेगा! आज रूस में कोई दान तो नहीं लेगा। अगर आप किसी को दान देने जायेंगे, तो हो सकता है पुलिस में पकड़कर रिपोर्ट लिखवा दे कि यह आदमी हमको दान देने की कोशिश कर रहा है। हमारा अपमान करना चाहता है। आज कोई भीख माँगने हाथ तो नहीं फैलायेगा आपके सामने। आज रूस में दानी होने का कोई उपाय नहीं। तो करपात्री जी ठीक कहते हैं। शास्त्रों में यही लिखा है कि बिना दान के मोक्ष नहीं, क्योंकि दान सबसे बड़ा धर्म है। तो रूस में सबसे बड़े धर्म की तो जड़ कट गयी। तो वह ठीक कह रहे हैं। शास्त्र के हिसाब से बिल्कुल ठीक कह रहे हैं कि अगर मोक्ष को बचाना है तो गरीब को बचाओ, भिखमंगे बीमार को बचाओ। बीमार रहेगा, तब तो अस्पताल बना पाओगे। और जब गरीब रहेगा, तभी तो धर्मशाला काम आयेगी। और जब भिखमंगे भीख माँगेंगे, तब दया करने वाले लोगों को मजा आयेगा, नहीं तो सब मुश्किल हो जायगा।

दया करने वाले में करुणा नहीं है, दया करने वाले में बहुत गहरी कठोरता और क्रूरता है। वह दया में भी रस ले रहा है। वह जब दो पैसे आपको दे रहा है तो दो हजार रुपये का अहंकार वापस खरीद ले रहा है। वह दो पैसे इसीलिए चिल्ला कर देता है, अखबार में खबर करके देता है, पत्थरों पर खोद कर देता है! धर्मशालाओं पर पत्थर लगा देता है कि मैंने दिये! उसे रस इसमें नहीं है कि कोई पीड़ित था, उसे रस इसमें है कि उसने किसी की पीड़ा दूर करने का बड़ा भारी काम किया है। दया

दया क्रांति नहीं लाती, इसलिए भारत में क्रांति नहीं आ सकी।

बिल्कुल क्रांति को रोकती है, क्योंकि दया भिखमंगे को दो पैसे दे देती है, लेकिन भिखमंगे क्यों पैदा होते हैं, इसकी तलाश में नहीं जाती। और भिखमंगे को दो पैसे मिल जाते हैं तो भिखमगा भी राहत अनुभव करता है। वह भी उस सीमा पर नहीं पहुँच पाता कि दान देने वाले की गर्दन पकड़ ले और कहे कि दान नहीं लेंगे। और कहे कि पहले हमारी जेब काटते हो और फिर हमको दान देते हो। वह कहे कि पहले हमें भिखमंगा बना देते हो और फिर दान देने आते हो। वह कहे कि पहले तो हमें चूस लेते हो और फिर हमारे लिए अस्पताल बनाते हो। खून का दान चल रहा है—यह जाल कैसा है ?

नहीं, दया यह भी नहीं होने देगी। दया कान्शोलेशन बन जाती है। और गरीब को लगता है कि अमीर कितना दयावान है। अमीर को बचाने में दया ने जितना काम किया है, उतना और किसी चीज ने काम नहीं किया। अमीर को बचाने में धर्मशालाओं ने जितनी आड़ की है और मंदिरों ने, उतनी और किसी चीज से नहीं की है, क्योंकि ऐसा लगता है कि कितना दयावान है अमीर। लेकिन यह नहीं दिखायी पड़ता है कि धन इकट्ठा करना क्रूरता है ! एक लाख एक आदमी क्रूरता से इकट्ठा करता है, दस हजार रुपये दान करता है, फिर वह महान दानी हो जाता है। फिर हम उसको नमस्कार करते हैं कि वह परम दानी है। लेकिन कोई नहीं पूछता कि दान में जो धन दिया गया, वह आया कहाँ से, वह आया कैसे।

नहीं, दया से क्रान्ति नहीं हो सकती, अहिंसा से भी क्रान्ति नहीं हो सकती, क्योंकि अहिंसा निगेटिव है। अहिंसा से क्रान्ति इसलिए नहीं हो सकती कि अहिसा इतना ही कहती है कि दूसरे को दुःख मत दो। तो कुछ लोग अहिंसक हो जाते हैं, वह दूसरे को दुःख नहीं देते। लेकिन दूसरे के दुःख को दूर करने के लिए वे कोई उपाय भी नहीं करते, दूसरे के सुख की कोई व्यवस्था भी नहीं करते। वे केवल हाथ अलग करके रास्ते से किनारे हट जाते हैं कि हम इस रास्ते पर न चलेंगे, जहाँ दूसरे को दुःख दिया जाता है। बस इतना ही वे करते हैं। वे नकारात्मक लोग हैं, जैसे कोई

आदमी कहे कि दूसरे को बीमार मत करो। ठीक है, हम किसी को बीमार नहीं करेंगे, लेकिन दूसरे लोग बीमार हैं, उनके लिए भी हम कुछ नहीं करेंगे, क्योंकि हमें उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। हमने उनको बीमार नहीं किया है। किसी की आँख मत फोड़ो, यह ठीक है, लेकिन किन्हीं की आँखें फूटी हुई हैं, अन्धा है। उनकी आँखों को ठीक करने का उपाय अहिंसा से नहीं चलता।

अहिंसा की वृत्ति नकारात्मक है।

हिन्दुस्तान में अहिंसा भी चल रही है कोई साढ़े तीन हजार साल से, लेकिन उससे भी कोई हल नहीं हुआ, क्योंकि उसने लोगों को सिकोड़ दिया बुरी तरह। उन्होंने सब तरफ से हाथ खींच लिए। वे पैर फूँक-फूँक कर रखने लगे कि कोई कीड़ा जमीन पर न मर जाय। वे मुँह पर पट्टियाँ बाँधने लगे कि कहीं नाक की गरम हवा से कोई कीड़ा न मर जाय। वे रात करवट नहीं बदलते हैं कि कहीं कीड़ा न मर जायँ। वे पानी छान के पीते हैं कि कहीं कोई कीड़ा न मर जाय। वे हरी सब्जी नहीं खाते हैं कि कहीं कोई कीड़ा न मर जाय। वे रात खाना नहीं खाते, कहीं कोई कीड़ा न मर जाय। उन्होंने सब तरफ से अपने को रोक लिया कि हिंसा न हो जाय। लेकिन जो चल रहा है दुःख, हिंसा, उसे बदलने को वह कहीं भी नहीं जाते। और उसमें उन्हें डर लगता है कि बदलने जायँ तो हिंसा न हो जाय। एक आदमी को घाव है और उसके घाव में कीड़े पड़ गये हैं। अहिंसक आदमी उसके घाव पर मलहम नहीं बाँध सकता, क्योंकि मलहम बाँधने से कीड़े मर जायेंगे। वह अहिंसक आदमी कहेगा कि हमने तो घाव नहीं किया, आप जानें आपका काम जानें। हम कीड़े मारने की झंझट नहीं लेते।

कलकत्ते में मारवाड़ी जैन खाटों में खटमल पड़ जाय तो उनको मारते नहीं रहे हैं, अहिंसक लोग हैं। लेकिन अगर खाट में कोई न सोये तो वे मर ही जायेंगे। तो एक रुपया दो रुपया देकर रात में आदमी किराये पर रख लेते हैं और उस खाट पर सुला देते हैं कि तुम इस पर सो जाओ। खटमल न मर पायें और तुमने अपना काम कर लिया, हमने दो रुपया दे

दिया। तुमसे मुफ्त काम भी नहीं लिया। अहिंसा उसकी पूरी हो गयी। खटमल भी नहीं मरे और उनको खून भी पिलवा दिया, खून के पैसे भी चुका दिये। लीगल रास्ता खोज लिया, कोई झंझट नहीं रही उसमें!

अहिंसक आदमी जीवन के दुःख को नहीं मिटाने आयेगा। उसकी सिर्फ चेष्टा इतनी है कि मैं दुःख न दूँ। लेकिन इतनी चेष्टा अधूरी है। इससे कुछ हो नहीं सकता। प्रेम करने वाले लोग भी सदा से रहे हैं। प्रेम सदा से हैं, प्रेम निरन्तर रहा है। प्रेम सुख देना चाहता है, दूसरे को सुख देना चाहता है। अहिंसा से बहुत ऊपर है प्रेम। दूसरे को सुख देने की खोज करता है।

लेकिन दूसरे को सुख देने की खोज काफी नहीं है, जब तक कि दूसरे के दुःख के बुनियादी कारणों में भी हमारा हाथ है, इसका हमें पता न चल जाय। एक पति अपनी पत्नी को सुख देना चाहता है। वह प्रेम करता है उसे, लेकिन उसका पति होना भी उसकी पत्नी के दुःख का एक हिस्सा है, यह उसे कभी दिखायी नहीं पड़ने वाला है। एक पति अपनी पत्नी को सुख देना चाहता है सब तरह का। वह उसे प्रेम करता है। वह उसे साड़ियाँ ला रहा है, गहने खरीद रहा है, मकान बना रहा है, बड़ी कारें खरीद रहा है, वह अपनी जिन्दगी लगाये दे रहा है उसको सुख देने के लिए। पत्नी सुख नहीं पा रही है। वह पूरी कोशिश कर रहा है, लेकिन उस पति को अगर करुणा हो, प्रेम की जगह और वह देख सके कि पत्नी का दुःख क्या है तो शायद उसका पति होना भी पत्नी के दुःखों में एक कारण है।

जब भी कोई किसी का मालिक बन जाता है तो दुःख देने वाला हो जाता है। मालिक सदा ही दुःख देता है। और जब कोई किसी को बाँध लेता है तो दुःख देने वाला हो जाता है। और जब कोई किसी की परतंत्रता बन जाता है तो दुःख देने वाला हो जाता है। और जब कोई किसी को पजेस कर लेता है और मालकियत कर लेता है, तब दुःख देने वाला हो जाता है। पर यह उसे पता नहीं है।

एक फूल को मैं प्रेम करता हूँ, इतना प्रेम करता हूँ कि मुझे डर

लगता है कि कहीं सूरज की रोशनी में कुम्हला न जाय और मुझे डर लगता है कि कहीं जोर की हवा आये, इसकी पंखुड़ियाँ न गिर जायँ और मुझे डर लगता कोई जानवर आकर इसे चर न जाय और मुझे डर लगता है कि पड़ोसी के बच्चे इसको उखाड़ न लें तो मैं फूल के पौधे को मय गमले के तिजोरी में बन्द करके ताला लगा देता हूँ। प्रेम तो मेरा बहुत है, लेकिन करुणा मेरे पास नहीं है। मैंने पौधे को बचाने के सब उपाय किये धूप से बचा लिया, हवा से, जावनरों से। मजबूत तिजोरी खरीदी, उसको भी मेहनत करके बनाया, ताला लगाकर पौधे को बन्द कर दिया। लेकिन अब यह पौधा मर जायेगा। मेरा प्रेम इसे बचा नहीं सकेगा और जल्दी मर जायेगा। हो सकता था, बाहर हवाएं थोड़ी देर लगतीं और पड़ोसी के बच्चे हो सकता था, इतनी जल्दी न भी आते, और सूरज की किरणें फूल को इतनी जल्दी न मुर्झा देतीं लेकिन तिजोरी में बन्द पौधा जल्दी ही मर जायेगा। प्रेम तो पूरा था, लेकिन करुणा जरा भी न थी।

जगत में प्रेम भी रहा है, अहिंसा भी रही है, दया भी रही है, लेकिन करुणा नहीं। करुणा का अनुभव ही नहीं रहा है। और करुणा का अनुभव आये तो हम जीवन को बदलेंगे। और करुणा से अगर दया निकले तो वह दया न रह जायेगी। उसमें कोई अहंकार की तृप्ति न होगी। और करुणा से अगर अहिंसा निकले तो वह निषेधात्मक न रह जायेगी। वह सिर्फ इतना न कहेगी कि दुःख मत दो, वह इतनी भी कहेगी दुःख मिटाओ भी, दुःख बचाओ भी, दुःख से मुक्त भी करो, सुख भी लाओ। और अगर करुणा से प्रेम निकले तो प्रेम मुक्तिदायी हो जायेगा, बंधनकारी नहीं रह जायेगा।

अब तक का सारा प्रेम गुलामी लाने वाला सिद्ध हुआ है। सब प्रेम ने जंजीरें बाँध दी हैं। हाँ, गरीब आदमी लोहे की जंजीर बाँधता है, अमीर आदमी सोने की जंजीर। अगर करुणा से प्रेम निकलेगा तो वह मुक्ति लायेगा। मैं जिसे प्रेम करता हूँ, उसे मुक्त करूँगा, अगर मेरी करुणा भी उसके साथ है। मैं जिससे प्रेम करता हूँ, उसके जीवन के

संकटों को, कष्टों को, पीड़ाओं को, भीतर की स्थितियों को, समझूँगा, सहयोगी बनूँगा। मैं जिसे प्रेम करता हूँ, अगर वह किसी और को प्रेम करके सुखी होता हो तो मैं सुखी होऊँगा, क्योंकि जिससे मैं प्रेम करता हूँ, उसे मैं सुखी देखना चाहता हूँ।

लेकिन जिसे हम प्रेम कहते हैं, वह बरदाश्त नहीं कर सकेगा। मैं जिसे प्रेम करता हूँ, अगर वह किसी की तरफ प्रेम की नजरों से देख ले तो मैं उसकी गर्दन पकड़ लूँगा और मैं कहूँगा कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ, तुमने दूसरे की तरफ प्रेम की नजर से कैसे देखा? यह करुणा नहीं है, यह अत्यन्त कठोरता है और प्रेम के नाम पर गहरी हिंसा है। इसलिए प्रेमी एक दूसरे के साथ जितने हिंसक हो जाते हैं, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और जब प्रेमी हिंसक होते हैं तो उन जैसा हिंसक और कोई भी नहीं हो सकता है। और जब वे एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या से भर जाते हैं, तब वे जितना कष्ट जगत में पैदा करते हैं, उतना कोई भी नहीं करता। नहीं, करुणा से अगर प्रेम निकले तो प्रेम मुक्तिदायी होगा। और करुणा से दया निकले तो निरहंकार होगी। और करुणा से अहिंसा निकले तो विधायक होगी, निषेधात्मक नहीं होगी। इसलिए मैंने करुणा पर जोर दिया है। वह सिर्फ शब्दों का ही फासला नहीं है, भीतर कोई दृष्टि है। इसलिए मैंने कहा, करुणा की छाया है क्रांति। अहिंसा की नहीं तथाकथित प्रेम की नहीं, तथाकथित दया की नहीं।

एक मित्र ने पूछा है कि मैं निरंतर कहता हूँ कि हम सब परमात्मा में, प्रभु में, सत्य में एक हो जायें। कहाँ है वह सत्य, कहाँ है वह प्रभु, कहाँ है वह परमात्मा, कैसा है वह?

किसको कहते हैं परमात्मा, इसे भी थोड़ा समझ लेना उचित है, क्योंकि मनुष्य के जीवन में जो क्रांति लानी है, उसमें अगर प्रभु की मौजूदगी न रही तो वह क्रांति बहुत गहरी न हो सकेगी। अगर उस क्रांति को गहरी करनी है और जड़ मूल तक ले जानी है तो उसमें प्रभु का हाथ और मौजूदगी बहुत जरूरी है। प्रभु-विहीन क्रांतियाँ हो गयी हैं। असल में जिन्हें मैं कहाँ रहा हूँ क्रोध से निकली हुई क्रांतियाँ, वे प्रभु-विहीन क्रांतियाँ हैं।

और जिसे मैं कह रहा हूँ करुणा से आने वाली क्रांति, वह प्रभु की मौजूदगी को स्वीकार करके आने वाली क्रांति है। ऐसी क्रांतियाँ हो गयी हैं जिनमें ईश्वर को हमने स्वीकार नहीं किया है, बल्कि क्रांतिकारी अक्सर ईश्वर को इन्कार करता रहा है। उसे ऐसा लगता रहा है कि ईश्वर भी क्रांति में बाधा है। उसने ईश्वर को भी तोड़ देना चाहा है। वह ईश्वर पर भी क्रोधित हो गया है। उसे लगा है कि इतनी गरीबी है दुनिया में, तो कहाँ है ईश्वर, कैसा है ईश्वर! इतनी पीड़ा है तो ईश्वर नहीं हो सकता है। उसने ईश्वर को भी पोंछ देना चाहा है।

लेकिन पीड़ा और गरीबी और तकलीफ ईश्वर के कारण नहीं है, हमारे कारण है। और ईश्वर की अनुकंपा इतनी है कि वह हमें सब तरह से स्वीकार किये हुए है। वह हमें भटकने के लिए भी और पाप करने के लिए भी स्वीकार किये हुए है। और स्वतंत्रता का कोई मतलब नहीं होता है। अगर ईश्वर हम सबको जन्म लेने के पहले ही चिट्ठी लिखकर दे दे और कहे कि आपको अच्छे काम करने की पूर्ण स्वतंत्रता है, लेकिन बुरा काम करने की बिलकुल स्वतंत्रता नहीं है। और वह हमसे कह दे कि आपको प्रेम की पूरी स्वतंत्रता है, जितना चाहो प्रेम करो, लेकिन घृणा करने की बिलकुल स्वतंत्रता नहीं है, तो क्या वह स्वतंत्रता स्वतंत्रता होगी? अगर हमसे कहा जाय कि आपको संत बनने की पूरी स्वतंत्रता है, बनो, असाधु बनने की स्वतंत्रता नहीं है, तो संत बनने की स्वतंत्रता भी समाप्त हो जायगी। क्योंकि संत बनने की स्वतंत्रता असंत बनने की स्वतंत्रता से ही जुड़ी हो सकती है, अन्यथा नहीं हो सकती। अगर हमसे कहा जाय कि आपको जागने की पूरी स्वतंत्रता है, लेकिन सोने की नहीं, तो जागने की स्वतंत्रता फौरन खो जायेगी, क्योंकि जागने की स्वतंत्रता सोने की स्वतंत्रता के साथ ही जुड़ी है। अलग-अलग नहीं हो सकती। आदमी को शुभ करने की स्वतंत्रता इसीलिए उपलब्ध है कि उसे अशुभ करने की भी स्वतंत्रता उपलब्ध है। और परमात्मा ने आदमी को इतना स्वतंत्र कर दिया है कि उसने अपने को सबके सामने मौजूद भी नहीं रखा है। यह भी परमात्मा की स्वतंत्रता का उपक्रम है।

हम सब पूछते हैं, ईश्वर सामने क्यों नहीं है ?

अगर ईश्वर सामने हो तो हमारी स्वतंत्रता में पूरी बाधा पड़ेगी। आप एक घर में चोरी करने गये और परमात्मा आप के साथ ही लगा हुआ है। वह आपके बगल में ही खड़ा हुआ है। ऐसे तो वह खड़ा ही हुआ है। लेकिन जिनको वह दिखायी पड़ जाता है कि खड़ा हुआ है, उसकी चोरी मुश्किल हो जाती है। लेकिन हमको दिखायी नहीं पड़ता है, इसलिए स्वतंत्रता है, हम चोरी कर सकते हैं। और सोच सकते हैं कि कोई दिक्कत नहीं, सबको धोखा दे दिया है।

मैंने सुना है, एक फकीर के पास कुछ युवक आये। उन्होंने कहा कि हम अज्ञात की खोज करना चाहते हैं, वह कहाँ है ? जैसा कि इस मित्र ने पूछा है कि कहाँ है वह ईश्वर, कैसा है वह प्रभु ? उन्होंने पूछा। उस फकीर ने कहा, एक छोटा-सा काम कर लाओ, फिर मैं तुम्हें बताऊँगा। चार शिष्य थे, उन्होंने एक-एक कबूतर उनको दे दिया और कहा, यह ले जाओ और जहाँ कोई न देखता हो, जल्दी से कबूतरों को मारकर वापस लौट आओ।

एक शिष्य बाहर सड़क पर गया। दोनों तरफ देखा, भरी दोपहरी थी, कोई भी नहीं था, लोग घरों में सोये पड़े थे। उसने कबूतर को मरोड़ा और भीतर वापस आ गया और कहा यह लीजिये। कोई भी नहीं देख रहा था।

दूसरा शिष्य सड़क पर गया। उसने सोचा कि अभी सड़क पर कोई नहीं है, लेकिन भरी रोशनी है, दोपहरी है, मैं मरोड़ू और कोई आ जाय या खिड़की से झांक ले। तो वह अंधेरी गली में गया, जहाँ कोई द्वार न थे, बड़ी दिवालें थीं। गाँव के किले की मजबूत दीवाल थी पत्थरों की। वह उसकी आड़ में गया। जब वह सब तरह निश्चिन्त हो गया कि अब दूर मीलों तक कोई दिखाई नहीं पड़ता है, तब उसने गर्दन मरोड़ी और वापस आकर गुरू को दे दिया।

तीसरे शिष्य ने सोचा, दिन में कोई न कोई देख ही सकता है। प्रकाश देखने का माध्यम है। वह रात तक रुका, फिर अपने घर के अंधेरे में भीतर द्वार बन्द करके उसने गर्दन मरोड़ी और लाकर गुरू को दे दिया।

लेकिन चौथा शिष्य, महीने भर हो गया, कोई पता न चला। गुरू बहुत चिन्तित थे। अपने शिष्यों को कहते हैं खोजो, कहा गया। महीने भर के बाद उसे जंगल में पकड़ा गया। वह गरीब करीब पागल हालत में था। गुरु के सामने लाया गया। गुरु ने पूछा, वह कबूतर कहाँ है ? वह हाथ में लिये था। उसने कहा, बहुत मुश्किल में डाल दिया। मैं अन्धेरी से अन्धेरी जगह में गया, लेकिन कबूतर की गर्दन पर जब हाथ रखा तो मैंने देखा कबूतर देख रहा है। तब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। फिर मैंने बहुत तरकीबें खोजी, कबूतर की आँख पर पट्टी बाँध दी और एक घनघोर अंधेरे गड्ढे में गया, जहाँ कि पट्टी के भीतर से देखना क्या, पट्टी के बाहर से भी कबूतर को देखना संभव नहीं होता। वहाँ जाकर जब मैंने उसकी गर्दन मरोड़ी, तब मुझे दिखायी पड़ा कि मैं देख रहा हूँ। और गहरे गड्ढे में गया, जहाँ हाथ को हाथ न सूझता था और जब मैं उसे दबाने लगा, तब मुझे अचानक प्रतीत हुआ कि परमात्मा देख रहा है। मुझे मुश्किल में डाल दिया है। यह काम नहीं हो सकता। कबूतर आप वापस ले लें। मैं बिल्कुल पागल हो गया। मैं वह जगह खोज रहा हूँ, जहाँ परमात्मा न हो। सब जगह घूम आया, जंगल, पहाड़, सब देख डाले वह सब जगह है।

उस फकीर ने उन तीन को जो कबूतर को मार लाये थे कहा कि तुम भाग जाओ। तुम अदृश्य को नहीं खोज सकोगे। तुम्हारी आँखें बड़ी स्थूल हैं। तुम सूक्ष्म को नहीं देख सकोगे। आँखों को थोड़ा सूक्ष्म करके आओ। यह युवक कुछ काम कर सकता है। इसकी आँखें सूक्ष्म हैं। यह किसी उपस्थिति को अनुभव करता है। कबूतर की भी उपस्थिति अनुभव करता है, अपनी भी। और सब तरफ से रोक लेता है तो भी इसे किसी की उपस्थिति मालूम पड़ती है।

परमात्मा अद्‌भुत है कि उसने हटा लिया है अपने से हमको—हमसे दूर, अलग, अदृश्य, ताकि हम पूरी तरह स्वतंत्र हो सकें, अन्यथा हम स्वतंत्र न हो पायें। बेटा बाप के सामने सिगरेट नहीं पीता है, बगल के कमरे में जाकर पी लेता है। लेकिन अगर पता चला कि वहाँ परमात्मा

मौजूद है, तो किस कमरे में जायें, कहाँ छिपें, फिर बहुत मुश्किल हो जाय। और निरन्तर यह मालूम होने लगे कि दो आँखें सदा झाँक रही हैं, हर जगह, हर कोने में, तब बहुत मुश्किल हो जायगा। स्वतंत्रा असंभव हो जाय।

मनुष्य पूरी तरह स्वतंत्र हो सके, इस लिए परमात्मा अदृश्य हो गया है। परमात्मा का अदृश्य होना मनुष्य को दी गयी पूरी स्वतंत्रा के आधारभूत कारणों में से है।

लेकिन क्या मतलब है परमात्मा से ?

कोई व्यक्ति, कोई पर्सनलिटी—कहीं कोई छिपा हुआ बैठा है ?

नहीं, इस भाषा में सोचने के कारण ही बहुत कठिनाई हो गयी है। इस भाषा में सोचने के कारण ही हमने मन्दिर बना लिए हैं, मूर्तियाँ बना ली हैं, पूजा चल रही है, भजन कीर्तन चल रहे हैं, जिनका परमात्मा से कोई भी संबंध नहीं है, नहीं हो सकता है, ये हमारे गड़े हुये परमात्मा हैं, जो हमने अपनी कल्पना से गढ़ लिए हैं।

परमात्मा का अर्थ है : समग्र, दी टोटल, वह जो सारा जगत है, सारा जीवन है उसका जोड़।

खंड-खंड हम देखते हैं। एक आदमी है, एक पौधा है, एक जमीन है, एक चांद है, एक पहाड़ है, एक सागर है। खंड-खंड हैं, अलग-अलग हैं। लेकिन सबका अस्तित्व गहरे में जुड़ा हुआ है और संयुक्त है।

दस करोड़ मील दूर है सूरज, लेकिन अभी अगर ठंडा हो जाय तो सुबह फिर कोई पता न चलेगा कि कहाँ गये, हम साथ ही ठंडे हो जायेंगे। दस करोड़ मील दूर है, उसकी किरणें हमें जिलाये हुए है, गरम किये हुए है। ऐसा नहीं है कि थर्मामीटर से फिर आप नापेंगे, सूरज के ठंडे हो जाने पर, तो आपको शरीर ठंडा होता हुआ मालूम पड़ेगा। नहीं, थर्मामीटर भी ठंडा हो चुका होगा। वह भी गर्मी नहीं बतायेगा। आप भी ठंडे हो चुके होंगे। और कोई नहीं होगा जो जान सके कि गरम है। तो सारी गर्मी दस करोड़ मील दूर से चली आ रही है। दस करोड़ मील दूर से हम बंधे हैं। एक फूल खिल रहा है पृथ्वी पर वह सूरज

की किरणों से बँधा है, एक बीज अंकुरित हो रहा है, वह सूरज से बँधा है लेकिन सूरज से ही बँधा है, ऐसा नहीं। और गहरे से गहरे, दूर से दूर तारे से हमारा सम्बन्ध हैं। उससे भी हम बँधे हैं। एक अनंत जाल है अस्तित्व का, जिसमें सब जुड़े हुए हैं।

फूल की एक माला कोई मेरे गले में डाल जाता है। फूल ही फूल दिखाई पड़ते हैं, भीतर का सूत नहीं दिखाई पड़ता है। लेकिन फूल अगर अलग अलग होते तो माला नहीं होती। भीतर कोई सूत है, जो पिरोया हुआ है, इसलिए माला है। यह सारा अस्तित्व पिरोया हुआ है। इस सारे अस्तित्व में हम एक दूसरे के भीतर प्रवेश कर गये हैं। हमें ख्याल में नहीं आता !

आप हैं। आप ने कभी सोचा है कि आप के भीतर करोड़ों-करोड़ों साल का अस्तित्व पिरोया हुआ है। एक छोटा बच्चा माँ के पेट में निर्मित होता है, तो चौबीस अणु पिता से आते हैं उसके पास, चौबीस अणु उसकी माँ से आते हैं। पिता के चौबीस अणु में से उसके पिता के बारह अणु होते हैं, उसकी माँ के बारह अणु होते हैं। पिता के पिता के अणुओं में ६ उसके पिता के पिता के होते हैं, ६ उसकी माँ के माँ के होते हैं और यह सारे अणुओं की यात्रा अंतहीन चल रही है। आप आज ही अचानक पैदा नहीं हो गये, हजारों, लाखों साल की श्रृंखला की एक कड़ी हैं आप। एक लम्बी श्रृंखला की कड़ी हैं, जो जुड़ी हुई है। और ऐसा नहीं है कि आप पीछे से ही जुड़े हैं, भविष्य में भी जोड़ जारी रहेगा। वहाँ भी यात्रा जारी रहेगी। आज आपकी बगिया में कोई फूल खिला है, वह अचानक नहीं खिल गया है। उसके पीछे की यात्रा अनंत है।

और अब तो वैज्ञानिक सोचते हैं कि किसी न किसी दिन जब पहली दफा कोई भी जमीन पर आया होगा तो वह पैदा कैसे हो गया होगा। जरूर किसी दूसरे ग्रह-उपग्रह से उड़कर आया होगा या कोई दूसरा ग्रह-उपग्रह से किसी यात्री के साथ चला आया होगा। अभी हमारे यात्री चाँद पर गये तो लौटकर हमने उनकी महीने भर परीक्षा की और जाँच पड़ताल की कि चाँद से वे कोई कीटाणु तो नहीं ले आये। लेकिन चाँद पर वे कुछ कीटाणु जरूर छोड़ आये होंगे, जिसकी कोई परीक्षा नहीं हुई। और हो सकता है चांद से हमारा संबंध टूट जाय, आगे न हो, और वे कीटाणु विकसित होते रहें और करोड़ों साल में वहाँ एक प्राणी पैदा हो जाय। कभी न कभी किसी अंतहीन काल में इस पृथ्वी पर, किसी दूसरे ग्रह से जीवन के कोई पहले चरण इसी भाँति आये होंगे। उनसे हमारा जोड़ है।

अंतहीन शृंखला है, उससे हम जुड़े हैं। यह शृंखला बहुत दिशाओं में, मल्टी डाईमेंशनल, बहुआयाम में फैली हुई है। पीछे-आगे, चारों तरफ, नीचे-ऊपर, सब तरफ जितनी दिशाएँ हैं, सब दिशाओं में हम जुड़े हुए हैं। उन सब दिशाओं के जोड़ पर हमारा छोटा-सा विन्दु का अस्तित्व है और इस अस्तित्व को हम कहते हैं 'मैं'। 'मैं' कहने का अधिकार सिवाय परमात्मा को और किसी को भी नहीं हो सकता है, क्योंकि हम 'मैं' कह भी न पायेंगे और बिखरने का क्षण आ जायगा। लेकिन सब बिखरता रहे, सब बनता रहे, जिसमें बिखरता है, और जिसमें बनता है, वह है—वह है। वह न बिखरता है, न वह बनता है।

एक सागर है, उस पर लहरें बन रही हैं। अभी एक लहर उठी कितनी शान से, कितनी अकड़ से। आकाश को छूने की हिम्मत से, आकांक्षा से। कितनी जोर से उछलकर उसने सागर के चारों तरफ देखा है और पास-पड़ोस की छोटी लहरों से कहा है, देखती हो, 'कौन हूँ मैं! ?' लेकिन जब वह कह रही है, देखती हो, 'कौन हूँ मैं', तभी बिखराव शुरू हो चुका है। वापस गिरना शुरू हो गयी है। वह कह भी नहीं पायी है और गिरना शुरू हो गया है! उसका कहना पूरा भी न हो पायेगा। दूसरी लहरें शायद सुन भी न पायेंगी और लहर खो जायेगी। सागर में लहरें उठती रहती हैं, खोती रहती हैं।

आप ऐसा तो सोच सकते हैं कि सागर हो बिना लहरों के, ऐसा भी हो सकता है कि शांत हो, कोई लहर न हो, सागर हो। लेकिन ऐसा आप नहीं सोच सकते हैं कि लहरें हों बिना सागर के। समुद्र की छाती पर लहरें उठती, बनती, बिगड़ती रहती हैं। अगर हम लहर, लहर को देखते रहें तो सागर का हमें कोई पता न चलेगा। हम सब लहर को, जोड़ को देख लेते हैं, इसलिए सागर का पता चलता है। परमात्मा का अर्थ है, वह जो अस्तित्व की अनंत अनंत लहरें हैं; उनको हम देखने, जोड़ने में समर्थ हो जायँ तो परमात्मा का पता चलता है। और अगर समग्र को न देख सकें, एक-एक टुकड़े को देखते रहे तो हमें आदमियों का पता चल जायगा, पौधों का पता चलेगा, पत्थर का पता चलेगा, पहाड़ों का पता चलेगा, लेकिन परमात्मा का पता नहीं चलेगा।

परमात्मा है सबका जोड़। अगर सारे जगत के समस्त अस्तित्व को जोड़ा जा सके तो जो हिसाब आयेगा नीचे, वह परमात्मा है। लेकिन वह

पूरी तरह जोड़ा नहीं जा सकेगा, क्योंकि वह अंतहीन और अनंत है, इसलिए हम सिर्फ कंसीव कर सकते हैं, हम केवल भाव के अनुभव कर सकते हैं उस जोड़ का। लेकिन किसी दिन हम जोड़कर बता नहीं सकते कोई फार्मूला बनाकर कि इतना रहा जोड़। इसके भी कुछ कारण हैं कि हम नहीं बता सकते। इसे थोड़ा सोच लेना उपयोगी होगा। ईश्वर को समझने में आधारभूत होगा।

हम कभी नहीं सोच सकते कि कोई चीज असीम हो सकती है। हमारी कल्पना सीमा पर जाकर रुक ही जाती है। हम कितनी ही दूर सीमा को ले जायें फिर भी सीमा हटती है, मिटती नहीं। अगर हम सोचें कि जगत असीम है, तो हम इतना कर सकते हैं कि बहुत करोड़ों-करोड़ों, अरबों-अरबों मीलों दूर कहीं सीमा होगी. लेकिन हमारी बुद्धि में सीमा नहीं होगी यह पकड़ में नहीं आता! हम कहेंगे, और थोड़ा आगे, और थोड़ा आगे। जैसे छोटे बच्चे को कहानी कहो तो वह पूछता है, फिर और, फिर और। वह पूछता चला जाता है। उसकी समझ में यह नहीं आता कि बात एकदम खत्म कैसे हो जायगी। आगे तो होगा न कुछ। और हम भी अगर पूछते हैं तो हम सोच सकते हैं कि और आगे, और आगे। लेकिन हम यह नहीं सोच सकते कि ऐसा भी है यह जगत कि इसकी कोई सीमा ही न होगी। इसे सोचने में सिर घूम जाता है। इसे कभी सोचना चाहिए, सिर को कभी-कभी घुमाना भी चाहिए, ताकि सिर की जो अकड़ है, वह थोड़ी कम हो जाय। सिर को बहुत अकड़ है, वह सोचता है, सभी हम सोच सकते हैं। वह नहीं सोच सकता। हम असंख्य नहीं सोच सकते।

बड़े से बड़ा गणितज्ञ भी सोचेगा तो बड़ी से बड़ी संख्या सोचेगा। वह कहेगा और इतना जोड़ दें और इतना जोड़ दें। लेकिन कोई कहता है असंख्य, तो हमको असंख्य का मतलब होता है ऐसा, जो गिना न जा सके। लेकिन हम सोचते हैं, अगर मेहनत की जाय तो गिना जा सकता है। अगर कोई आपसे पूछे कि आदमी के सिर पर कितने बाल हैं तो आप कह देंगे कि असंख्य। उसका यह मतलब नहीं कि असंख्य है। बाल तो गिने जा सकते हैं। कुछ बुद्धिमानों ने मेहनत करके गिन भी लिए। कुछ बुद्धिमान

ऐसी ही नासमझी के काम भी किया करते हैं। आदमी की खोपड़ी के बाल गिने जा सकते हैं, आकाश के तारे गिने जा सकते हैं, लेकिन हम यह नहीं सोचते कि ऐसा भी हो सकता है कि संख्या समाप्त ही न होती हो। कहीं भी समाप्त न होती हो। तब सिर घूम जाता है। सीमा समझ में आती है, असीम समझ में नहीं आता। शुरुआत हुई यह समझ में आता है। यह समझ में नहीं आता कि कोई चीज शुरू ही नहीं हुई। शुरू ही नहीं हुई, तो अन्त भी नहीं होगी। अगर बुद्धि से नापने जायेंगे तो परमात्मा की पकड़ कभी न आ पायेगी, क्योंकि बुद्धि न असीम को सोच सकती, न पूर्ण को सोच सकती, न अनन्त को सोच सकती।

लेकिन अनन्त को सोचने की कोशिश करें, यह भी एक ध्यान का प्रकार है। अनन्त को सोचें और सोचते चले जायें और सीमाओं को आगे हटाते जायें हटाते जायें और अन्ततः मिटा देने की कोशिश करें। कोई भी सीमा नहीं है। सीमा मिटी कि भीतर बुद्धि भी मिट जायगी। ये दोनों एक साथ मिट जाते हैं। वहाँ सीमा मिटी, यहाँ बुद्धि मिटी। वहाँ प्रभु और अनन्त मिटा, यहाँ बुद्धि मिटी। वहाँ संख्या मिटी, यहाँ बुद्धि मिटी। और जिस क्षण बुद्धि मिट जाती है, उस क्षण असीम, अनन्त, समग्र, का बोध शुरू हो जाता है। वह बोध परमात्मा का बोध है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं, समग्र, जोड़ का नाम है। लेकिन वह जोड़ भी हमारी बुद्धि का कोई गणित नहीं है, हमारी बुद्धि की असफलता है। और अन्त में इतनी ही बात ठीक से समझा दूँ कि बुद्धि की असफलता जहाँ से हो, वहीं से धर्म का प्रारम्भ है। बुद्धि जहाँ पूरी तरह असफल हो जाती है। ध्यान रहे, अगर थोड़ी भी बची रही तो उसने कहा, ठहरो, अभी हम और थोड़ी कोशिश करें। टोटल फेल्योर, जहाँ पूर्ण असफलता आ गयी।

एक मित्र से मैं बात कर रहा था परसों ही रात और मैंने उनसे कहा कि जब पूर्ण असफलता हो जाती है मनुष्य को सोचने में, जब सोचना समाप्त हो जाता है, तब जानना शुरू होता है। जहाँ थिंकिंग समाप्त होता है, वहाँ नोइंग शुरू होती है। जहाँ विचार बन्द होते हैं, वहाँ जानना शुरू होता है। तो उनसे मैं कह रहा था कि जहाँ बुद्धि पूरी तरह असफल हो जाती है। उन्होंने कहा, तब तो मन में बड़ा विषाद मालूम पड़ता होगा। मैंने कहा, अगर विषाद मालूम पड़ता हो तो अब भी पूरी तरह असफलता नहीं हुई, क्योंकि अभी सफलता की कोई आशा मन में शेष है, उसी की वजह से विषाद मालूम होता है। पूर्ण असफलता का अर्थ है कि अब सफलता की कोई आशा भी न रही। आशा भी नहीं, निराशा भी नहीं, असफलता पूरी हो गयी और यह पता चल गया कि यह हो ही नहीं सकता था, यह हो ही नहीं सकता है।

बुद्धि से असीम को जाना नहीं जा सकता। फिर जैसे ही यह पता चल जाय, बुद्धि ठहर कर खड़ी हो जाती है।

कितनी बार हम कहते हैं कि बुद्धि बड़ी चंचल है। बुद्धि चंचल रहेगी। आप ऐसी छोटी-छोटी चीजों पर लगाते हैं। जरा असीम पर लगाकर देखें और आप पायेंगे कि बुद्धि ठहर गयी, फिर वहाँ चंचलता नहीं रहेगी। बुद्धि को आप लगाते हैं इतनी क्षुद्र चीजों पर कि वह चंचल हो ही जायगी, ऊब जायगी, दूसरे पर जायेगी, तीसरे पर जायेगी। असीम पर लगा दें बुद्धि को और आप अचानक पायेंगे कि वह असफल हो गयी, जाने को कहीं नहीं रहा, नो व्हेयर टु गो—असीम है, जाऊं कहाँ, कोई सीमा न रही, कोई अन्त नहीं। और जहाँ असीम पर बुद्धि को लगाया जाता है, वहीं बुद्धि टूटकर बिखर जाती है एक्सप्लोजन की तरह, एक विस्फोट की तरह बुद्धि बिखर जाती है। फिर जो शेष रह जाता है, वह परमात्मा है। ऐसा नहीं है कि वह परमात्मा आपके सामने होगा, ऐसा कि आप भी उसमें ही होंगे। ऐसा नहीं कि आप इधर खड़े होंगे, उधर परमात्मा होगा। नहीं, जहाँ आपकी बुद्धि बिखर गयी, तब जो शेष रह जायगा आपमें, आपके बाहर, आपसे दूर, आपके पास, भीतर, बाहर, यहाँ, वहाँ, सब कहीं, जो शेष रह जायगा, वह परमात्मा है।

परमात्मा का दर्शन नहीं हो सकता। ऐसा नहीं कि आप उसका दर्शन कर लेंगे और नमस्कार कर लेंगे। हाँ, रामचन्द्र जी मिल सकते हैं, क्राइस्ट मिल सकते हैं, कृष्ण जी मिल सकते हैं, बुद्ध, महावीर मिल सकते हैं, परमात्मा नहीं मिल सकता। क्योंकि इनको आप अपनी ही कल्पना से

पैदा कर सकते हैं, लेकिन परमात्मा आपकी कल्पना से पैदा नहीं हो सकता। जहाँ कल्पना हारके थक जाती है, विश्राम करने लगती है, वहाँ उसका अनुभव शुरू होता है। और मैं कह रहा हूँ कि इस परमात्मा की उपस्थिति अगर मौजूद रहे तो ही वास्तविक क्रांति हो सकती है, क्योंकि तब हम अस्तित्व की जड़ों तक उतर जाते हैं और जड़ों से रूपांतरण होता है।

प्रभु में जीने के अतिरिक्त और कोई क्रांति नहीं है, प्रभु से सम्बन्धित होने के अतिरिक्त और कोई म्युटेशन रूपांतरण नहीं है। प्रभु से सम्बन्धित होने के अतिरिक्त न कोई क्रांति है, न कोई परिवर्तन, न कोई रूपांतरण, न कोई अनुभव, न कोई आनंद, न कोई आलोक, न सत्य, न कोई मुक्ति। इसलिए प्रभु पर जोर दे रहा हूँ।

इधर मेरे पास मित्र हैं, वह कहते हैं कि प्रभु को बीच में लाने की कोई भी जरूरत नहीं। अगर चल सकता बिना लाये तो ठीक था, लेकिन वह मौजूद है ही। उसे हटा सकते तो भी ठीक था। लेकिन वह हटता नहीं वह मौजूद ही है। हाँ जो देख नहीं रहे, उन्हें पता नहीं चलता है। जैसे अन्धों की एक बस्ती हो और वे कहें कि प्रकाश को बीच में लाये बिना बात नहीं बनेगी और आँख वाला कहे कि मैं बीच में लाता नहीं, वह बीच में है ही। तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता, यह दूसरी बात है और तुम अन्धे हो, फिर भी चलते प्रकाश में ही हो। अन्धे कहें कि प्रकाश की बात ही बीच से हटा दो। तो भी आँख वाला कहेगा, बात हटाने से कुछ फर्क नहीं पड़ेगा, प्रकाश बीच में है ही और अच्छा है कि हम उसे जान ही लें, क्योंकि वह हमें टकराने से बचा सकेगा। हम उसे पहचान ही लें, क्योंकि वह हमारे रास्ते पर साथी बन जायगा। हम उसे देख ही लें, क्योंकि उसे देख लेने के बाद ही चल पायेंगे और ठीक से पहुँच पायेंगे। अन्धे को प्रकाश नहीं दीखता, हमें परमात्मा नहीं दीखता। निश्चित ही किसी अर्थ में हम अन्धे हैं। उस अन्धेपन को तोड़ने का उपाय ही ध्यान है।

ग्वालिया टैंक, बम्बई, २८ नवम्बर १९६९.

६ : शून्य के क्षण

मेरे प्रिय आत्मन,

ध्यान का अर्थ है, समर्पण, टोटल लैट गो।

ध्यान का अर्थ है, अपने को पूरी तरह छोड़ देना।

और जैसे ही कोई व्यक्ति अपने को पूरी तरह छोड़ देता है, वह परमात्मा के हाथों में गिर जाता है। जब तक हम अपने को पकड़े हुए हैं, तब तक परम शक्ति से हमारा मिलन नहीं हो सकता। हमें अपने को छोड़ना ही पड़ेगा। हमें अपने को खो ही देना होगा। हमें मिटना ही होगा, तभी हम उसके साथ एक हो सकते हैं, जो सच में है। जैसे कोई लहर अपने को जोर से पकड़ ले तो फिर सागर में ही हो सकती है, और लहर अपने को छोड़ दे, बिखर जाय, खो जाय, तो वह सागर है ही।

ध्यान कोई क्रिया नहीं है, जो आपको करनी है। ध्यान है, सब क्रियाओं का छोड़ देना। ध्यान कोई अभ्यास नहीं है, जो आप कर सकते हैं। ध्यान है सब अभ्यास का छोड़ देना। ध्यान है बस रह जाना—जैसे हम हैं, जो हम हैं। और कुछ भी न करना। तो इस ध्यान की स्थिति को समझने के लिए पहले दो तीन छोटे प्रयोग हम करेंगे, ताकि आपको भीतर से ख्याल में आ सके कि ध्यान क्या है। फिर उसके बाद हम ध्यान के लिए बैठेंगे।

ध्यान को शब्द से समझाना कठिन है। कोई क्रिया होती, अभ्यास होता, तो शब्द से बताया जा सकता। लेकिन ध्यान का थोड़ा सा अनुभव ख्याल में ले आना आसान है, तो हम तीन छोटे से प्रयोग करेंगे, जिनसे ख्याल आ सके कि ध्यान का भाव क्या है। फिर उसके बाद हम ध्यान के लिए बैठेंगे।

पहला प्रयोग है—वह समझ लें, फिर पाँच मिनट हम इसका प्रयोग

करेंगे। फिर दूसरा, फिर तीसरा और फिर चौथा प्रयोग हम ध्यान का करेंगे।

पहला प्रयोग है, उसे समझना ही है भीतर प्रयोग करके। तो मैं इधर कहूँगा, आप उधर प्रयोग करेंगे। एक तो थोड़े-थोड़े फासले पर बैठें, कोई किसी को छूता हुआ न हो। किसी को भी कोई छू न रहा हो। थोड़े आगे आ जायें, थोड़े पीछे हट जायें। थोड़े घास पर हट जायें, लेकिन कोई किसी को स्पर्श न करता हो। फिर आँख आहिस्ता से बन्द कर लें। जोर से बन्द नहीं करनी है, आँख पर भी जोर न पड़े। बहुत धीमे से आँख बन्द करनी है। जैसे पलक गिर आती है, आँख बन्द हो गयी है। आँख पर भी जोर नहीं होना चाहिए, और अपने को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। आँख बन्द कर दें और ढीला छोड़ दें। किसी तरह का शरीर पर कोई तनाव न रह जाय।

अब भीतर सिर्फ मैं एक कल्पना करने को कहता हूँ, ताकि ख्याल आ सके कि ध्यान से क्या मतलब है। भीतर देखें कि एक बड़ी नदी बही जा रही है। पहाड़ों के बीच में एक बड़ी नदी बही जा रही है। जोर की लहरें हैं, जोर का बहाव है, पहाड़ी नदी है। भीतर देखें कि दो पहाड़ों के बीच में एक बड़ी नदी बही जाती है। जोर का बहाव है, जोर की आवाज है, लहरें हैं, तेज गति है, और नदी बही जा रही है। देखें—उसे स्पष्ट देखें। नदी तेजी से बही जा रही है। वह साफ दिखाई पड़ने लगे। इस नदी में आपको उतर जाना है, लेकिन तैरना नहीं है, बहना है, जस्ट फ्लोटिंग। इस नदी में आप उतर जायँ और बहना शुरू कर दें। पैर न चलायें, सिर्फ बहे जायँ, बहे जायँ, बहे जायँ। हाथ पैर चलायें ही मत। तैरना नहीं है, सिर्फ बह जाना है।

नदी में हमने अपने को छोड़ दिया है और नदी भागी चली जा रही है और हम उसमें बहे जाते हैं, बहे जाते हैं, बहे जाते हैं। कहीं पहुँचना नहीं है, किसी किनारे पर नहीं जाना है। कोई मंजिल नहीं है, इसलिए तैरने का कोई सवाल नहीं है। बस सिर्फ बहना है। छोड़ दें, और बहें। नदी में बहने की जो अनुभूति होगी, वह फिर ध्यान को समझने में सहयोगी होगी। एक

पाँच मिनट के लिए उस नदी में छोड़ दें और बहते जायें। नदी का कोई अन्त नहीं है, वह बही ही चली जा रही है। आप भी उसमें बहने लगे हैं। कुछ करना नहीं है, हाथ पैर भी नहीं चलाना है, सिर्फ बहते जाना है, बहते जाना है। देखें, नदी बह रही है, आप भी उसके साथ बहने लगे हैं। जरा भी तैरते नहीं हैं, बस बहे जाते हैं।

पाँच मिनट मैं चुप हो जाता हूँ–आप बहने का फ्लोटिंग का अनुभव करें।

बहे जा रहे हैं, बहे जा रहे हैं—नदी में छोड़ दिया है—जरा भी तैरना नहीं है—हाथ पैर भी नहीं हिलाना है। बहते चले जा रहे हैं। जैसे एक सूखा पत्ता नदी में तैरता चला जाता हो, ऐसे ही छोड़ दें। देखें—बहते चले जा रहे हैं, बहते चले जा रहे हैं, बहते चले जा रहे हैं। और बहने के साथ ही साथ एक अनुभव होना शुरू हो जायगा—समर्पण का, सरेंडर का। नदी के साथ छोड़ दें अपने को। लैट गो का एक अनुभव होना शुरू हो जायेगा। बहे—बहते चले जायँ—नदी तेजी से बही चली रही है, लहरें तेजी से भागी जा रही हैं। आप भी नदी में छूट गये हैं और बहे जा रहे हैं। कुछ करना नहीं है, बहते चले जाना है।

बिल्कुल छोड़ दें, और बह जायँ। नदी और तेजी से बही जाती है, और तेजी से बही जा रही है। इसको ठीक से अनुभव कर लें—बहने की इस प्रतीति को। बहने के इस अनुभव को ठीक से समझ लें कि क्या है। फिर ध्यान में वह सहयोगी होगा। ठीक से समझ लें कि यह बह जाने का अनुभव क्या है—जब हम हाथ पैर भी नहीं चला रहे हैं और नदी हमें लिये जा रही है, लिये जा रही है। सब कुछ नदी कर रही है, हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। इसे ठीक से देख लें, ताकि यह ख्याल में आ जाय। सब कुछ नदी कर रही है, हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। हम सिर्फ बहे चले जा रहे हैं।

अब धीरे-धीरे आँख खोल लें, और दूसरा प्रयोग समझ लें, जो मैं कहता हूँ। धीरे-धीरे आँख खोल लें।

ध्यान है समर्पण।

ध्यान है अपने को खो देना।

ध्यान है मिट जाना ।

ध्यान है, सब भाँति विसर्जित हो जाना ।

हमारा गिरना जरूरी है, हमारा मिटना जरूरी है । हमारा होना बाह्य है । जैसे एक वृक्ष को कोई काट दे और वृक्ष गिर जाय, जैसे एक बीज जमीन में पड़ा हो और वह टूटे और मिट जाय, ठीक ऐसे ही हमें भी भीतर से बिखर जाना और मिट जाना है ।

दूसरा प्रयोग इस मिटने की दिशा में समझें । आँख बन्द कर लें और अपने को ढीला छोड़ दें ।

पहली बात हमने समझी बहने की । दूसरी बात मिटने की समझें कि बिल्कुल मिट गये हैं । आँख बन्द करें—बहुत आहिस्ता से आँख बन्द कर लें और शरीर ढीला छोड़ दें । आँख बन्द कर ली है, शरीर ढीला छोड़ दिया है । देखें—सामने ही एक चिता जल रही है । लकड़ियाँ लगी हों, जोर से आग की लपटें पकड़ गयी हैं, चिता जोर से जल रही है । चिता को जलता हुआ देखें । लकड़ियों में आग पकड़ गयी है, चिता का जलना शुरू हो गया है । ठीक से देखें, चिता को । आग पकड़ गयी है, लपटें जोर से ऊपर भाग रही हैं आकाश की तरफ । चिता जल रही है ।

दूसरी बात ख्याल से देखें कि इस चिता को आप देख नहीं रहे हैं, इस चिता पर आप चढ़े हुए हैं । आप भी इस चिता पर चढ़ा दिये गये हैं । सब मित्र प्रियजन आपके चारों तरफ खड़े हैं । आग लगा दी गयी है, इस चिता पर आप चढ़ा दिये गये हैं । लकड़ी ही नहीं जल रही है, आप भी जल रहे हैं । लकड़ियों में लपटें लगी हैं, आप भी जले जा रहे हैं । थोड़ी देर में सब राख हो जायेगा—लकड़ियाँ भी और आप भी । अपने को ही अपनी चिता पर चढ़ा हुआ अनुभव करें । देखें सामने—अपना ही शरीर उस चिता पर चढ़ा है और आग में जल रहा है ।

एक पाँच मिनट इस अनुभव को करें, ताकि मिटने का बोध ख्याल में आ सके । एक दिन तो चिता जलेगी ही कभी—एक दिन आप उस पर चढ़ेंगे ही । सभी को उस पर चढ़ जाना है । तो आज अपने मन के सामने ठीक से देख लें, ताकि चिता की जलती हुई लपटें, आकाश की तरफ

भागती हुई अग्नि शिखाएँ, और आप चढ़े हैं । लकड़ियाँ ही नहीं जल रही हैं, आप भी जले जा रहे हैं । देखें—जोर से लपटें बढ़ती चली जाती हैं । आपका शरीर भी जला जा रहा है—सब मिटा जा रहा है—सब समाप्त हुआ जा रहा है । थोड़ी देर में आग भी बुझ जायेगी, राख रह जायेगी । लोग विदा हो जायेंगे, मरघट खाली सुनसान हो जायेगा ।

अब देखें—चिता पर चढ़े हुए हैं आप । मैं चुप हो जाता हूँ । लपटें जलती रहेंगी । आपको कुछ करना नहीं है । लपटें जलेंगी, जला देंगी, सब राख हो जायेगा । थोड़ी देर भीड़ खड़ी रहेगी मित्रों की, प्रियजन की आसपास, फिर वे भी विदा हो जायेंगे । फिर राख ही पड़ी रह जायेगी । मरघट सुनसान हो जायेगा ।

देखें—शुरू करें—लपटें साफ देखें—उनपर आप भी चढ़ें हैं और जल रहे हैं । कुछ करना नहीं है, जलने में क्या करना है, जल जाना है । आग काम कर देगी, लपटें काम कर देगी । आपको कुछ नहीं करना है, जल जाना है, मिट जाना है । पाँच मिनट के लिए आप चिता पर अपने को चढ़ा हुआ देखते रहना । फिर धीरे-धीरे लपटें बुझ जायेंगी, सब शान्त हो जायेगा ।

यह मिट जाने के अनुभव को ठीक से स्मरण रख लेना तो हम ध्यान में काम कर सकेंगे ।

लपटें बढ़ती जा रही हैं—शरीर जलता जा रहा है—आप भी जलते चले जा रहे हैं । लपटें बढ़ती चली जा रही हैं । आप भी मिटते चले जा रहे हैं—सब धुआँ हो जायेगा, सब राख हो जायेगा, मरघट शान्त हो जायेगा । जरा भी अपने को बचाने की कोशिश मत करना—छोड़ देना लपटों में, ताकि सब जल जाय, सब मिट जाय, सब शान्त हो जाय । देखें—लपटें बढ़ती चली जाती हैं—धुआँ बढ़ता चला जाता है—सब जला जा रहा है—आप भी जले जा रहे हैं, मिटे जा रहे हैं ।

इसे बहुत साफ देख लें, ताकि ध्यान में सहयोगी हो जायँ, क्योंकि ध्यान भी एक तरह की मृत्यु है । देखें—साफ देखें । सब जल रहा है—सब मिट रहा है—सब समाप्त हो रहा है । और आपको कुछ भी नहीं करना

है—बस जल जाना है—मिट जाना है। आग सब काम कर लेगी। आपको क्या करना है—आग सब काम कर दे रही है, जलाये दे रही है। लपटें भागी चली जा रही हैं—सब मिटता चला जा रहा है।

नदी में तो तैर भी सकते थे, यहाँ तो तैर भी नहीं सकते हैं। यहाँ तो तैरने का उपाय भी नहीं है। सब मिटा जा रहा है—लपटें सब समाप्त किये दे रही हैं! देखें—धुआँ रह जायेगा—राख रह जायगी—मरघट सुनसान हो जायेगा—लोग विदा हो जायेंगे।

हवाएँ चल रही हैं—लपटें और जोर से बढ़ी जा रही हैं—हवाएँ लपटों को बढ़ाये दे रही हैं—सब जला जाता है—सब जला जाता है। सब जला जाता है—थोड़ी देर में सब राख हो जायगा।

हवाओं ने लपटें और जोर से कर दी हैं। देखें—सब जल गया है। लपटें बुझती जा रही हैं—राख पड़ी रह गयी है—लोग विदा होने लगे हैं। मरघट पर सन्नाटा छा गया है। हवाएँ फिर भी चलती रहेंगी—राख उड़ती रहेगी—मरघट पर कोई न होगा—लोग बिदा होने लगेंगे।

सब सन्नाटा हो गया है। आप मिट गये हैं—राख ही पड़ी रह गयी है। इसे ठीक से देख लें—यह ध्यान में देखना अत्यन्त जरूरी है। ठीक से देख लें, सब पड़ा हुआ रह गया है। राख ही पड़ी रह गयी है, बुझे हुए अंगारे रह गये हैं, लोग जा चुके हैं—मरघट पर कोई नहीं है। आग भी बुझ गयी है, आप भी मिट गये हैं।

अब धीरे-धीरे आँख खोल लें और तीसरे प्रयोग को समझें और फिर उसे करें। धीरे-धीरे आँख खोल लें और ठीक बैठ जायँ।

पहली बात है, कि समझ लेना, कि बहने का क्या अर्थ है। दूसरी बात है, यह समझ लेना कि मिटने का क्या अर्थ है। और अब तीसरी बात समझनी है—तीसरी बात का नाम है—तथाता, सचनेस।

यह तीसरी बात इन दोनों से ज्यादा आगे ले जाने वाली है। और ये तीन सीढ़ियाँ ठीक से समझ लेंगे। तथाता या सचनेस का मतलब है, 'चीजें ऐसी हैं'। रास्ते पर आवाज आ रही है, क्योंकि रास्ते पर आवाज आयेगी ही। पक्षी शोरगुल कर रहे हैं, क्योंकि पक्षी शोरगुल करेंगे ही। समुद्र की

लहरें किनारे से टकरा रही हैं, आवाज आ रही है, क्योंकि समुद्र की लहरें और क्या कर सकती हैं। जो हो रहा है, वैसा हो रहा है, वैसा है। वैसा हो ही सकता है, अन्यथा कोई उपाय ही नहीं है। तथाता का मतलब है कि कोई विरोध का कारण नहीं है। कुछ अन्य हो जाय, इसकी अपेक्षा की जरूरत नहीं है। जैसा है, वैसा है। घास हरा है, आकाश नीला है, समुद्र की लहरें शोर कर रही हैं, पक्षी आवाज मचा रहे हैं, कौवे चिल्ला रहे हैं, सड़क पर लोग जा रहे हैं, कारों की आवाज हो रही है, हार्न बज रहे हैं—ऐसा है। इस होने की स्थिति में हमारा कोई विरोध नहीं है। इस होने की स्थिति से हम राजी हो गये हैं। हम पूरी तरह राजी हैं कि ऐसा है। न हम चाहते हैं कि कौवे आवाज बन्द कर दें, न हम चाहते कि सड़क पर लोग हार्न न बजायें, न हम चाहते हैं कि समुद्र की लहरें शोरगुल न करें। ऐसा है, जगत ऐसा है।

जगत के सम्बन्ध में भी यह बात ध्यान रखनी है कि ऐसा है और हम इसके लिए पूरी तरह राजी हैं। हमारा कोई विरोध नहीं है। और अपने सम्बन्ध में भी ध्यान रखना है भीतर कि ऐसा है। पैर में चींटी काट रही है तो दर्द हो रहा है—ऐसा है। चींटी काट रही है और पैर में दर्द हो रहा है। इसमें कुछ विरोध नहीं है, ऐसा हो रहा है। ऊपर से धूप आ रही है और पसीने की बूंदें बह रही हैं। ठीक है, धूप आयेगी तो पसीना बहेगा ही। इसमें कुछ विरोध नहीं है, इसमें कुछ करना नहीं है, इसे स्वीकार कर लेना है, ऐसा है।

और जैसे ही हम इसे स्वीकार करते हैं, हमारा विरोध चला जाता है, रेसिस्टेन्स चला जाता है, वैसे ही भीतर कुछ शांत होना शुरू हो जाता है, जो सदा से अशांत रहा है। वह अशांत इसीलिए रहा है कि उसने चाहा कि ऐसा हो। उसने कभी ऐसा नहीं माना है कि ऐसा है। सूरज पड़ रहा है, किरणें आ रही हैं, पसीना बहेगा, धूप लगेगी, ऐसा उसने स्वीकार नहीं किया है। कभी सूरज नहीं होना चाहिए, किरणें गर्म नहीं होनी चाहिए, पसीना नहीं बहना चाहिए, ऐसा मन ने चाहा है। जिसे ध्यान में जाना है, उसे ऐसी आकांक्षा बड़ी बाधा बन जायेगी।

ऐसा होना चहिए, नहीं—जैसा है, है। शान्त होने का एक ही अर्थ है कि जैसा है, है। और हम उसके लिए पूरी तरह राजी हो गये हैं। यह तीसरा बिन्दु है—तथाता।

तो पाँच मिनट, चीजें ऐसी हैं, हमें कुछ करना नहीं है। करने का कोई उपाय भी नहीं है। हम नहीं थे, तब भी चीजें ऐसी थीं। समुद्र तब भी इसी तरह शोर करता रहा, कौवे बोलते रहे, पक्षी चिल्लाते रहे, रास्ता चलता रहा। हम नहीं होंगे, तब भी चीजें ऐसी ही होंगी। तो जब हम हैं, तब भी चीजें ऐसी ही रहें तो अड़चन क्या है, कठिनाई क्या है। हमारे होने न होने से इस सारे होने का क्या सम्बन्ध है?

आँख बन्द करें—आहिस्ता से आँखें ढीली छोड़ दें—शरीर को आराम में छोड़ दें, शरीर को ढीला, रिलेक्सड छोड़ दें। आँख बन्द कर लें, शरीर को ढीला छोड़े दें, और अब तीसरे प्रयोग में उतरें—तथाता—चीजें ऐसी हैं।

हमें कुछ करना नहीं है, चीजें ऐसी हैं ही। जगत ऐसा है ही। फिर कौन सी अशान्ति है, फिर कौन सी तकलीफें हैं, चीजें ऐसी हैं। बच्चा बच्चा है, बूढ़ा बूढ़ा है, स्वस्थ स्वस्थ है, बीमार बीमार है। पक्षी आवाज कर रहे हैं, घास हरी है, आकाश नीला है, कहीं धूप पड़ रही है, कहीं छाया है—ऐसा है।

अब ख्याल करें—चीजें ऐसी हैं, हमारा कोई विरोध नहीं है। अविरोध, नो रेसिसस्टेन्स। हमारा कोई विरोध नहीं है। इन चीजों के बीच में, हम भी हैं। एक पाँच मिनट ऐसा ख्याल करें—कोई विरोध नहीं, कोई विरोध नहीं, कोई विरोध नहीं। जो है, जैसा है, हम उससे राजी हैं।

न हम कुछ बदलना चाहते हैं, न हम कुछ मिटाना चाहते हैं, न हम कुछ बनाना चाहते हैं। जैसा है, वैसा है, हम उससे राजी हैं।

एक पाँच मिनट के लिए इस राजी होने की स्थिति में अपने को छोड़ दें—देखें—यह कौवे की आवाज और तरह की सुनायी पड़ेगी। जब हम राजी हो जायेंगे तो यह कौवे की आवाज हमें और तरह की सुनायी पड़ेगी।

इससे कोई विरोध नहीं है। तो हमारे और इसके बीच की दीवालें टूट जायेंगी। सुनें।

सड़क की आवाज और तरह की सुनायी पड़ेगी। अगर हमारा कोई विरोध नहीं है तो सड़क की आवाज और तरह की सुनायी पड़ेगी। सुनें।

समुद्र का शोर अब दुश्मन की तरह नहीं मालूम पड़ता है—एक डिस्टर्बेन्स नहीं मालूम पड़ता है। सुनें—हमारा कोई विरोध नहीं है। जैसा है, है।

पाँच मिनट के लिए जो है, उससे राजी होकर डूब जायें।

देखें, धूप अब वैसी नहीं मालूम पड़ती है। जो है, है। अब कुछ भी वैसा नहीं मालूम पड़ता। हम शत्रु की तरह नहीं हैं, एक मित्र की तरह हैं, जो है, उससे राजी हैं।

इस तीसरे सूत्र को भी ठीक से ध्यान में रख लेना—तथाता, सचनेस, चीजें ऐसी हैं। इसे ठीक से समझ लेना कि चीजें ऐसो हैं।

चीजें ऐसी हैं—कोई विरोध नहीं, कोई शत्रुता नहीं,—कुछ अन्यथा हो, इसकी आकांक्षा नहीं—चीजें ऐसी हैं। धूप गर्म है—छाया सर्द है—समुद्र अपने काम में लगा है—रास्ते पर चलने वाले लोग अपने काम में लगे हैं—जरा भी विरोध न रखें—बल्कि ऐसा हो रहा है—हो रहा है, हो रहा है और हम जान रहे हैं, कुछ बदलता नहीं, कुछ मिटाना नहीं, कुछ परिवर्तन नहीं।

इस तीसरे सूत्र को ठीक से समझ लेना, क्योंकि ध्यान की गहराई में ले जाने के लिए अत्यन्त जरूरी है।

चीजें ऐसी हैं—अब धीरे धीरे आँख खोल लें।

अब ध्यान के सम्बन्ध में दो तीन बातें समझें, और फिर हम ध्यान के लिए बैठेंगे। ये मैंने तीन सूत्र कहे, आपको समझाने की अलग-अलग कोशिश की, क्योंकि ये ध्यान में तीनों जरूरी होंगे।

एक तो बहना, तैरना नहीं।

हम जोवन भर तैरते हैं, बहते नहीं। कुछ चीजें हैं, जो तैरने से कभी भी नहीं मिल सकतीं, बहने से ही मिल सकती हैं। अस्तित्व, सत्य

या परमात्मा कभी तैरने से नहीं मिल सकता। सिर्फ बहने से मिलता है। जो भी बहने को राजी है, वह सागर तक पहुँच जायेगा। नदी खुद ही ले जाती है। जो बहने को राजी है, जीवन उसे खुद ही ले जाता है, उसे कहीं जाना नहीं पड़ता है। जो तैरा, वह भटक जायेगा। तैरने वाला ज्यादा से ज्यादा इस किनारे से दूसरे किनारे पहुँच जायेगा, लेकिन सागर तक नहीं। सागर तक जिसे जाना है, उसे तैरने की जरूरत ही नहीं। उसे नदी से लड़ने की जरूरत भी नहीं, वह तो बह जाय। नदी तो खुद ही सागर की तरफ जा रही है।

जीवन स्वयं ही परमात्मा की तरफ जा रहा है, अगर हम न रोकें तो जीवन अपने आप परमात्मा तक पहुँचा देता है। हम रोक लेते हैं जगह जगह और वह नहीं पहुँच पाता है। इसलिए बहने का अनुभव पहला।

दूसरा मिटने का अनुभव।

हम जीवन भर अपने को बचाने की कोशिश में लगे हैं। किसी तरह अपने को बचा लें। इससे ज्यादा भ्रामक और कोई बात नहीं हो सकती। हम बचने वाले नहीं हैं। और जो बचने वाला है, उसे बचाने की कोई जरूरत नहीं है, वह बचा ही हुआ है। जिसे हम बचाने की कोशिश में लगे हैं, वह मिटने ही वाला है, इसीलिए हम बचाने की कोशिश में लगे हैं। और हमारी कोई कोशिश काम में नहीं आयेगी, वह मिट ही जायेगा। और जो बचने वाला है, वह हमारी कोशिश से न बचेगा, वह बचा ही हुआ है, उसके मिटने का उपाय ही नहीं है। हमारे भीतर जो बचने वाला है, वह सदा बचा हुआ है। जो मिटने वाला है, वह मिटेगा ही। हमारी बचाने की कोशिश में सिर्फ हम परेशान हो जायेंगे, और कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिए दूसरा सूत्र मैंने आपसे कहा—मर जाने का, मिट जाने का, मिट जाने की तैयारी का।

और ध्यान रहे, जो मरने को तैयार है, वह पूरे जीवन का अधिकारी हो जाता है। क्योंकि जो मरने से भयभीत न रहा, उसके सब द्वार खुल जाते हैं। जीवन सब द्वारों से प्रवेश कर जाता है। भय के कारण मृत्यु न आ जाय, मिट न जाय, हमने सब दरवाजे बन्द कर लिये हैं और भीतर

छिपकर बैठ गये हैं। जीवन भी नहीं आ पाता, क्योंकि दरवाजे वही हैं; जिनसे मृत्यु आती है, उन्हीं से जीवन भी आता है, उन्हें हमने बन्द कर रखा है।

हमने दरवाजे बन्द कर दिये हैं कि कोई शत्रु न आ जाय, लेकिन मित्र भी उन्हीं दरवाजों से आ रहे हैं। वह दरवाजे बन्द हो गये हैं, मित्रों का आना भी बन्द हो गया है। हम भीतर हैं, अपने को बचाने में लगे हैं। दरवाजे छोड़ दें। मिटने को राजी जो हो जाता है, वह सब दरवाजे छोड़ देता है खुले। जो ओपनिंग है, ओपननेस है, वह सिर्फ उसी को मिलती है, जो मिटने को राजी हो। उसको क्लोज करने का कोई सवाल ही नहीं रहा। उसे बन्द करने का कोई सवाल नहीं रहा। वह मिटने तक को राजी है, अब और क्या डर है? वह खुद ही मिटने को राजी है, अब कौन उसे मिटा सकता है!

इसलिए दूसरा सूत्र मैंने कहा कि मिटने को राजी हो जायें, क्योंकि ध्यान की गहरी प्रक्रिया मरने की प्रक्रिया है। और जो मरना सीख जाता है, वह जीने की कला भी सीख जाता है।

और तीसरी चीज मैंने कही कि चीजें ऐसी हैं, आप लड़ें मत। जीवन को शत्रुता से न लें, एक दुश्मन की तरह खड़े न हो जायें। हम सब दुश्मन की तरह खड़े हो गये हैं। हर चीज से लड़ रहे हैं। हर चीज ऐसी होनी चाहिए। जैसी है, वैसी हमें स्वीकार होनी चाहिए। तब हम पूरे जीवन के साथ दुश्मनी में खड़े हो गये हैं। उससे कुछ जीवन बदल नहीं जाता है। उससे हम टूटते हैं और नष्ट हो जाते हैं।

तो ध्यान की गहराई तो तभी उपलब्ध होगी, जब कि जीवन जैसा है, हम उसे परिपूर्णता से स्वीकार कर लें। ऐसा है। हमें काँटा भी स्वीकार है। अगर वह गड़ता है तो हम कहते हैं काँटा है, गड़ेगा ही। हमें फूल भी स्वीकार है, अगर वह नहीं गड़ता है तो हम कहते हैं, फूल है, गड़ेगा कैसे। काँटा है तो गड़ेगा, फूल है तो नहीं गड़ेगा। लेकिन हमें दोनों स्वीकार है, काँटे का काँटापन स्वीकार है, फूल का फूल होना स्वीकार है। न हमें काँटे से विरोध है, न हमें फूल की आकांक्षा है। जैसा है, वह हमें स्वीकार है।

ऐसी स्वीकृति से ही कोई शान्त हो सकता है। शांति अन्ततः परिपूर्ण स्वीकार का फल है। अगर आप अशान्त हैं तो आप अपनी अशान्ति को भी स्वीकार कर लें कि मैं अशान्त हूँ। और आप पायेंगे, यह स्वीकृति आपको शान्ति में ले जाती है।

एक फकीर के पास एक आदमी गया और उसने कहा, आप तो बड़े शान्त हैं और मैं बड़ा अशान्त हूँ। उस फकीर ने कहा, बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है। मैं शान्त हूँ, तुम अशांत हो, बात खत्म हो गयी। अब और क्या करना है। उस आदमी ने कहा, नहीं बात खत्म नहीं हो गयी। मुझे भी शांत होना है। उस फकीर ने कहा, यह बहुत मुश्किल है। क्योंकि जो अशांत है, वह शांत कैसे हो सकता है। अशांत होने में राजी हो जाओ। तुम कहो कि मैं अशांत हूँ बात ठीक है। अशांत हूँ, इसका विरोध छोड़ दो। उस आदमी ने कहा, लेकिन मुझे शांत होना है। उस फकीर ने कहा, कि अगर तुम्हें शांत होना है तो तुम अशांत होने की व्यवस्था कर रहे हो, क्योंकि जिसे कुछ भी होना है, वह अशांत हो जायेगा। तुम अशांत हो, तो राजी हो जाओ कि अशान्त हो। फिर देखो कि शांति कैसे नहीं आती है। वह चली आयेगी। अगर कोई आदमी अशान्त होने में भी राजी हो जाय, तो क्या शांति उसके द्वार से बहुत दिन तक दूर रह सकती है? कैसे रहेगी दूर? जो अशांत होने में भी राजी हो गया है, उससे शांति कैसे दूर रह सकती है। जो अशांति तक के लिए राजी हो गया है, उसके लिए शांति भागी चली आयेगी, क्योंकि कोई उपाय नहीं रहा रुकने का अब। इसलिए जो है, उसकी परिपूर्ण स्वीकृति से क्रांति आती है, जो सहज है। और सब सहज ही आता है।

तीन सूत्र मैंने कहे—इन तीन को ध्यान में रखना, क्योंकि अभी जब हम ध्यान में जायेंगे, तो इन तीनों का ही प्रयोग करके गहरे उतर जाना है।

अब हम ध्यान के लिए बैठेंगे। इसमें दो तीन बातें समझ लेनी हैं। हो सकता है ध्यान में जब कोई अपने को पूरी तरह छोड़े तो गिर जाय। इसलिए जितना फासले पर हट सकें अच्छा है। थोड़ी भी जगह न छोड़ें, फासले पर हट जायें। कोई गिर सकता है, वह आपके ऊपर गिर जाय तो

आपको परेशानी होगी, उसको परेशानी होगी। थोड़ी दूर हट जायें। और या फिर पूरा ख्याल रखना पड़े पूरे वक्त कि कहीं मैं गिर न जाऊँ। क्योंकि अगर किसी ने सच में अपने को नदी में पूरी तरह छोड़ दिया है तो वह यह भी कहाँ ख्याल रख पायेगा कि शरीर आगे गिर गया, पीछे गिर गया—गिर गया कि नहीं गिर गया। अगर इतना भी ख्याल रखना पड़ा तो वह फिर बह नहीं पायेगा। अब जिसकी चिता पर लाश चढ़ गयी है, उसे अब कहाँ ख्याल रह जायेगा कि कौन पड़ोस में बैठा हुआ है। अगर ख्याल रहा तो चिता पर लाश चढ़ नहीं पायेगी।

लेकिन अगर कोई आपके ऊपर भी गिर गया है, आप किसी के ऊपर गिर गये हैं, तो इसे भी स्वीकार कर लेना है। ठीक है कि कोई गिर गया है, इतना परेशान होने की जरूरत नहीं है। गिरा रहने देना है। जो गिर गया है, उसे भी गिरे रहना है। जिसके ऊपर गिर गया है, उसे भी गिरा रह जाने देना है। इसको भी क्या बात है, चीजें ऐसी हैं, कि कोई गिर गया है। इसमें कुछ बहुत परेशान होने की जरूरत नहीं है।

थोड़े फासले पर हट जायं और फिर हम ध्यान के लिए बैठें।

इसलिए मैंने कहा—ध्यान यानी समर्पण। पूरी तरह छोड़ देना है, जो होगा, होगा। हमें न यह सोचना है कि क्या होगा, न हमें दिशा देनी है कि यह हो। न हमें चेष्टा करनी है—हमें तो छोड़ देना है। छोड़ देना है। छोड़ देना है, जो हो, हो।

अब आँख बन्द कर लें—बहुत धीमें से आँख बन्द कर लें। शरीर को ढीला छोड़ दें। आँख बन्द कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। जैसे शरीर में कोई प्राण ही न हो, ऐसा ढीला छोड़ दें। और तीन मिनट तक मैं सुझाव दूँगा, मेरे साथ अनुभव करें। तीन मिनट तक मैं सुझाव दूँगा, सजेशन दूँगा—शरीर शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है—रिलेक्स हो रहा है, रिलेक्स हो रहा है, तो भीतर आपको अनुभव करते जाना है कि शरीर शिथिल हुआ, शिथिल हुआ, शिथिल हुआ—शिथिल हो रहा है। अनुभव ही नहीं करना, अनुभव के साथ शरीर को शिथिल छोड़ते चले जाना है। एक तीन मिनट में शरीर बिल्कुल मिट्टी

की तरह हो जायेगा, बिखर जायेगा, गिर जायेगा, झुक जायेगा। तो आपको कोई बाधा नहीं देनी है। जो हो, हो जाय।

अब मैं शुरू करता हूँ—अनुभव करें—शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है। छोड़ें—छोड़ते जायं और अनुभव करते जायं—शरीर शिथिल हो रहा है। छोड़ते भी जायँ साथ-साथ और अनुभव करते जायं—शरीर शिथिल हो रहा है। बिल्कुल छोड़ दें, आप नहीं हैं मालिक। शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है। छोड़ दें—शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है।

अनुभव करें, शरीर का रग-रग, रेशा-रेशा शिथिल होता जा रहा है—शरीर शिथिल होता जा रहा है—शरीर शिथिल होता जा रहा है। बिल्कुल छोड़ दें, जैसे शरीर है ही नहीं। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर का कण-कण शिथिल होता जा रहा है, रग-रग शिथिल होती जा रही है। छोड़ दें। शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल होता जा रहा है—शरीर शिथिल होता जा रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है।

छोड़ दें बिल्कुल, और दूसरे पर ध्यान न दें, अपने को ढीला छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें। दूसरे पर ध्यान न दें, दूसरा कोई नहीं है। आप अकेले ही हैं। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर बिल्कुल शिथिल हो गया है, जैसे हो ही नहीं। अपनी सारी पकड़ छोड़ दें। आप पकड़े हुए न रह जायँ। फिर शरीर को जो हो—गिरता हो, गिरे, न गिरता हो, न गिरे। आगे झुके, पीछे झुके—जो हो। आप पकड़े हुए न रह जायँ, इतना ध्यान रखें। आप शरीर को नहीं पकड़े हैं, आपने छोड़ दिया है। जो भी होगा, होगा। आप रोकें नहीं, जो भी हो, हो।

शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है—शरीर शिथिल हो रहा है। छोड़ दें—जैसे नदी में छोड़ दिया था, ऐसे ही छोड़ दें और बह जायँ। जैसे नदी में छोड़ दिया था, और बह गये थे, ऐसे ही बह जायं। छोड़ दें—छोड़ दें—छोड़ दें। जीवन की सरिता जहाँ ले जाय, ले जाने दें। बिल्कुल छोड़ दें, शरीर शिथिल हो गया है। गिरता हो गिर जाय, जरा भी रोके नहीं। छोड़ दें—नदी ले जायेगी, बह जायेंगे, छोड़ दें—जीवन की सरिता में छोड़ दें सूखे पत्ते की भाँति और बह जायँ—बहें।

शरीर शिथिल हो गया है—शरीर शिथिल हो गया है—शरीर शिथिल हो गया है—शरीर शिथिल हो गया है—शरीर शिथिल हो गया है, जैसे है ही नहीं। शरीर जैसे है ही नहीं। छोड़ दें।

श्वाँस शांत हो रही है—अनुभव करें—श्वाँस शांत होती जा रही है—श्वाँस शांत होती जा रही है—श्वाँस शांत होती जा रही है। रोकनी नहीं है, अपनी तरफ से ढीला छोड़ दें, श्वाँस शांत हो रही है—श्वांस शांत हो रही है—श्वाँस शांत होती जा रही है—श्वाँस बिल्कुल शांत होती जा रही है—श्वांस शांत हो रही है। छोड़ दें, श्वाँस को भी छोड़ दें—श्वाँस शांत होती जा रही है—श्वाँस शान्त हो रही है—श्वाँस शान्त हो रही है—श्वांस शांत हो रही है—श्वाँस शांत हो रही है। जैसे जैसे श्वाँस शांत होती चली जायेगी, वैसे वैसे लगेगा कि हम तो मिट गये—मिटे, मिटे, मिटे, क्योंकि हमारा होना श्वाँस से जुड़ा है। श्वांस शांत होती जा रही है—शांत होती जा रही है—शांत होती जा रही है—श्वाँस बिल्कुल शांत होती चली जा रही है। ऐसा लगेगा कि गयी, गयी, गयी—श्वाँस बिल्कुल शांत हो गयी है। श्वाँस शान्त हो गयी है—श्वांस शान्त हो गयी है—श्वाँस शान्त हो गयी है—श्वाँस शान्त हो गयी है—श्वाँस शान्त हो गयी है—श्वाँस शान्त हो यगी है। श्वाँस शांत हो गयी है।

अनुभव करें, जैसा चिता पर चढ़ गये थे और, जल गये थे और राख रह गयी थी; सब मिट गया था, ऐसे ही श्वाँस विलीन होती जा रही है,

विलीन होती जा रही है। धीरे धीरे सब विदा हो जायेगा, कुछ भी न रह जायगा, पीछे राख भी न छूट जायेगी। अनुभव करें—जैसे चिता पर चढ़ गये थे, वैसे ही श्वाँस खोती जा रही है, खोती जा रही है—मरते जा रहे हैं, मरते जा रहे हैं। धीरे-धीरे सब मर जायेगा, पीछे कुछ भी शेष न रह जायेगा। छोड़ दें, श्वाँस को भी छोड़ दें।

और अब तीसरी बात अनुभव करें—पक्षियों की आवाज है, सूरज की किरणें हैं, सड़कों पर गति है, शोरगुल है, सागर की लहरें है, सब सुनायी पड़ रहा है। साक्षी होके चुपचाप सुनते रह जायँ, सुनते रह जायँ, सुनते रह जायँ—ऐसा है, ऐसा है, ऐसा है। चीजें ऐसी हैं। सिर्फ सुनते रहें, सुनते रहें, सुनते रहें—ऐसा है। जानते रहें, जानते रहें—ऐसा है। और कुछ भी न करें, बस जान रहे हैं, सुन रहे हैं, जान रहे हैं, सुन रहे हैं। कुछ भी करना नहीं है, जो है उसके साथ चुपचाप एक होकर जानते हुए रह जाना है।

अब दस मिनट के लिए मैं चुप हो जाता हूँ—शरीर शिथिल हो गया, श्वाँस शांत हो गयी और आप तथाता में, साक्षी भाव में बैठे रह गये हैं। धीरे, धीरे, धीरे, धीरे अन्दर कुछ बदलता जायेगा, शांत हो जायेगा, शांत हो जायेगा। फिर भीतर कुछ शून्य हो जायेगा—भीतर कुछ मौन हो जायेगा। आप नहीं रह जाएंगे, कोई और उस शून्य ये आ जायेगा।

अब मैं चुप हो जाता हूँ—आप सुनते रहें, साक्षी भाव से देखते रहें, जानते रहें, जो भी हो रहा है। कोई विरोध नहीं—ऐसा है। देखें—भीतर देखें, बाहर सुनें, और चुपचाप साक्षी बने रह जायँ—दस मिनट के लिए सिर्फ साक्षी बने रह जायँ।

(दस मिनट ध्यान की स्थिति)

मन शान्त और शून्य हो गया है। सब मिट गया है। मन बिलकुल शून्य हो गया है। मन शून्य हो गया है—देखते रहें, जानते रहें—मन शून्य हो गया है, मन बिलकुल शून्य हो गया है। बिलकुल शून्य हो गया है।

साक्षी बने रहें—देखते रहें—जानते रहें—अनुभव करते रहें—नदी बहा के ले गयी है—चिता ने जला दिया है—अब चुपचाप जान रहे हैं,

जान रहे हैं। इसी शून्य में किसी क्षण उसका प्रवेश हो जाता है, जिसका नाम आनन्द है। उसका प्रवेश हो जाता है, जिसका नाम सत्य है। उसका प्रवेश हो जाता है, जिसका नाम परमात्मा है। सब शून्य हो गया है—सब शून्य हो गया है—सब शून्य हो गया है—द्वार खुले हैं प्रतीक्षा में—सब शून्य हो गया है।

अब धीरे-धीरे गहरी दो चार मिनट तब श्वाँस लें—धीरे-धीरे गहरी श्वाँस लें। प्रत्येक श्वाँस के साथ बहुत ताजगी, बहुत शांति और आनन्द मालूम पड़ेगा। धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वाँस लें—धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वाँस लें—प्रत्येक श्वाँस के साथ बहुत ताजगी, बहुत शांति और आनंद मालूम पड़ेगा। धीरे-धीरे गहरी श्वाँस लें।

दो बार गहरी श्वाँस लें—फिर धीरे-धीरे आँख खोलें—आँख न खुले तो जल्दी न करें—गहरी श्वाँस लें—धीरे-धीरे आँख खोलें—हो सकता है किसी को आँख खोलने में तकलीफ हो तो हाथ आँखों से लगा लें, फिर धीरे-धीरे आँख खोलें—धीरे-धीरे आँख खोलें।

जो लोग गिर गये हैं, वे पहले गहरी श्वाँस लें—धीरे-धीरे उठें, फिर आँख खोलें।

जो प्रयोग मैंने ध्यान के लिए कहा है, इसे रात सोते समय करें।

बिड़ला क्रीड़ा केन्द्र, बम्बई, २५ नवम्बर १९६९

७ : पूर्ण का द्वार

मेरे प्रिय आत्मन,

पिछले चार-पाँच दिन ध्यान का प्रयोग हम कर रहे थे और ध्यान को समझने की कोशिश भी कर रहे थे। उस सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न पूछे गये हैं। आज आखिरी दिन उन प्रश्नों पर विचार कर लेना जरूरी है।

एक मित्र ने पूछा है—बहने का प्रयोग जब हम करते हैं तो क्या हम उसका भी विरोध न करें जो हमें बुरा मालूम पड़ता है ?

यदि बुरे का विरोध किया तो बह ही न सकेंगे। अगर बुरे को बुरा समझा तो भी बह न सकेंगे। बुरे का विरोध करने की जरूरत नहीं है। बुरे को बुरा समझना ही—विरोध शुरू हो जाता है। मन के किसी विचार को बुरा कहना ही विरोध हो गया। विरोध अलग से करना नहीं पड़ेगा। एक ख्याल कि यह बुरा है, और विरोध शुरू हो गया। न तो बुरे का विरोध करना है और न अच्छे का स्वागत करना है। बुरे का विरोध करेंगे और अच्छे का स्वागत करेंगे तो बह नहीं सकते हैं। जहाँ चुनाव है, जहाँ च्वाइस है, वहाँ बहाव नहीं हो सकता। बहाव तो च्वाइसलेस ही होगा। वह तो चुनावरहित ही होगा। इसलिए बुरे आदमी—बुरे आदमी ध्यान नहीं कर पाते, और अच्छे आदमी भी ध्यान नहीं कर पाते। बुरे आदमी की पकड़ है कि बुरे को पकड़ूँ और अच्छे आदमी की पकड़ है कि बुरे को छोड़ूँ। अच्छे आदमी की पकड़ है कि अच्छे को पकड़ूँ—लेकिन पकड़ दोनों की है। और एक सबसे बड़े मजे की बात यह है कि जिसे हम अच्छा कहते हैं और जिसे हम बुरा कहते हैं, ये दो अलग-अलग चीजें नहीं हैं—एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जब कोई आदमी कहता है कि मैं अच्छे को पकड़ूँ तो वह इतना ही कर सकता है कि सिक्के के अच्छे पहलू को ऊपर कर ले, नीचे का बुरा पहलू सदा मौजूद रहेगा। और जब वह अच्छे को पकड़ेगा तो बुरा

भी पकड़ ही जायेगा, क्योंकि वह दूसरी चीज नहीं है, वह अच्छे का ही दूसरा पहलू है। अगर एक रुपये के मैं एक पहलू को पकड़ना चाहूँ और कहूँ कि दूसरे को छोड़ दूँ और एक को पकड़ूँगा तो इतना ही हो सकता है कि एक को मैं ऊपर कर लूँ, दूसरे को नीचे छिपा लूँ। अच्छा आदमी वह है, जिसने अच्छे पहलू को ऊपर कर लिया है और बुरे पहलू को नीचे कर दिया है। बुरा आदमी वह है, जिसने बुरे पहलू को ऊपर कर लिया है और अच्छे पहलू को नीचे कर दिया है। बुरे और अच्छे आदमी में बुनियादी फर्क नहीं है, वे एक ही तरह के आदमी हैं—सिक्का उल्टा और सीधा, इतना ही फर्क है। एक सिक्का उल्टा पड़ा है, एक सीधा पड़ा है। उन दोनों में कोई फर्क है ?

बुरे आदमी के भीतर अच्छा आदमी हमेशा मौजूद रहता है। वह उससे हमेशा कहता रहता है, क्या कर रहे हो बुरा, क्या कर रहे हो बुरा, क्या कर रहे हो बुरा। कुछ अच्छा करो, अच्छा करो। पापी से पापी के भीतर भी पुण्यात्मा सलाह दिये चला जाता है कि कुछ अच्छा करो, कुछ अच्छा करो, और अच्छे आदमी के भीतर भी बुरा आदमी सदा मौजूद है, वह कहता है, किस पागलपन में पड़े हो, क्या अव्यावहारिक, इमप्रेक्टिकल हुए जा रहे हो ? कुछ बुरा करो, नहीं तो चूक जाओगे। बाकी लोग बुरा किये आगे बढ़े जा रहे हैं। तुम चूके चले जा रहे हो। और अच्छे आदमी के भीतर बुरा आदमी पूरे वक्त कह रहा है बुरा करो, नहीं तो पछताओगे, यह क्या कर रहे हो, सब खो दोगे, सब बरबाद हो जायेगा।

अच्छे आदमी के भीतर बुरा आदमी दबा हुआ है, बुरे आदमी के भीतर अच्छा आदमी दबा हुआ है। ध्यान दोनों से मुक्त हो जाना है। दोनों में से किसी को भी पकड़ नहीं लेना है। और दोनों से केवल वही मुक्त हो सकता है, जो कोई चुनाव ही नहीं करता, जो कहता नहीं यह अच्छा है, जो कहता नहीं यह बुरा है। जो दोनों को ही देखता रहता है और कहता है तुम भी हो और तुम भी हो। जो गुलाब के फूल के पास जाता है और फूल को भी कहता है, तुम भी हो और कांटे को भी कहता है तुम भी हो। न कहता है, काँटे को चुनेंगे, न वह यह कहता है कि

गुलाब को चुनेंगे। चुनाव ही नहीं करता, गुलाब के पास चुपचाप बैठ जाता है। फूल और कांटे दोनों को एक साथ स्वीकार कर लेता है। और ध्यान रहे—एक क्रान्ति घट जाती है, जब फूल और कांटे को कोई एक साथ स्वीकार करता है, तो फूल और कांटे एक दूसरे को काटकर विदा हो जाते हैं, पीछे कुछ भी शेष नहीं रह जाता। जब कोई बुरे और अच्छे दोनों को एक साथ स्वीकार कर लेता है तो बुरा और अच्छा दोनों एक दूसरे को काट देते हैं और पीछे कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

ध्यान है वह अवस्था, जहाँ न बुरा रह गया है, न अच्छा रह गया है। अगर आपने अच्छे को बचाने की कोशिश की और बुरे को हटाने की कोशिश की तो अच्छे आदमी बन सकते हैं, साधू बन सकते हैं, सन्त नहीं साधू और सन्त के फर्क को समझ लें। साधू वह है, जो अच्छा है; असाधु नहीं है, बुरा नहीं है। सन्त वह है, जो न साधू है, न असाधु हैं, वह दोनों के बाहर चला गया है। अगर अच्छे को बचाया तो ज्यादा से ज्यादा साधू बन सकते हैं, पर पीछे असाधु सदा मौजूद रहेगा और प्रतीक्षा करेगा कि जब आप साधू से ऊब जायें तो असाधु हो जायें।

और हर चीज से ऊब हो जाती है। अगर एक आदमी चौबीस घण्टे साधू रहे तो साधू होने से भी ऊब जाता है। वह छुट्टी चाहता है थोड़ी देर के लिए कि साधू न रह जाय। इसलिए साधू को भी असाधु होने का मौका मिलता हो तो छोड़ता नहीं है, मौके का उपयोग कर लेता है। असाधु भी असाधु होने से ऊब जाता है, इसलिए बुरे से बुरा आदमी भी किसी क्षण में बिल्कुल साधू मालूम पड़ता है। किसी क्षण में ऐसे काम करता है, जो साधू भी न कर सके। वह भी ऊब जाता है, मोनोटोनस हो जाता है। बुरे आदमी अच्छे काम कर लेते हैं, अच्छे आदमी बुरे काम कर लेते हैं। और जिसे हमने जोर जबरदस्ती से पकड़ा है, वह थोड़ी देर में थक जाता है। अगर मैं मुट्ठी को बाँधे रहूँ, बाँधे रहूँ जोर–जबरदस्ती से, तो कितनी देर बाँधे रहूँगा। थक जाऊँगा, फिर मुट्ठी खुल जायेगी। अगर मैं दौड़ूँ ताकत से, दौड़ता रहूँ, दौड़ता रहूँ तो कितनी देर दौड़ूँगा, मेरे पैर थक जायेंगे और गिर जाऊँगा।

जो भी प्रयास से हम करेंगे, वह थक जायेगा। अगर हम अच्छे हुए प्रयास से तो थकान आ जायेगी, फिर हमें बुरा होना पड़ेगा। अगर बुरे हुए प्रयास से तो थकान आ जायेगी, फिर हमें अच्छा होना पड़ेगा और यह घड़ी का पैण्डुलम बुरे से अच्छे के बीच घूमता रहेगा जन्मों जन्मों तक। इसलिए ध्यान बुरे को बुरा नहीं कहता, अच्छे को अच्छा नहीं कहता। वह कहता है, तुम अच्छे भी हो, तुम बुरे भी हो—ठीक है, दोनों रहो। हमें सब स्वीकार है। ध्यान की स्वीकृति में वे दोनों ही विदा हो जाते हैं। क्योंकि फिर कोई पकड़ नहीं रह जाती, विदा होने को कोई बाधा नहीं रह जाती। इसलिए जब ऐसा हम पूछते हैं कि क्या बुरे को भी स्वीकार करना है? तो अस्वीकृति तो प्रारम्भ हो गयी, जब हमने कहा, बुरा है। जब हम कहते हैं कि क्या शूद्र को भी घर में बिठा लें? वह जब हमने शूद्र कहा, तभी हमें बिठालने का अस्वीकार हो गया। सवाल यह नहीं है कि शूद्र को घर में बिठाल लें, सवाल यह है कि शूद्र अगर दिखायी न पड़े, तब वह घर में बैठ सकेगा। और अगर कभी किसी ने कोशिश करके शूद्र को घर में बिठाल लिया तो वह कोशिश में तनाव होगा और वह तनाव शूद्र को शूद्र ही बनाये रखेगा। इसमें कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। नहीं, वह शूद्र ही न रह जाय, वह बुरा ही न रह जाय, बुरे-भले का भाव ही छूट जाय, तभी हम बाहर हो सकते हैं।अन्यथा बाहर नहीं हो सकते हैं।

एक बात और उन्होंने पूछी है—उन्होंने पूछा है कि जब हम सब मिट जाते हुए देखते हैं, कि चिता में सब जल गया, सब समाप्त हो गया, तो फिर 'मैं' भी मिट जाता है, फिर पीछे आबजर्वर कौन है, साक्षी कौन है? फिर कौन देखेगा?

हमें ख्याल है कि हमारे भीतर हम ही हैं और कुछ भी नहीं है। इसलिए सवाल उठता है कि जब हम मिट जायेंगे तो देखेगा कौन? ऐसी ही हमारी हालत है, जैसे किसी घर का मालिक घर के भीतर रहता हो और घर का पहरेदार घर के बाहर रहता हो और मालिक और पहरेदार की मुलाकात न हुई हो बहुत दिन से और पहरेदार भूल गया हो कि भीतर मालिक है और मालिक भूल गया हो कि बाहर पहरेदार और है, अगर हम

पहरेदार से कहें कि तू अब विदा हो जा यहाँ से, तो वह कहे कि मैं अगर विदा हो जाऊँगा तो इस घर में रहेगा कौन ? इस घर में फिर कोई बचेगा ही नहीं ।

जिसको हम 'मैं' कह रहे हैं, बिल्कुल काम चलाऊ पहरेदार है, वह हमारा अस्तित्व नहीं है । असल में चूँकि हमें अस्तित्व का पता नहीं है, आत्मा का पता नहीं है, इसलिए हमने एक सब्स्टीट्यूट आत्मा, एक काम चलाऊ आत्मा विकसित कर ली है, जिसको हम मैं कहते हैं । तो यह मैं पूछता है कि अगर हम विदा हो जायेंगे तो फिर पीछे बचेगा कौन, जानेगा कौन ? और स्थिति बिलकुल उल्टी है । जब तक यह 'मैं' 'है', तब तक ही जानने वाला खोजना मुश्किल है कि कहाँ है, कौन है, कैसा है । जिस दिन 'मैं' विदा हो जाता है, उस दिन जो शेष रह जाता है, वह जानता है, वह देखता है, वह पहचानता है, वह साक्षी है । लेकिन, आप वह नहीं हैं । वह मैं नहीं हूँ । फिर वह कौन है, जो देखता है, जानता है, पहचानता है ? जहाँ 'मैं' नहीं रह जाता है—फिर जो शेष रह जाता है, वही परमात्मा है । इसलिए कल मैंने कहा था कि परमात्मा का कोई दर्शन नहीं हो सकता । परमात्मा तो वह है, जिसको सबका दर्शन हो रहा है । परमात्मा द्रष्टा है, दृश्य नहीं है । हम कभी उसे देख न पायेंगे जब हम न होंगे, तो जो देखता हुआ रह जायेगा, वही परमात्मा है । जब मैं नहीं रहूँगा, तब जो देखेगा, वही परमात्मा है ।

एक फूल के पास मैं खड़ा हूँ, या एक आदमी के पास, एक बच्चे के पास या एक स्त्री के पास मैं खड़ा हूँ और उसकी आँखों में देख रहा हूँ । जब तक मैं हूँ, तब तक शरीर से ज्यादा कुछ भी दिखायी नहीं पड़ेगा । 'मैं' चला गया, अब वही रह गया, जो भीतर है, 'मैं' के अतिरिक्त । वही देख रहा है । अब शरीर दिखायी नहीं पड़ेगा । अब दूसरी तरफ भी वही दिखायी पड़ने लगेगा—वही । और ऐसा नहीं दिखायी पड़ेगा कि दूसरी तरफ कोई और खड़ा है । ऐसा दिखायी पड़ेगा कि मैं ही वहाँ भी है—वही जो यहाँ देख रहा है, वही वहाँ दिखायी भी पड़ रहा है ।

१९५७ के गदर में एक संन्यासी को अंग्रेजों ने मार डाला । वह

विद्रोह के दिन थे । और अंग्रेजों की छावनी के पास से रात एक नंगा फकीर निकल रहा था । उसे पकड़ लिया, उसे समझा कि कोई जासूस है । और जासूस है, यह और पक्का हो गया, जब वे उससे पूछने लगे, तब कुछ न बोला, बस हँसने लगा । तो उन्होंने समझा कि धोखा देने की कोशिश कर रहा है । वह संन्यासी पन्द्रह वर्ष से मौन था । इसलिए कुछ बोल नहीं सकता था । वे पूछते थे कि तुम कौन हो, तो वह हँसता था । वे पूछते थे, क्यों यहाँ से निकल रहे थे, तो वह हँसता था । फिर उन्होंने उसकी छाती में संगीन डाल दी । जब वह मर रहा था तो उसने सिर्फ एक शब्द कहा । उसने नियम लिया था कि अब, अब अंतिम तक नहीं बोलूँगा, आखिरी बार अगर कुछ ख्याल में आयेगा तो एक बात बोल दूँगा और विदा हो जाऊँगा । आखिर बहुत बोलने का मतलब भी क्या है ? तो उसने एक ही बात कही, जब उसकी छाती में संगीन भोंकी गयी और उससे खून का फव्वारा फूट पड़ा तो उसने उपनिषदों का एक पुराना वचन कहा; उसने कहा, "तत्वमसि श्वेतकेतु" । श्वेतकेतु, तू भी वही है । उस मरते हुए संन्यासी को उन अंग्रेजों ने घेर लिया और पूछा कि क्या मतलब है ? "दैट, दाऊ आर्ट", इसका मतलब क्या है ? तुम वही हो, इसका मतलब क्या है ? उस संन्यासी ने कहा, आज पन्द्रह वर्ष का मौन पूर्ण हो गया । तुमने जब मुझे छूरा भोंका, मैं देख सका कि 'मैं' ही मरने वाला हूँ, 'मैं' ही मारने वाला हूँ । इस तरफ भी 'मैं' उस तरफ भी 'मैं' । वह जो छूरा मार रहा है, वह भी 'मैं' हूँ और जिसको छूरा मारा जा रहा है, वह भी 'मैं' हूँ । पन्द्रह वर्ष का मेरा मौन सफल हो गया । आज मैं देख पाया कि दोनों तरफ 'मैं' ही हूँ ।

लेकिन दोनों तरफ 'मैं' ही हूँ, यह तभी पता चलेगा, जिसको हम अभी मैं कहते हैं, वह चला जाय, नहीं तो पता नहीं चलेगा । क्योंकि जिसको हम 'मैं' कहते हैं, वह सदा एक ही तरफ है, वह इस तरफ है । उस तरफ तू है, इस तरफ मैं हूँ । एक ओर 'मैं' है, जब यह मैं चला जाता है तो दोनों तरफ से वही होता है—इस तरफ से भी वही है, उस तरफ से भी वही है । वह जागता रहेगा, वह देखता रहेगा । जब मैं मिट

जाता है, तब जो देखता है, वही परमात्मा है। तब जो दिखायी पड़ रहा है, वह भी परमात्मा है। जो देख रहा है, वह भी परमात्मा है। तब परमात्मा ही है, और कुछ भी नहीं है। लेकिन इस 'मैं' को—इस 'मैं' को विदा करने की बात है।

मैंने सुना है कि एक समुद्र के किनारे एक मेला भरा हुआ था। बहुत लोग आये हुए थे और समुद्र के किनारे बड़ी भीड़भाड़ थी और लोगों में बड़ा विवाद था। कहानी कहती है :—दो नमक के पुतले भी उस मेले में गये हुए थे, वे भी समुद्र के किनारे खड़े थे। और बड़ा विवाद चलने लगा, और लोग पूछने लगे कि समुद्र कितना गहरा है। तो नमक के एक पुतले ने कहा कि इतनी बातचीत से क्या पता चलेगा, जरा डुबकी लगाकर पता ही लगा आता हूँ। वह नमक का पुतला कूदा, समुद्र में पता लगाने कि कितना गहरा है। लेकिन लौटा नहीं। भीड़ थोड़ी देर राह देखती रही। उन्होंने पूछा, क्या हुआ तेरे मित्र को, दूसरे पुतले से पूछा। उसने कहा कि मैं उसका पता लगा आता हूँ। वह भी कूद गया। वह भी नहीं लौटा। सैकड़ों वर्ष बीत गये हैं, अब भी उस दिन पर उस समुद्र के किनारे लोग इकट्ठे होते हैं कि शायद वे पुतले लौट आयें, वे नहीं लौटे। अब वे कभी नहीं लौटेंगे, क्योंकि नमक का पुतला सागर की गहराई कैसे पता लगा पायेगा? जब तक वह गहराई में जायेगा, जायेगा, तब तक बिखर जायेगा, खो जायेगा, वह सागर ही हो जायेगा। नमक का पुतला सागर ही हो जायेगा। जब तक वह गहराई में पहुँचेगा, तब तक खुद न रह जायेगा और जब तक खुद रहेगा, तब तक गहराई में न पहुँच पायेगा।

ठीक ऐसा ही कुछ है—जब तक हम है, 'मैं' हूँ, तब तक परमात्मा के सागर में गहरे उतरना मुश्किल है। जब हम खो जाते हैं, 'मैं' मिट जाता है, तब उतर पाते हैं। लेकिन तब कौन उतर पाता है? उस नमक के पुतले को कैसा अनुभव हुआ होगा, थोड़ा सोचें उसकी जगह खड़े करके अपने को। गया था पता लगाने कि सागर की गहराई कितनी है। फिर बिखरने लगा होगा, पिघलने लगा होगा। सागर की गहराई तो पता

लग गयी होगी। और एक ही तरह से पता लग सकती थी, उसी तरह से पता लगी होगी। सागर की गहराई तो पता लगी होगी सागर होकर, और कोई रास्ता भी नहीं है सागर की गहराई पता लगाने का। लग गयी होगी पता? जब पुतला बिखर कर सागर ही हो गया होगा, तो पता भी लग गया होगा गहराई का। लेकिन तब लौटकर कहने का उपाय नहीं रह गया।

हम जैसे-जैसे गहरे जायेंगे, वैसे-वैसे 'मैं' विदा हो जायेगा। गहराई का तो पता लग जायेगा परमात्मा की, लेकिन हम खो जायेंगे। क्योंकि हमारा अस्तित्व सतह का अस्तित्व है, गहराई का अस्तित्व नहीं है। जिसको हम 'मैं' कहते हैं, वह सतह का अस्तित्व है, वह गहरे में नहीं जी सकता—गहरे में विदा हो जायेगा, विलीन हो जायेगा। लेकिन, जरूर कुछ शेष रह जायेगा। और जो शेष रह जाता है, वही है। जो समाप्त हो जाता है, वह नहीं है। जो आज समाप्त होता है, कल समाप्त होता है; जो समाप्त हो जायेगा, वह नहीं है। हम, 'मैं' नहीं हैं। लेकिन हम 'मैं' ही बने हुए हैं! वही हमारा कष्ट, वही हमारी पीड़ा है।

ध्यान 'मैं' का विसर्जन है, ताकि हम उसे जान लें, जो है।

एक और मित्र ने पूछा है—एकाग्रता, विचारणा और ध्यान, कंसंट्रेशन कन्टेम्प्लेशन और मैडिटेशन क्या अलग-अलग हैं? ध्यान साकार पर करना है कि निराकार पर? निर्विकल्प समाधि क्या है? और निर्विकल्प समाधि कब पूरी होती है, यह कैसे पता चलेगा?

एकाग्रता, विचारणा और ध्यान बड़ी अलग-अलग बातें हैं—न केवल अलग-अलग, बल्कि बड़ी विरोधी।

एकाग्रता का मतलब है, चित्त एक विचार पर ठहर जाय। लेकिन चित्त भी होगा, विचार भी होगा। चित्त एक विचार पर ठहर जाय, उसका नाम है कंसंट्रेशन, लेकिन चित्त भी होगा, विचार भी होगा, सिर्फ ठहरा हुआ होगा। जैसे कोई फिल्म को एक्सपोज करता है, कैमरा खुलता है, और फिल्म एक चीज पर ठहर जाती है। कैमरा बन्द हो गया, फिर

फिल्म एक चीज को पकड़ लेती है। फिल्म बड़ी कंसंट्रेशन, एकाग्रता कर पाती है।

दर्पण है—दर्पण एकाग्रता में नहीं है, चंचलता में है। कोई भी आये, आये। जाये, जाये। आता है तो दिखता है, जाता है तो चला जाता है। प्रतिपल दर्पण पर बदलता रहता है सब। चंचल चित्त में सब बदलता रहता है।

एकाग्र चित्त में एक चीज ही ठहर जाती है, फिक्स्ड हो जाती है। फिल्म के कैमरे की तरह रुक जाती है, ठहर जाती है। एकाग्रता में विचार भी है, चित्त भी है।

कंटम्प्लेशन में विचारणा है, प्रवाह है—एक विचार, दूसरा विचार, तीसरा विचार, चौथा विचार। लेकिन, एक ही चीज के सम्बन्ध में। जैसे, एक आदमी ईश्वर के सम्बन्ध में सोचे, दुकान के सम्बन्ध में सोचे, फिल्म के सम्बन्ध में सोचे, तो यह कन्टेम्प्लेशन न हुआ, यह चंचल चित का प्रवाह हुआ, कुछ भी सोच रहा है। और एक आदमी एक ही धारा में सोचे, ईश्वर के सम्बन्ध में, तो ईश्वर के सम्बन्ध में ही सोचे तो यह कन्टेम्प्लेशन हुआ, विचारणा हुई सम्बद्ध।

लेकिन, मैडिटेशन, ध्यान बड़ी अलग बात है। ध्यान में न तो विचार है, न विचार की धारा है, न एकाग्रता है, न चित्त है, जो एकाग्र हो जाय। न चित्त है, जो चंचल हो सके। ध्यान में चित्त ही नहीं है, ध्यान मनोनाश है। ध्यान में मन का ही खो जाना है। ध्यान ही कीमती चीज है। न तो एकाग्रता की कोई कीमत है और न विचारणा की कोई कीमत है। कीमत तो है ध्यान की, जहाँ सब खो जाता है। सिर्फ शून्य ही रह जाता है। और जहाँ शून्य है, वहीं सर्व है। शून्य पूर्ण का द्वार है। जब हम पूरे मिट जाते हैं तो हम पूरे हो जाते हैं। जब हममें मिटने को कुछ भी शेष नहीं रह जाता, तब वही शेष रह जाता है, जो अमिट है और अमृत है।

इसलिए कंसंट्रेशन एक तरह का तनाव है, टेंशन है। जब आप एकाग्र करते हैं चित्त को तो चित्त में तनाव होगा, भार पड़ेगा एकाग्रता

पागल भी कर सकती है। जब आप कंटम्प्लेशन करते हैं—किसी चीज के संबंध में सोचते हैं, सोचते हैं, सोचते हैं, तब भी चित्त पर तनाव पड़ता है। लेकिन जब आप ध्यान करते हैं, तब आप कुछ करते ही नहीं हैं। तनाव का कोई सवाल नहीं है। आप सिर्फ अपने को लेट गो में, समर्पण में छोड़ देते हैं और खो जाते हैं। ध्यान बिल्कुल ही अलग चीज है।

और उन मित्र ने पूछा है कि हम साकार पर ध्यान करें कि निराकार पर? तो वह ध्यान को नहीं समझ पाये, जो मैं ध्यान कह रहा हूँ। ध्यान का अर्थ है किसी पर नहीं। अगर किसी पर भी हुआ तो वह कंसंट्रेशन हो जायेगा—वह साकार पर हो, चाहे निराकार पर हो। अगर कोई आब्जेक्ट हुआ तो कंसंट्रेशन हो जायेगा, एकाग्रता हो जायेगी।

ध्यान का मतलब है कोई आब्जेक्ट नहीं, कोई विषय नहीं, कोई विचार नहीं। न कोई निराकार, न कोई साकार—कोई भी नहीं। अगर कोई भी वहाँ रहा—तो यहाँ मैं भी रहूँगा और वहाँ कोई रहेगा और दोनों के बीच कोई सम्बन्ध रहेगा। ध्यान का मतलब है, दो ही न रहे। अब कोई सम्बन्ध न रहा। अब तो असम्बन्ध हो गया। सब चीजें खो गयीं। एक ही होना हो गया। तो ध्यान का मतलब····किस पर ऐसा कभी न पूछें। ध्यान किस पर यह बात ही पूछना गलत है। एकाग्रता किस पर? यह वाक्य ठीक है, प्रश्न ठीक है। ध्यान किस पर नहीं—ध्यान का मतलब है, किसी पर भी नहीं। जब आप नो-व्हेयर में होते हैं—कहीं भी नहीं, किसी पर भी नहीं, तो आप ध्यान में होते हैं।

निराकार पर ध्यान हो ही नहीं सकता। क्योंकि जिसका आकार नहीं, उसपर ध्यान कैसे करियेगा। हाँ, जब आप ध्यान में होते हैं, तब आप निराकार में हो जाते हैं। निराकार पर ध्यान नहीं कर सकते हैं आप, लेकिन जब आप ध्यान में होते हैं, तब निराकार ही शेष रह जाता है, सब आकार खो जाते हैं।

साकार है जगत, निराकार है प्रभु।

लेकिन हम जगत से इस भाँति चिपटे हैं कि हम प्रभु को बिना

आकार में ढाले नहीं पकड़ पाते हैं। तो हम शक्लें बनाते हैं आदमी की, मूर्तियाँ बनाते हैं, चित्र बनाते हैं, और उन शक्लों को हम समझते हैं कि भगवान है! हम संसार के ही रूप में भगवान को जब तक ढाल नहीं लेते, तब तक हमें तृप्ति नहीं मिलती! हमारे सारे मन्दिर, हमारी सारी मूर्तियाँ भगवान को संसार की शक्ल में उतारने की चेष्टाएँ हैं। परमात्मा है निराकार। निराकार का मतलब?

निराकार का मतलब—जिससे सब आकार पैदा होते हैं और जिसमें सब आकार लीन हो जाते हैं। निराकार का यह मतलब नहीं है कि आकार से उल्टा। निराकार का यह मतलब नहीं है कि आकार का दुश्मन। निराकार का यह मतलब नहीं है। निराकार का यह मतलब है कि जिससे आकार आते हैं और जिसमें चले जाते है। जो सब आकारों का जन्मदाता और सब आकारों का विलीन कर लेने वाला है। वह निराकार ही हो सकता है। जो सभी आकारों को पैदा करे, वह निराकार ही हो सकता है। अगर उसका अपना कोई आकार हो तो सब आकारों को वह पैदा न कर सकेगा। आदमी आदमी को पैदा कर सकता है, क्योंकि उसका एक आकार है। शेर शेर को पैदा कर सकता है, क्योंकि उसका एक आकार है। पक्षी पक्षी को पैदा करता है, क्योंकि उसका एक आकार है। पौधा पौधे को पैदा करता है, उसका एक आकार है।

आकार से आकार ही पैदा होता है। लेकिन जो सभी आकारों को पैदा कर सकता है, निश्चित ही उसका अपना कोई आकार नहीं होना चाहिए, अन्यथा वह पैदा नहीं कर सकेगा। जिससे सब आकार पैदा होते हैं और वापस जिसमें फिर लीन हो जाते हैं, वह निराकार है। उस निराकार का आप ध्यान कैसे करेंगे? आप कैसे उसको सोचेंगे, कैसे विचार करेंगे? उसका न विचार हो सकता है, न सोचना हो सकता है, क्योंकि सब सोचना, सब विचार आकार का होता है। फिर क्या करेंगे? हाँ, इतना ही हो सकता है कि आप भी निराकार हो जायें तो आप निराकार से मिल जायेंगे।

निराकार तक जाना हो तो स्वयं को निराकार होने के अनुभव में

उतारना पड़ेगा। इसलिए ध्यान निराकार का ध्यान नहीं है। ध्यान से निराकार का ध्यान आ जाता है। जब हम ध्यान में डूबते हैं तो निराकार का बोध होने लगता है कि निराकार है, अरूप है, सर्व है, उसकी हमें प्रतीति होने लगती है। लेकिन खुद को मिटना होगा, तभी हम उसकी प्रतीति कर सकते हैं। एक बूँद अगर सागर का अनुभव करना चाहे तो सागर में उसे डूब जाना चाहिए तो फिर वह सागर का अनुभव कर लेगी। लेकिन एक बूँद अगर बूँद ही रहना चाहे और कहे कि मुझे सागर का अनुभव करना है बूँद रहकर, तो सागर के अनुभव का कोई उपाय नहीं है। और बूँद अगर बूँद रहकर सागर की कल्पना भी करे तो कितनी कल्पना करेगी—बेचारी बूँद सागर की कल्पना कितनी करेगी, कितना बड़ा सागर सोचेगी?

अपने से बड़ा हम कुछ भी नहीं सोच सकते। इसलिए हर आदमी अपने को सबसे बड़ा समझता है। उसमें कोई कठिनाई नहीं है, उसका कारण कुल इतना है कि अपने से बड़ा हम सोच ही नहीं सकते। हम ही सोचेंगे न! तो हमसे बड़ा हम कभी भी नहीं सोच सकते। इसलिए हर आदमी अपने को सबसे बड़ा समझे बैठा है! बड़ी दिक्कत में पड़ता है इस बात से, लेकिन समझे बैठा हुआ है। कहता हो, न कहता हो, लेकिन अपने को सबसे बड़ा हर आदमी समझे हुए है!

मैंने सुना है, अरबी में एक मजाक है, और मजाक बड़ा पुराना है और कहना चाहिए सबसे पहला मजाक है, उसके बाद ही सब मजाक निकले होंगे। और वह मजाक है, परमात्मा ने आदमी के साथ जो किया—मजाक यह है कि जब परमात्मा आदमी को बनाकर दुनिया में धक्का देने लगता है, तो उसके कान में कह देता है कि तुझसे बड़ा आदमी मैंने कभी नहीं बनाया। और सभी से कह देता है।

और हरेक आदमी यही ख्याल लेकर दुनिया में आता है कि मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है। फिर वह इसी को बेचारा सिद्ध करने में लगा रहता है जिन्दगी भर, क्योंकि अगर बिना सिद्ध किये कहे कि मुझसे बड़ा कोई नहीं है, कि लोग पूछें कि मकान कहाँ है, कितना बड़ा मकान है, तो बड़ी मुश्किल हो जाय। धन कितना है पास में? तिजोड़ी कहाँ है? बैंक बैलेंस क्या है? तो बड़ी मुश्किल हो जाय। तो वह जिन्दगी भर इस कोशिश में रहता है कि पहले इन्तजाम कर दूँ, फिर घोषणा कर दूँगा कि सबसे बड़ा

हूँ—देखो मकान, देखो धन, देखो पद । वह इस दौड़ में इसीलिए लगता कि वह जो भीतर भाव बैठा है कि मुझसे बड़ा कोई भी नहीं, इसको सिद्ध करने के लिए प्रमाण भी तो चाहिए । ऐसे ही कहियेगा तो कौन मानेगा ? तो पहले दिल्ली के सिंहासन पर बैठ जाना जरूरी है, तभी कह सकते हैं कि हाँ, देखो मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है । वह जो सिंहासन पर नहीं बैठा है, वह भी यही जानता है कि मुझसे बड़ा कोई नहीं है, लेकिन उसकी घोषणा नहीं कर सकता, क्योंकि घोषणा करेगा तो लोग कहेंगे, प्रमाण क्या है ? जिन्दगी भर हम यश, पद और धन की खोज से प्रमाण जुटाते हैं इस बात का कि मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है ।

हम अपने से बड़ा सोच भी नहीं सकते । इसमें कोई कसूर भी नहीं है, यह स्वाभाविक नियम है । हम अपने से बड़ा कैसे सोच सकते हैं ? बड़े से बड़ा जो हम सोच सकते हैं, वह हम ही होंगे । बूँद अगर सागर को सोचेगी भी तो कैसे सोचेगी ? बस बूँद से बड़ा नहीं सोच सकती । कोई उपाय नहीं है सोचने का । बूँद के पास खोपड़ी भी तो बूँद की ही है । वह उतनी ही सोच पायेगी । वह कहेगी, अच्छा ठीक है । ठीक हमारे बराबर होगा, और क्या ?

इसलिए जब हम भगवान को सोचते हैं—तो देखी है, जाके मन्दिर के भगवान की लम्बाई-ऊँचाई ? नापें तो आदमी की लम्बाई-ऊँचाई, नाक-नक्शा सब आदमी का है । वह हमने बराबर अपने सोचा हुआ है । देखें जरा मन्दिर में जाकर भगवान की लम्बाई-चौड़ाई, वजन वगैरह निकालें, वह ठीक हमारे बराबर, हमारी साइज के हैं ।

अगर घोड़े अपना भगवान बनायें तो घोड़े की साइज का बनायेंगे, गधे बनायें तो गधे की साइज का बनायेंगे । नीग्रो बनाता तो चपटी नाक बनाता है, घुघराले बाल बनाता है । चीनी बनाता है तो दोनों गाल की हड्डियाँ भगवान की निकली रहती है । क्योंकि चीनी करेगा क्या बेचारा । भगवान को बनायेगा तो चीनी शक्ल में ही बना सकता है न । इससे ज्यादा कैसे सोच सकता है ? और ऐसा कैसे हो सकता है कि भगवान चीनी न हो—ऐसा कैसे हो सकता है ? अंग्रेज कैसे सोच सकता है कि भगवान किसी और भाषा में बोलता होगा ? ब्राह्मण कैसे सोच सकता है कि संस्कृत के अलावा और कोई डिवाइन लैंग्वेज है । कोई ईश्वरीय भाषा हो सकती है ? संस्कृत ईश्वरीय भाषा है । वह ब्राह्मण की खोपड़ी इससे आगे

नहीं जा सकती । वह संस्कृत बोलता है तो भगवान को भी संस्कृत बोलना चाहिए, और कोई उपाय नहीं हैं ! और कोई उपाय नहीं है । हम अपने में ही सोच पा सकते हैं, उससे आगे हम नहीं जा सकते हैं । तो हम सोच तो नहीं सकते निराकार को । हम अपना ही आकार सोच सकते हैं ।

फिर ध्यान का क्या मतलब है ? ध्यान का मतलब है, अपने को मिटा देना, ताकि निराकार प्रगट हो जाय । निराकार का ध्यान नहीं करना है, ध्यान करने से निराकार प्रगट होता है । वह कान्शीक्वेंस है परिणाम है, ध्यान का फल है ।

और उन मित्र ने पूछा है कि हमें कैसे पता चलेगा कि हम समाधि को उपलब्ध हो गये ?

पता चल जायेगा, बस समाधि को उपलब्ध हो जायँ । आपको कैसे पता चलता है, जब पैर में काँटा गड़ता है कि पैर में काँटा गड़ गया ? आपको कैसे पता चलता है, जब किसी से प्रेम हो जाता है कि प्रेम हो गया ? किससे पूछने जाते हैं ? किस डाक्टर से जाकर जाँच करवाते हैं कि जरा मेरे हृदय की जाँच करिये कि प्रेम हुआ कि नही हुआ ? नहीं, बस आप जान लेते हैं कि प्रेम हो गया । जब काँटा गड़ जाता है तो सारी दुनिया कहे कि प्रमाण लाओ, आप कहते हैं कि प्रमाण की क्या जरूरत है, चुभ रहा है, मैं जानता हूँ कि काँटा गड़ गया । जिस दिन समाधि का अनुभव आता है उस दिन किसी से पूछने नहीं जाना पड़ता है, न कोई तराजू पर तौलना पड़ता है । बस आप जान लेते हैं कि हो गया ।

अभी आप कैसे जानते हैं कि आप अशान्त हैं ? अभी आप कैसे जानते हैं कि आप चिन्तित हैं । आप कैसे जानते हैं कि आप दुःखी है ? मुझसे पूछते हैं ? बिना पूछेजानते हैं । चिन्तित है ? अभी जिस दिन चिन्तित न रह जायेंगे, दुःखी न रह जायेंगे, जिस दिन शान्त हो जायेंगे, आनन्दित हो जायेंगे, उस दिन जान ही लेंगे । इसलिए यह मत पूछें कि हम कैसे जानेगें कि समाधि मिल गयी । बस आप जान लेंगे । परमात्मा मिल जायेगा और आप जान न पायेंगे ? किसी और से पूछना जाना पड़ेगा ?

नहीं, बिलकुल जान लेंगे । उससे बड़ा कोई अनुभव नहीं है, जब वह आता है तो सब बहा ले जाता है । जैसे नदी में पूर आ जाता है और किनारे पर सब कचड़ा बहकर चला जाता है । किनारा कैसे जानता होगा कि पूर आ गया ? जिस दिन परमात्मा की प्रतीति होती है, सब बह जाता

है। कचरा ही नहीं, किनारा भी। सब बह जाता है। सब ताजा और नया हो जाता है। सब आनन्दपूर्ण हो जाता है। सारी जिन्दगी और हो जाती है। सब अन्धेरा खो जाता है। सब दुःख, सब पीड़ा चली जाती है। इसको भी पूछना पड़ेगा कि कैसे जानेंगे? नहीं, जान ही लेंगे। कोई उपाय नहीं है कि आप न जान पायें, जान ही लेंगे। इसलिए उसकी फिक्र न करें कि कैसे जानेंगे। जायँ, और जानें।

एक अन्धे आदमी की आँख ठीक हो जाय तो वह अन्धा आदमी पूछ सकता है कि जब मेरी आँख ठीक हो जायेगी तो मैं कैसे जानूँगा कि आँख ठीक हो गयी? अब यह भी कोई जानना पड़ेगा उसे? आँख ठीक हुई तो जान ही लेगा। क्योंकि आँख ठीक होते ही वह दिखायी पड़ना शुरू हो जायेगा, जो कभी दिखायी नहीं पड़ा था। आँख ठीक होते ही प्रकाश और रंगों की दुनिया शुरू हो जायेगी, जो पहले कभी भी नहीं थी। आँख ठीक होते ही आकार दिखायी पड़ने शुरू हो जायेंगे, जो कभी भी नहीं थे। इसमें कुछ पूछना पड़ेगा, मैं कैसे मानू कि अन्धा पूछेगा कि अब मुझे दिखायी पड़ने लगा है? जिस दिन परमात्मा की तरफ हमारी समाधि की आँख खुलती है, उस दिन हम उस नये को जानते हैं जिसे हमने कभी भी नहीं जाना है। उसे पहचान लेते हैं, जिसे कभी पहचाना नहीं है। वह मंजिल आ जाती है, जो कभी नहीं आयी थी। वह उपलब्ध हो जाता है, जिसके आगे फिर कुछ भी उपलब्ध करने को शेष नहीं बचता है। वह हम जान लेंगे, पहचान लेंगे। उसके लिए कोई मापदण्ड, कोई तराजू, कोई क्राइटेरियन न है न होने को कोई जरूरत है।

एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान में कुछ क्षणों के लिए अद्भुत आनन्द का अनुभव होता है। ये क्षण लंबे कैसे हो जायँ, यह आनन्द और लम्बा और स्थायी कैसे हो जाय?

अगर ऐसी आकांक्षा की तो वह जो थोड़े से क्षण अभी होते हैं, वे भी बन्द हो जायेंगे। अभी वह एकाध क्षण को जो आनन्द मिलता है—अगर ऐसा चाहा कि यह स्थायी कैसे हो जाय, यह सदा कैसे रहने लगे, तो वह क्षण में भी जा आता है, वह भी खो जायेगा। क्योंकि इतने लोभ से भरे हुए चित्त में आनन्द का उत्पन्न होना असंभव है। यह लोभ है। एक क्षण को आनन्द उपलब्ध होता है, भगवान को धन्यवाद दें और चुप हो जायें। उससे आगे आकांक्षा मत करना कि ये क्षण फिर आयें कल।

रोज आये, ठहर जाय, क्योंकि जब भी ऐसा हम कहेंगे कि कल भी आये, रोज आये, ठहर जाय, तो वह क्षण हमारे लाने से नहीं आया था, अनायास आया था। और जब हम इतने तेजी से कहेंगे कि रोज आये, ठहर जाये, लंबा हो जाये, तो सारा इफर्ट शुरू हो जायेगा, फिर वह नहीं आयेगा। फिर वह कभी नहीं आयेगा।

लेकिन हमने पूरी जिन्दगी में ऐसा किया है। अगर आज आप मेरे पास आयें और मैं प्रेम से आपको हृदय से लगा लूँ तो आप कहते हैं कि कल भी जब मैं आऊं, तब भी आप इतने ही प्रेम से, हृदय से लगा लें। कल का भी आज ही पक्का कर लेना चाहते हैं! कुछ पक्का नहीं है। आज का हमने कब पक्का किया? अनायास यह घटना घटी है, कल घट सकती है, लेकिन अनायास ही। लेकिन हम पक्का कर लेते हैं। तब प्रेम की घटना बन्द हो जाती है। और प्रेम की जगह अभिनय की घटना शुरू हो जाती है। फिर हमें हाथ जोड़कर नमस्कार करना पड़ता है, क्योंकि कल भी किया था, न करेंगे तो बड़ी मुसीबत होगी। कोई क्या कहेगा। फिर किसी को हृदय से लगाना पड़ता है, प्रेम की बातें करनी पड़ती हैं, क्योंकि कल की थीं, अगर अब न करेंगे तो कोई क्या सोचेगा। तब सब झूठ हो जाता है। झूठ होता चला जाता है।

पुनरुक्ति की आकांक्षा ने हमारी सारी जिन्दगी को खराब कर दिया है। पुनरुक्ति की आकांक्षा करना ही मत। क्षण आया है, धन्यवाद दे देना परमात्मा को और कभी मत कहना कि दुबारा आओ। आओ तो ठीक है, स्वागत है। न आओ तो स्वागत है। ऐसी चित्त की दशा में ही वह आयेगा। ज्यादा आयेगा। कभी ठहर भी जा सकता है। लेकिन अगर हमने आकांक्षा की है कि रोज आना चाहिए।

निरन्तर मुझे ऐसा लगता है, न मालूम मित्र लिखते हैं कि कितने पहले जो अनुभव हुआ था, वह नहीं होता है। क्योंकि वह इतने जोर से उस अनुभव को लाना चाहते हैं, खींचना चाहते हैं कि उसे लाने की इच्छा तनाव बन जाती है, वे रिलेक्सड नहीं हो पाते हैं। अगर कल आप ध्यान में बैठे थे तो आपको कुछ पता न था कि आनन्द आयेगा कि न आयेगा। आप रिलेक्सड बैठे थे, आ गया था। अब आज आप बैठे हैं और आप पक्का ख्याल रखें हैं कि अब आया, अब आया—अभी तक नहीं आया। तो आप रिलेक्सड नहीं हो पा रहे हैं। तनाव बना हुआ है, वह कैसे आयेगा? वह

कल आया इसीलिए था कि आप रिलेक्सड हुए थे। आज आप रिलेक्सड नहीं हो रहे हैं, शिथिल नहीं हो रहे हैं, तो कैसे आयेगा ?

और जिसके मन में आकांक्षा है कुछ आने की, वह कभी शिथिल नहीं हो सकता। वह तना ही रहेगा तना ही रह जायगा। इसलिए भूलकर भी ध्यान में आये क्षणों को दोहराने की आकांक्षा मत करना। वे आयेंगे, अपने से आयेंगे, आते रहेंगे। और न आयें, तो न आने के लिए भी राजी हो जाना। आयें तो भी स्वागत, न आयें तो भी स्वागत। जिस दिन आप उनके न आने का भी स्वागत कर सकें, उस दिन वे आपके घर आ ही जायेंगे। ठहर ही जायेंगे, फिर वे जायेंगे ही नहीं। न, आने का भी जिस दिन उतना ही स्वीकार हो जायेगा, जितना आने का है, उसी दिन वे ठहर जायेंगे, फिर वे जायेंगे ही नहीं। वे कभी जाते ही नहीं हैं।

आनन्द वहीं ठहरता है, जहाँ आनन्द की आकांक्षा भी विलीन हो जाती है। आनन्द वहीं रुकता है, जहाँ आनन्द को पाने का ख्याल भी चला जाता है। शान्ति वहीं आती है, जहाँ अशान्ति को भी स्वीकार करने की क्षमता है। यह उल्टा दिखायी पड़ता है, लेकिन ऐसा ही है। मन तो यही करता है कि जो सुख मिला, वह बार-बार मिले और बार-बार मिलने की आकांक्षा से तो वहकभी भी नहीं मिलता है, वह मिल ही नहीं सकता है। जीवन में सब महत्वपूर्ण अनायास हैं। आता है, आता है, लाया नहीं जा सकता है। जिस दिन लाने लग जायेंगे,उसी दिन कठिनाई शुरू हो जायेगी।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या ध्यान ही काफी है ? क्या कोई राम-नाम और प्रार्थना जोड़नी उचित नहीं है ?

फिर भी नहीं समझ पाये ध्यान को। अभी वे कुछ जोड़ना चाहते हैं। वे समर्पण नहीं समझ पाये। समर्पण का मतलब है, अब और कुछ जोड़ने को नहीं है, कुछ करने को नहीं है। समर्पण का मतलब है, करने वाला ही हमने छोड़ दिया है—कौन राम नाम जपेगा और कौन माला फेरेगा और कौन हाथ जोड़कर प्रार्थना करेगा ? समर्पण का मतलब है, समर्पण करने वाला ही नहीं है। हम कर्ता ही नहीं हैं, हमने छोड़ दिया। तो अब आप पूछते हैं, अब और क्या ? जैसे कोई पूछे, क्या शून्य हो जाना काफी है ? कुछ और करें ?

शून्य हो जाने का मतलब है, जहाँ अब करने को कुछ भी शेष न रहा। समर्पण का अर्थ है कि अब करने वाला ही मौजूद न रहा। हमने

छोड़ दिया अपने को, अब जो होगा, होगा। जैसे मैंने कहा कि नदी में बहें। अब एक आदमी पूछे कि बहना ही काफी है, कि कुछ और करें ? जो भी आप करेंगे, बहना रुक जायेगा। आपका सब करना बहने को रोक देगा। अब जैसे मैंने कहा कि चिता में जलें और समाप्त हो जायें। आप कहें कि ठीक है, जल गये। और भी कुछ करें कि इतना काफी है ? अब और करने को क्या बचा। करने का करने वाला कहाँ बचा ! मैंने कहा, सब स्वीकार कर लें, तथाता, टोटल एक्सेप्टिबिलिटी आप कहते हैं सब स्वीकार कर लिया, और भी कुछ स्वीकार करना है ? सब स्वीकार का क्या मतलब हुआ, जब आप कहते हैं, और भी कुछ स्वीकार करना है ?

ध्यान का अर्थ है समर्पण, और समर्पण कभी भी आधा नहीं होता। आप ऐसा नहीं कह सकते कि मैंने आधा समर्पण किया आधा नहीं। आधा समर्पण होता ही नहीं। जैसा आधा वृत्त नहीं होता, आधा सर्किल नहीं होता। सर्किल होता है तो पूरा होता है, नहीं तो नहीं होता। अगर कोई कहे कि हमने आधा सर्किल बनाया है तो हम उससे कहें कि पागल हो। क्योंकि सर्किल का मतलब होता है कि पूरा गोल घेरा। आधा सर्किल होता ही नहीं। आधा समर्पण भी नहीं होता। आधा प्रेम भी नहीं होता। कोई आदमी कहे कि हम आधा प्रेम करते हैं आपको। तो हम कहेंगे, नहीं करते होंगे, यही कहना उचित है। आधा कहीं प्रेम हुआ है ? प्रेम होता है तो पूरा, अन्यथा नहीं।

कभी किसी आदमी को आधा मरा हुआ देखा है ? क्योंकि अगर वह आधा मरा हुआ है तो जिन्दा ही होगा किसी-न किसी हालत में, जिन्दा ही होगा। वह मरा हुआ हो ही नहीं सकता। मरता है तो कोई पूरा मरता है। अन्यथा नहीं मरता है। या तो जिन्दा, या मरा, इन दोनों के बीच में और कोई जगह नहीं होती, जो वहाँ खड़ा हो जाय, कि कहे कि न हम मरे, न हम जिन्दा। हम आधे जिन्दा, हम आधे मरे, तो आदमी जिन्दा ही है, वह जिन्दा ही है, मरा नहीं है। समर्पण पूरा है। इसलिए यह मत पूछिये। उन्होंने पूछा है कि क्या ध्यान पर्याप्त है, इनफ है।

समर्पण सदा पर्याप्त है। उसके आगे कुछ भी करने को नहीं बच जाता है असल में करना छोड़ने का नाम ही समर्पण है कि हमने करना ही छोड़ दिया। कौन अब राम नाम जपे। और किसलिए जपे। राम ने आपका क्या बिगाड़ा है ? उनको क्यों परेशान करते हैं ? उन्होंने तो कोई भी आपको तकलीफ नहीं दी है, आप उन्हें क्यों तकलीफ देते हैं ? वे कभी आपके घर

के सामने आकर आपका नाम नहीं चिल्लाते। आप क्यों उनको परेशान कर रहे हैं ? राम नाम से क्या लेना-देना है ?

नहीं, लेकिन हमें कुछ करने को चाहिए। असल में न करने में हम बड़े घबड़ाते हैं क्योंकि न करने में मिटने का डर है। इसलिए हम कहते हैं, कुछ करने को बता दें—माला फेरें, राम नाम जपें, कुछ करें ? करने में हम शेष हो जाते हैं, हम फिर खड़े हो जाते हैं। कर्ता फिर मौजूद हो जाता है। मैं फिर मौजूद हो जाता हूँ। फिर हम कह सकते हैं मैं रोज राम नाम कहता हूँ, मैं रोज माला फेरता हूँ, मैं रोज मन्दिर जाता हूँ। लेकिन ध्यान रहे, आप किसी से यह नहीं कह सकते कि मैं रोज ध्यान करता हूँ। क्योंकि यह वाक्य ही गलत होगा। ध्यान का मतलब ही है कि रोज आप न-करने में चले जाते हैं। यह आप दावा नहीं कर सकते कि मैं रोज ध्यान करता हूँ। और अगर कोई आदमी दावा करे कि मैं रोज ध्यान करता हूँ, तो समझना कि वह ध्यान को समझा नहीं, क्योंकि ध्यान का मतलब था समर्पण। ध्यान का मतलब था, कर्ता होने का भाव छोड़ देना। वह डूअर, कि मैं कर्ता हूँ, वह भाव छोड़ देना है। इसलिए ध्यान पर्याप्त है। उसमें कुछ जोड़ने की आवश्यकता नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं, सब स्वीकार कर लें, तो फिर क्रान्ति कैसे आयेगी, बदलाहट कैसे आयेगी ?

निश्चित ही, सब स्वीकार करने से आप क्रांति कर न सकेंगे। बदलाहट कर न सकेंगे। लेकिन क्रांति आ सकती है, बदलाहट आ सकती है। सर्व-स्वीकार से कुछ आप निष्क्रिय नहीं हो जाने वाले हैं, बल्कि पूर्ण सक्रिय हो जायेंगे। जिस व्यक्ति ने सब स्वीकार कर लिया—इसका यह मतलब नहीं है कि अब वह कुछ भी न करेगा। अब इसका मतलब केवल इतना है कि वह जो भी करेगा, वह जानेगा कि परमात्मा ही उससे कर रहा है, मैं नहीं कर रहा हूँ। सर्व-स्वीकार का यह मतलब नहीं है कि अब आप श्वाँस न लेंगे। परमात्मा ही श्वास लेगा। सर्व-स्वीकार का यह मतलब नहीं है कि क्रांति असंभव हो जायेगी, सर्व-स्वीकार का यह मतलब है कि अब परमात्मा ही क्रांति करेगा, अब आप क्रांति नहीं करेंगे। और जिस दिन परमात्मा क्रांति करेगा, उसी दिन क्रांति हो सकती है। आदमी की की गयी क्रांति, क्रांति नहीं होती। रुग्ण, बीमार, परेशान, चिन्तित, दुखी आदमी

क्या क्रांति करेगा ? क्रांति के नाम पर शायद तोड़-फोड़ ही कर देगा और कुछ भी नहीं करेगा। क्रोध जाहिर कर देगा, और कुछ भी नहीं करेगा।

सर्व-स्वीकार से आती है करुणा। लानी नहीं पड़ती। मैं आपसे नहीं कह रहा कि करुणा करें। आप क्या करुणा करेंगे ? आप कैसे करुणा कर सकते हैं ? सर्व-स्वीकार से आती है करुणा, कम्पेशन पैदा होता है।

बुद्ध से किसी ने पूछा कि क्या आप बड़े करुणावान हैं ? बुद्ध ने कहा, किसी ने तुम्हें गलत खबर दे दी होगी। मैंने तो कभी करुणा नहीं की। उस आदमी ने कहा, आप क्या कहते हैं। हमने तो यही सुना है कि आप महा कारुणिक हैं। आपसे ज्यादा करुणा किसी में भी नहीं है। बुद्ध ने कहा, यह हो सकता है कि मुझमें करुणा हो, लेकिन मैंने करुणा कभी की नहीं। मैं कभी करुणा करने गया ही नहीं। मैं इस झंझट में ही नहीं पड़ा। यह हो सकता है कि करुणा मुझसे निकली हो, लेकिन मैंने कभी नहीं निकाली।

किस पौधे से फूल निकाला गया है ? फूल निकलते हैं। और अगर आप से पूछने जायेंगे कि तुमने बड़ा अच्छा गुलाब का फूल निकाला है ! और अगर पौधा कह सके तो वह कहे, आप भी कैसी बात करते हैं, मैंने कभी नहीं निकाला, निकला है। अपने आप निकला है।

जिस दिन कोई सर्व-स्वीकार में समर्पित हो जाता है, करुणा निकलती है, क्रांति निकलती है ! क्रांति करनी नहीं, क्रांति को आने देना है। अगर ठीक से कहें तो यह कह सकते हैं कि क्रांति को रोकना नहीं है, क्रांति को आने देना है। सर्व-स्वीकार की अपनी क्रांति है। उस क्रांति का अर्थ वह नहीं है, जो अब तक क्रांतिकारी समझता रहा है। क्रांतिकारी समझता है, हम क्रांति कर रहे हैं। हम बदलाहट ला रहे हैं। और इस हम की वजह से कोई बदलाहट नहीं आ पाती, क्योंकि 'हम' ही पुराना रोग था, वह फिर नयी शक्ल में खड़ा हो जाता है। क्रांति तो हो जाती है, लेकिन वह 'हम' फिर खड़ा हो जाता है। वह वहीं के वहीं खड़ा रहता है, उससे कोई फर्क नहीं हो पाता।

इसलिए मैं जिस क्रांति की बात कर रहा हूँ, वह क्रांति नहीं है, जो आप लायेंगे। वह क्रांति है, जो आप अगर समर्पित हो जाय तो आ सकती है। इन दोनों बातों के भेद को ठीक से समझ लेना।

मेरे एक मित्र हैं, उनको नींद नहीं आती है। उनसे मैंने कहा, आपको नींद आ सकती है, लेकिन कृपा करके आप लाने की कोशिश मत करें। उन्होंने कहा, अगर मैं न लाऊँगा तो नींद आयेगी कैसे? उनकी दलील तो बिल्कुल ठीक है—उन्होंने कहा, मैं न लाऊँगा तो नींद आयेगी कैसे? मैंने कहा, आप पूरी ही कोशिश कर लें। आपसे जितना बन सके, उतनी कोशिश कर लें। अच्छा हो, आप मेरे पास ही रुक जायँ। वह आ गये और मेरे पास रुक गये। और तीन दिन रोज सुबह मैं उनसे जाकर पूछता कि ला पाये नींद? वह कहते कि बड़ी मुश्किल हो गयी, पहले थोड़ी बहुत आती थी, वह भी मुश्किल हो गयी। लाने की कोशिश कर रहा हूँ और वह खोती चली जा रही है। मैंने कहा, पूरी ताकत लगा दें, ताकि ठीक से असफलता का पता चल जाय। पूरी ताकत लगा दें, आप जो-जो कर सकते हैं। क्या-क्या करते हैं? उन्होंने कहा, राम-राम भी जपता हूँ, हाथ-पैर भी धोता हूँ, खड़ा भी होता हूँ, करवट भी बदलता हूँ, आँखें भी बन्द करता हूँ, सब कोशिश करता हूँ, लेकित दो रात हो गयी, नींद पलक भर को भी नहीं है। मैंने कहा, और कोशिश कर लें। मैंने कहा, ऐसा न रह जाय मन में कि कुछ कोशिश कम थी, इसलिए नींद नहीं आ पायी। तीन दिन में तो वे बिल्कुल पगला गये। उन्होंने कहा कि यह तो बड़ा मुश्किल मामला हो गया है। तो मैंने कहा, आज रात कोशिश न करें। अब आज रात कोशिश करें ही मत। अब आज रात आप कृपा करके कुछ भी न करें, पड़े रहें, जो होना होगा हो जायेगा। सुबह मैं गया तो वह काफी घर्राटे ले रहे थे। मैंने उन्हें हिलाया और मैंने कहा, क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा कि नींद आ गयी है।

नींद आती है, लायी नहीं जा सकती। और अगर आपको ख्याल आ गया है कि लाना है तो आप इनसोमेनिया के मरीज हो ही जाने वाले हैं, अनिद्रा आपको पकड़ ही लेगी। इस समय पृथ्वी पर अनिद्रा से पीड़ित बहुत लोग हैं। उसका सबसे बुनियादी कारण यह है कि वह यह सोचते हैं कि नींद को भी लाना पड़ेगा। बस, फिर नींद खो जायेगी।

क्रान्ति आयेगी, लानी नहीं है। लायी गयी क्रान्ति दो कौड़ी की है। और लायी गयी क्रान्ति—हमी तो लायेंगे न—कन्फ्यूज्ड, भ्रमित, परेशान लोग—हमीं क्रान्ति लायेंगे। तो हमसे बड़ी क्रान्ति नहीं होने वाली है। हम सब और गड़बड़ कर देंगे, और सब उपद्रव कर देंगे। नहीं, हम बदल जायँ,

फिर उस बदलाहट से क्रान्ति आती हो, आये। इसलिए ऐसा मत सोचना कि जब मैं कहता हूँ, सर्व-स्वीकार, तो मैं यह कह रहा हूँ कि जो है, वह वैसा ही रहा आयेगा। नहीं, अगर हमने सर्व-स्वीकार किया तो हमारे भीतर परमात्मा सक्रिय हो जायेगा। वह इस सारी पृथ्वी को बदल डालेगा। यह सारी पृथ्वी बदल जाने के लिए तैयार खड़ी है, लेकिन हमारे भीतर से हम परमात्मा को सक्रिय नहीं होने देते हैं।

गरीबी नहीं बचेगी जमीन पर। कहते हैं गरीबी है तो भगवान कैसे है? और मैं कहता हूँ कि गरीबी है तो सिर्फ इसलिए कि तुमने भगवान को सक्रिय नहीं होने दिया है। तुम रोके हुए हो, तुम अकड़े हुए हो, तुम कहते हो हम मिटायेंगे गरीबी, हम बनायेंगे, हम यह करेंगे। उससे सब रुका जा रहा है। तुम एक बार सब छोड़ दो और देखो, गरीबी मिट जायेगी। गरीबी मिट जायगी, दुःख मिट जायेगा, चिन्ता मिट जायेगी, लेकिन भगवान को सक्रिय होने दो। भगवान पर कृपा करो और भगवान को सक्रिय होने दो। हम सब उसके हाथ पकड़कर उसे रोके हुए हैं, उसे नहीं होने देते हैं कुछ भी, क्योंकि हमको लग रहा है कि हमें करना है।

वह तो अच्छा है कि माताओं को ख्याल नहीं आता कि बच्चों को उन्हें बड़ा करना है। अगर ख्याल आ जाय तो बच्चों की जान निकल जाय। और जिस-जिस मात्रा में उनको ख्याल है कि हमको करना है, उस मात्रा में बच्चों की जान दे ले लेंगी।

वह तो बड़ी कृपा है कि मालियों को ख्याल नहीं आता कि फूल हमें निकालने हैं। अगर ख्याल आ जाय तो सब फूल खत्म हो जायँ। माली चुपचाप देखते रहते हैं। खाद देते हैं, पानी देते हैं, अवसर बना देते हैं, लेकिन फूलों को निकालते नहीं—फूलों को निकलने देते हैं, वह निकल आते हैं, वे निकल आते हैं। अपने आप।

जिन्दगी में फूल खिल सकते हैं करुणा के, लेकिन आप नहीं, मैं नहीं, हम हट जायँ, परमात्मा को सक्रिय होने दें।

धार्मिक समाज का अर्थ है वह समाज जिसने परमात्मा को सक्रिय हो जाने दिया है। जिसने अपने को हटा लिया है और परमात्मा को सक्रिय हो जाने दिया है।

एक अंतिम प्रश्न और। एक मित्र ने पूछा है, स्थितप्रज्ञ, उपेक्षा और तथाता क्या ये तीनों एक ही बातें हैं, या अलग-अलग हैं?

उपेक्षा का अर्थ है जो है, उसमें हमें कोई रस नहीं है, बल्कि जो है, उसमें हमें विरस है, वैराग्य है। इसलिए उपेक्षा ठीक-ठीक अर्थों में तथाता नहीं है। तथाता में उपेक्षा भी नहीं है। तथाता का मतलब है, जो वह है, है—न हमें रस है, न हमें विरस है। न हमें राग है, न हमें विराग है—जो है, वह है।

एक आदमी के भीतर काम-वासना है, क्रोध है, घृणा है। एक आदमी को बड़ा रस है अपनी काम-वासना में। वह उपेक्षा नहीं कर पाता अपनी वासना की। वह बड़ा रसलीन है। वह रागी है। एक आदमी राग के दुःख से पीड़ित, परेशान हो गया है। वह कहता है हम बड़ी उपेक्षा में हैं, हम छोड़ना चाहते हैं, हमें विराग हो गया है, हम यह काम-वासना से भागना चाहते हैं। वह विरागी है। विरागी का मतलब, उल्टा हो गया रागी। जिसने पीठ फेर ली उस तरफ, जहाँ पहले मुँह था। जहाँ पहले मुँह करने में मजा आता था, अब उसे वहाँ पीठ करने में मजा आता है। लेकिन मजा अब भी उसे वहीं आता है। उसमें फर्क नहीं पड़ा है। मजा उसे अब भी वहीं आता है।

एक आदमी स्त्री की तरफ भागा जा रहा है, वह रागी है। और एक आदमी स्त्री से भागा जा रहा है, वह विरागी है। लेकिन दोनों के सेन्टर में स्त्री है। एक स्त्री की तरफ, एक स्त्री से, लेकिन दोनों का सेन्टर स्त्री है। इसमें कोई फर्क नहीं है।

एक स्त्री पुरुष के पीछे पागल है और अब पुरुषों से ऊब गयी है, उपेक्षा से भर गयी है और भागी जा रही है, और कह रही है, सत्संग करेंगे, सत्संग करेंगे। स्त्रियाँ सत्संग में जाती तब हैं, जब वे पुरुष से ऊब जायँ नहीं तो वे सत्संग में जाती नहीं हैं। जहाँ वे परेशान हुईं जिन्दगी में ऊबीं, कि वे सत्संग में गयीं। सत्संगों में सिवाय फ्रस्ट्रेटेड, सब तरफ से ऊब गये, परेशान लोगों के और कोई जाता नहीं। वह वहाँ इकट्ठे हुए हैं सत्संग में; लेकिन उन दोनों का सेन्टर एक है।

उपेक्षा राग के विपरीत है, लेकिन तथाता बहुत और बात है। तथाता का मतलब है, न हमें राग रहा, न हमें विराग रहा। तथाता का मतलब है, हमने वह सेन्टर ही बदल दिया। तथाता का मतलब है कि अब हम इसकी बात ही नहीं करते, कि सेक्स के पक्ष में कि विपक्ष में, कि स्त्री की तरफ, कि स्त्री से भागते हुए, कि गृहस्थ कि संन्यासी, अब हम इसकी बात ही नह

करते। तथाता का मतलब है कि जो है, वह हमें स्वीकार है। वह स्वीकृति हमारी पूरी है। न हम उसकी तरफ भागते हैं, न हम उसे छोड़कर भागते हैं। जो हो रहा है, हो रहा है, हम उसके लिए राजी हैं। तथाता बहुत गहरी बात है, उपेक्षा से बहुत गहरी बात है।

और स्थितप्रज्ञ का मतलब है, जो तथाता को उपलब्ध हो गया। तथाता प्रक्रिया है, मार्ग है, साधना है। स्थितप्रज्ञ उपलब्धि है।

स्थितप्रज्ञ का मतलब होता है, जिसकी प्रज्ञा ठहर गयी। जैसे कोई दिया जलायें हम तो उसकी लौ काँपती रहती है। हम एक ऐसे कमरे में दिया जलायें, जहाँ सब तरफ के द्वार दरवाजे बन्द हों और दिये की लौ काँपती न हो, स्थिर हो गयी हो। ऐसी ही जब मनुष्य की प्रज्ञा स्थिर हो जाती है तो काँपती नहीं।

यह दो तरह से थिर हो सकती है। एक तो इस तरह से थिर हो सकती है कि द्वार दरवाजे हम बन्द कर दें, हवा के झोंके न आयें तो लौ ठहर जाय। जो लोग इस तरह से ठहराना चाहते हैं उनके लिए रास्ता है—वैराग्य, उपेक्षा। लेकिन उनका ठहरा होना बड़ा धोखा है। हवा के न आने से लहर न काँपती हो तो लहर का कोई गुण न हुआ यह। यह फिर हवा की गैर-मौजूदगी हुई। इसलिए जिसको हम संन्यासी कहते हैं, वह भी अपने को ठहरा लेता है, लेकिन उसके ठहराने में बड़ा श्रम है। द्वार-दरवाजे बन्द करके ठहरा पाता है, और इसलिए हमेशा डरा भी रहता है कि कोई खिड़की न खुली छूट गयी हो। कोई दरवाजा खुला न रह जाय। कहीं हवा का झोंका जोर से न आ जाय। मकान ऐसी जगह बनाता है, जहाँ हवा न चलती हो। पहाड़ की आड़ों में, गुफाओं में छिप जाता है, जहाँ कि हवा आती ही न हो। लेकिन हवा से बचकर जो ठहर गया है वह ठहर नहीं गया है, वह सिर्फ हवा के अभाव में जी रहा है—अभाव। वैराग्य से भी कोई स्थितप्रज्ञ की तरफ जा सकता है। तब वह शूर्डा स्थित-प्रज्ञ होगा। झूठा स्थितप्रज्ञ होगा।

और तथाता से भी कोई स्थितप्रज्ञ की तरफ जा सकता है। इसका यह मतलब नहीं है कि हवाएँ अब नहीं आतीं। हवाएँ आती हैं, लहर हिलती है और फिर लहर भीतर से जानती है कि हिलना नहीं हुआ। हवाएँ आती हैं, ज्योति हिलती है, लेकिन फिर भी ज्योति भीतर से जानती है कि क्या हिला—कुछ भी नहीं हिला। आओ और हिलाओ। क्योंकि जो हिल रहा है, वह रूप है और जो नहीं हिल रहा है, वह भीतर है।

बुद्ध एक दिन सुबह आये थे… उनकी इस बात से मैं पूरी करूँ यह चर्चा—वह अपने भिक्षुओं के बीच गये एक रूमाल को लेकर। कभी वह किसी चीज को हाथ में लेकर आते देखे न गये, एक रेशमी रूमाल को लेकर वह उस दिन आये थे। बैठ गये हैं उस मंच पर। उन्होंने उस रूमाल पर पाँच गठाने लगा लीं। भिक्षु बड़े हैरान है कि वे क्या कर रहे हैं! फिर उन्होंने उन भिक्षुओं से पूछा कि भिक्षुओं, यह रूमाल तुमने देखा था अभी थोड़ी देर पहले जब इसमें गाँठें न थीं, अब इसमें गाँठें हैं। मैं तुमसे पूछता हूँ, कुछ फर्क पड़ा या नहीं? रूमाल वही है या दूसरा हो गया है?

एक भिक्षु ने कहा, दूसरा हो गया, क्योंकि उस रूमाल में गाँठें न थीं, इस रूमाल में गाँठें हैं। बुद्ध ने पूछा, भिक्षुओं, इनसे राजी हो? अधिकतर भिक्षु राजी हो गये कि यह बात ठीक है कि यह रूमाल वह न रहा, क्योंकि उस रूमाल में गाँठें न थीं, इस रूमाल में गाँठें हैं। सिर्फ एक भिक्षु हँसता रहा। बुद्ध ने कहा, तुम राजी नहीं हो? उसने कहा, नहीं, मैं राजी नहीं हूँ। क्योंकि अगर हम रूमाल के भीतर प्रवेश करके देख सकें तो रूमाल वही का वही है, गाँठों से क्या फर्क पड़ता है। कहीं-कहीं घूम गया है, मुड़ गया है, जहाँ मुड़ा हुआ नहीं था। रूमाल वही का वही है, कोई भी फर्क नहीं पड़ा है। और चाहें तो गाँठें खोल लें और रूमाल वही का वही हो जायेगा। रूमाल की आत्मा में कोई भी फर्क नहीं पड़ता है, रूमाल अब भी वही है। गाँठें सिर्फ उसके रूप पर बँध गयी हैं।

बुद्ध ने कहा, मैं इसे खोलना चाहता हूँ। और उन्होंने रूमाल को जोर से खींचा। अनेक लोग खोलने के लिए खींचने लगते हैं। वे गाँठें और बंध गयीं। क्योंकि खींचने से कभी कोई गाँठ खुली है? प्रयत्न से कभी गाँठ नहीं खुलती। प्रयत्न खींचना है। बुद्ध ने जोर से खींचा, गाँठें और बारीक और पतली हो गयीं। बुद्ध ने कहा, भिक्षुओं, क्या मेरे और खींचने से गाँठें खुल जायेंगी? एक भिक्षु ने कहा, आप बड़ा उल्टा कर रहे हैं। खींचने से और बँध जायेंगी। तो बुद्ध ने कहा, फिर मैं क्या करूँ, मुझे ये गाँठें खोलनी हैं? तो एक भिक्षु ने खड़े होकर कहा कि कृपा करके पहले यह देखने की कोशिश करें कि गाँठें कैसे बाँधी गयी हैं। और जिस तरह बाँधी गयी हों, उसके उल्टे लौट जायँ तो गाँठें खुल जायेंगी। और आप तो बाँधने की दिशा में ही खींचते चले जा रहे हैं! तो गाँठें और बँध जायेंगी। बुद्ध ने गाँठें खोलीं और पूछा कि भिक्षुओं, यह रूमाल अब वही है? तो जिन्होंने कहा कि हाँ गाँठ लगने से बदल गया, उन्होंने कहा, हाँ। रूमाल बीच में बदल गया था, अब वही है। लेकिन वह एक भिक्षु हँसता रहा। और उसने कहा, रूमाल तब भी वही था; गांठ लगीं, तब भी वही था, और अब भी वही है। और रूमाल राख हो जाय तो भी वही रहेगा, धूल हो जाय तो भी वही रहेगा। रहे तो भी वही रहेगा, न रहे तो भी वही रहेगा। जो भीतर है शाश्वत, वह सदा वही है।

तथाता से जो स्थितप्रज्ञ की तरफ जाता है, उसका मतलब यह नहीं है कि उसमें लहरें नहीं आतीं, उसका यह मतलब नहीं है कि वह युद्ध में लड़ने नहीं जाता। उसका यह मतलब नहीं है कि वह क्रोध नहीं करता, उसका यह मतलब नहीं है कि वह प्रेम नहीं करता। सब होता है लहर की तरह। लेकिन, भीतर वह अनबँधा गाँठ के बाहर ही रह जाता है।

कृष्ण ठीक-ठीक प्रतीक हैं स्थितप्रज्ञ के। इसलिए युद्ध में लड़ भी पाते हैं। प्रेम भी कर पाते हैं, झगड़ा भी कर पाते हैं और फिर भी कोई फर्क नहीं पड़ता। और इसलिए वह अर्जुन को कह सके। अर्जुन घबड़ा गया और पूछने लगा कि अब तो यह मेरा मन घबड़ाता है। ये सब प्रियजन, मित्र हैं, इनको मारूँ? तो कृष्ण ने बड़ी हिम्मत की बात कही, जो इस पृथ्वी पर किसी और आदमी ने कभी भी नहीं कही। उन्होंने कहा, तू पागल है अगर तू सोचता है कि तू इन्हें मार सकता है। जो सोचते हैं कि इन्हें हम बचा सकते हैं, वे भी पागल हैं, जो सोचते हैं कि इन्हें हम मार सकते हैं, वे भी पागल हैं। क्योंकि जो मरने वाला है, वह मरेगा ही; जो नहीं मरने वाला है, उसे मारने का कोई उपाय नहीं है। तू मजे से लड़। क्योंकि जो नहीं मरने वाला है, वह नहीं मरेगा। जो मरने वाला है, वह तेरे बचाने से नहीं बचेगा। जो मरने वाला है, वह मरा ही हुआ है। जो नहीं मरने वाला है, वह नहीं ही मरा हुआ है। तू मजे से लड़।

स्थितप्रज्ञ अगर तथाता से कोई पहुँचेगा तो उसका यह अर्थ है कि जीवन जैसा बाहर है, वह स्वीकार है। लेकिन इन सारी लहरों के बीच में भी भीतर कुछ है, जो लहरों को छूता भी नहीं, स्पर्श भी नहीं करता, अछूता रह जाता है।

एक फकीर से किसी ने पूछा था कि तुमने जीवन किस भाँति गुजारा, क्योंकि तुम्हारी आँखों में बड़ी चमक है, तुम्हारे चेहरे पर बड़ी शान्ति है और तुम्हारे हृदय में बड़ा संगीत है ? तुमने जीवन कैसे गुजारा ? मरते-मरते उस फकीर ने आखिरी बात कही । उसने कहा, मैं जिन्दगी से ऐसे गुजरा जैसे कोई आदमी नदी से गुजरे, पानी उसे छुये, लेकिन फिर भी वह आदमी अनछुआ रह जाय, अनटच्ड रह जाय । जैसे किसी आदमी पर हम जंजीरें बाँध दें, हथकड़ियाँ कस दें, रस्सियाँ बाँध दें, वह आदमी बँधा भी हो जाय बाहर से और भीतर से अनबँधा भी रह जाय । उसने कहा बाहर से मैं बँधा भी था और भीतर से अनबँधा था । बाहर से मैं रूप था, भीतर से अरूप था । बाहर से आकार था, भीतर से निराकार था । बाहर से संसार था, भीतर से परमात्मा था ।

स्थितप्रज्ञ का अर्थ है भीतर इतनी शान्ति कि बाहर की कोई अशांति उसे मिटा न पाती हो । वह अछूती रह जाती हो, अस्पर्शित रह जाती हो ।

लेकिन अगर कोई उपेक्षा से या वैराग्य से जायेगा तो ऐसी शांति पर नहीं पहुँचेगा । वह ऐसी शांति पर पहुँचेगा, जहाँ लहर रोक दी गयी हवा को रोककर । जहाँ कम्पन रोक दिया गया ज्योति का हवा को रोककर ।

लेकिन अगर कोई तथाता से, टोटल एक्सेप्टीबिल्टी से, जिसको मैंने ध्यान कहा, उससे पहुँचेगा स्थितप्रज्ञ तक, तो जियेगा और जीवन के बाहर रह जायेगा । एक ही साथ संसार में होगा और संसार उसके भीतर नहीं होगा । वह संसार में होगा और संसार उसके भीतर नहीं होगा । वह सबके बीच में होगा और सबके बाहर होगा । ऐसा अर्थ है स्थितप्रज्ञ का । ध्यान की यह अंतिम पूर्णाहूति है, ध्यान का यह अंतिम फल है ।

ये थोड़े से प्रश्न की मैंने बात की, जो आपकी साधना में सहयोगी हो सके उस दृष्टि से ।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहित हूँ और आशा करता हूँ कि ध्यान की प्रक्रिया को जारी रखेंगे, ताकि किसी दिन वह क्षण आ जाय कि संसार में हों, और संसार आपके भीतर न रहे ।

अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ, मेरे प्रणाम स्वीकार करें ।

बिड़ला क्रीड़ा केन्द्र, बम्बई, २९ नवम्बर १९६९

भगवान श्री रजनीश का साहित्य

हिन्दी

१—जिन खोजा तिन पाइयाँ	४०-००
२—ताओ उपनिषद्, भाग-१	४०-००
३—ताओ उपनिषद्, भाग-२	४०-००
४—कृष्ण : मेरी दृष्टि में	[illegible]०-००
५—महावीर : मेरी दृष्टि में	४०-००
६—पाथेय	३५-००
७—महावीर-वाणी, भाग-१	३०-००
८—महावीर-वाणी, भाग-२	३०-००
९—गीता-दर्शन, अध्याय-४	३०-००
१०—गीता-दर्शन, अध्याय-५	१५-००
११—गीता-दर्शन, अध्याय-६	२५-००
१२—गीता-दर्शन, अध्याय-१[illegible]	२५-००
१३—ईशावास्य उपनिषद्	१५-००
१४—निर्वाण उपनिषद्	१५-००
१५—पद घुँघुरू बाँध	८-००
१६—सत्य की पहली किरण	५-००
१७—प्रभु की पगडण्डियाँ	६-००
१८—मैं कहता आँखन देखी	६-००
१९—संभोग से समाधि की ओर	६-००
२०—क्रांति-बीज	६-००
२१—गांधीवाद : एक और समीक्षा	५-५०

२२—पथ के प्रदीप	६—००
२३—अस्वीकृति में उठा हाथ	५-००
२४—सत्य की खोज	५—००
२५—गहरे पानी पैठ	७—००
२६—ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया	५—००
२७—मुल्ला नसरुद्दीन	५—००
२८—समाजवाद से सावधान	५—००
२९—समाजवाद अर्थात् आत्मघात	६—००
३०—शून्य की नाव	५—००
३१—शून्य के पार	४—००
३२—शान्ति की खोज	३—५०
३३—विद्रोह क्या है ?	२—५०
३४—पथ की खोज	२— ०
३५—सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	२—००
३६—सूर्य की ओर उड़ान	२—००
३७—जन-संख्या विस्फोट	१—५०
३८—क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया	१—५०
३९—प्रेम के स्वर	१—५०
४०—मेडिसिन और मेडिटेशन	१—२५
४१—युवक और यौन	१—००
४२—धर्म और राजनीति	१—००
४३—अमृत-कण	१—००
४४—अहिंसा-दर्शन	१—००
४५—बिखरे फूल	१—००
४६—महावीर या महाविनाश	१५—००
४७—जीवन-क्रान्ति के सूत्र	१२—००

भगवान श्री रजनीश का नवीनतम हिन्दी साहित्य

	राज संस्करण	सामान्य संस्करण
१—एक ओंकार सतनाम (नानक-वाणी)	७५—००	५०—००
२—दिया तले अन्धेरा	७५—००	५०—००
३—ताओ उपनिषद (भाग—३)	७५—००	४५—००
४—महावीर-वाणी (भाग—३)	६०—००	
५—तत्त्वमसि		४०—००
६—शिव-सूत्र	५०—००	२५—००
७—गूंगे केरी सरकरा (कबीर-वाणी)	५०—००	३०—००
८—कस्तूरी कुंडल बसै (कबीर-वाणी)	५०—००	३०—००
९—पिव पिव लागी प्यास (दादू-वाणी)	५०—००	३०—००
१०—गीता-दर्शन अध्याय—१०	५०—००	
११—गीता-दर्शन अध्याय—८	२५—००	

शीघ्र प्रकाश्य

१—सहज समाधि भली
२—एस धम्मो सनंतनो
३—मेरा मुझमें कुछ नहीं
४—कहै कबीर दिवाना
५—सबै सयाने एक मत
६—अकथ कहानी प्रेम की
७—बिन घन परत फुहार
८—भज गोविन्दम्
९—गीता-दर्शन अध्याय—३
१०—गीता-दर्शन अध्याय—१८

आश्रम से प्रकाशित पाक्षिक पत्रिका :

रजनीश फाउण्डेशन न्यूजलेटर

(हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में विभिन्न नवीनतम सामग्री सहित)

वार्षिक शुल्क (प्रत्येक का) २४—०० रुपया

मराठी में अनूदित

१—भगवंताची पाऊलवाट	६—००
२—संभोगातून समाधीकडे	५—००
३—प्रेम-पुष्प	३—५०
४—समाजवादापासून सावध	७—००
५—गीता-दर्शन अध्याय—१	५—००
६—गीता-दर्शन अध्याय—२ (पूर्वार्ध)	६—००
७—गीता-दर्शन अध्याय—२ (उत्तरार्ध)	७—००
८—गीता-दर्शन अध्याय—३	१६—००
९—गीता-दर्शन अध्याय—५	१६—००

गुजराती में अनूदित

१—अन्तर्यात्रा	५—००
२—संभोगथी समाधि तरफ	४—००
३—साधना-पथ	३—००
४—माटीना दिवा	३—५०
५—हूं कोण छू ?	३—००
६—अज्ञात प्रति	२—००
७—प्रेमनां फूलो	५—००
८—सत्यनी शोध	४—२५
९—ईशावास्य रहस्य	१—२५
१०—निर्वाण नवनीत	१—२५

इनके अतिरिक्त २० अन्य छोटी-छोटी पुस्तकें हैं।

रजनीश फाउण्डेशन प्रकाशन
श्री रजनीश आश्रम, १७, कोरेगाँव पार्क
पूना—१ : फोन : २८१२७

प्रवचन-५

नये प्रकाशन

- आनन्द-गंगा
- शून्य समाधि
- सम्बोधि के क्षण
- असम्भव क्रान्ति
- क्या ईश्वर मर गया है ?

रजनीश ध्यान-केंद्र प्रकाशन